श्रीगोस्वामीतुलसीदासजीरचित

विनय-पत्रिका

(सरलभावार्थसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी रचित

विनय-पत्रिका

(सरल भावार्थसहित)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

इस विनय पत्रिका के दूसरे संस्करणमें पाठका संशोधन विशेषरूपसे किया गया था। संस्कृत और अधिकांश संस्कृत-पदोंमें प्रायः शुद्ध शब्दोंका प्रयोग रक्खा गया था। अन्य पदोंमें प्रायः पूर्ववत् ही पाठ रक्खा था। भावार्थमें अनेकों आवश्यक संशोधन किये गये थे। परिशिष्ट-में कथा-भाग जोड़ दिया गया था, जिससे पुस्तककी उपादेयता और भी बढ़ गयी। पाठ और भावार्थके संशोधनमें श्रीराम-दासजी गौड़ एम० ए० महोदयसे एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए० शास्त्रीसे बड़ी सहायता मिली थी, इसके लिये मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। तीसरे संस्करणमें भी कहीं-कहीं भावार्थमें साधारण परिवर्तन किया गया था।

श्रीरामकृपासे इसी बहाने कुछ श्रीरामचर्चाकी सुविधा मिल जाती है, यह मेरा सौभाग्य है। महात्मा संत विद्वान् और विज्ञ पाठक-पाठिकाएँ मेरी इस धृष्टताके लिये कृपापूर्वक क्षमा करें।

विनीत—हनुमान प्रसाद पोद्दार

ॐ

विषयानुक्रमणिका

—०—

राग–सूची

—०—

श्रीहरिः

वर्णानुक्रमणिका

नित्य प्रार्थना

कर प्रणाम तेरे चरणोंमें लगता हूँ अब तेरे काज।
पालन करनेको आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज॥
अंतरमें स्थित रहकर मेरे बागडोर पकड़े रहना।
निपट निरंकुश चंचल मनको सावधान करते रहना॥
अन्तर्यामीको अन्तःस्थित देख सशङ्कित होवे मन।
पाप-वासना उठते ही हो नाश लाजसे वह जल-भुन॥
जीवोंका कलरव जो दिनभर सुननेमें मेरे आवे।
तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे॥
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि तुझमें यह सारा संसार।
इसी भावनासे अंतरभर मिलूँ सभीसे तुझे निहार॥
प्रतिपल निज इन्द्रियसमूहसे जो कुछ भी आचार करूँ।
केवल तुझे रिझानेको, बस तेरा ही व्यवहार करूँ॥

(भजन-संग्रहसे)

राम राम राम राम राम

राम राम राम राम राम, राम राम राम राम राम ॥ टेक ॥
संतोंके जीवन ध्रुवतारे, भक्तोंके प्राणोंसे प्यारे,
विश्वम्भर सब जग रखवारे, सब विधि पूरन काम ॥ राम राम०
अजामील दुख टारन हारे, गज-गणिकाके तारन हारे,
द्रुपद-सुता-भय वारन हारे, सुखमय मंगलधाम ॥ राम राम०
अनल-अनिल-जल, रवि-शशि, तारे, पृथ्वी गगन गन्ध रस सारे,
तुझ सरिताके सब फव्वारे, तू सबका विश्राम ॥ राम राम०
तुझपर धन-जन-तन-मन वारे, तुझ प्रेमामृत-मद-मतवारे ।
धन्य धन्य ! वे जग उजियारे, जिनके मुख यह नाम ॥ राम राम०

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥
राम भरोसो राम बल, रामनाम बिस्वास ।
सुमिरि नाम मंगल कुसल, माँगत तुलसीदास ॥
तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न रामपद, सोक धाम तजि काम ॥
रसना साँपिनि बदन बिल, जो न जपहिं हरि नाम ।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि बिधाता बाम ॥
हिय फाटहु फूटहु नयन, जरहु ते तन केहि काम ।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकहिं नहीं, तुलसी सुमिरत राम ॥

श्रीश्रीसीतारामाभ्यां नमः

विनय-पत्रिका

राग बिलावल

श्रीगणेश-स्तुति

[१]

गाइये गनपति जगबंदन । संकर-सुवन भवानी-नंदन ॥१॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन, विनायक । कृपा-सिंधु, सुंदर, सब-लायक
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता । बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता ॥३॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥४॥

भावार्थ—सम्पूर्ण जगत्‌के वन्दनीय, गणोंके स्वामी श्रीगणेशजीका गुणगान कीजिये, जो शिव-पार्वतीके पुत्र और उनको प्रसन्न करने-

वाले हैं ॥१॥ जो सिद्धियोंके स्थान हैं, जिनका हाथीका-सा मुख है, जो समस्त विघ्नोंके नायक हैं यानी विघ्नोंको हटानेवाले हैं, कृपाके समुद्र हैं, सुन्दर हैं, सब प्रकारसे योग्य हैं ॥२॥ जिन्हें लड्डू बहुत प्रिय है, जो आनन्द और कल्याणको देनेवाले हैं, विद्याके अथाह सागर हैं, बुद्धिके विधाता हैं ॥३॥ ऐसे श्रीगणेशजीसे यह तुलसीदास हाथ जोड़कर केवल यही वर माँगता है कि मेरे मनमन्दिर-में श्रीसीतारामजी सदा निवास करें ॥४॥

सूर्य-स्तुति

[२]

दीन-दयालु दिवाकर देवा । कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा ॥१॥
हिम-तम-करि-केहरि करमाली । दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली ॥२॥
कोक-कोकनद-लोक-प्रकासी । तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी ॥३॥
सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी । हरि-संकर-बिधि-मूरति स्वामी ॥४॥
बेद-पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम-भगति बर माँगै ॥५॥

भावार्थ—हे दीनदयालु भगवान् सूर्य ! मुनि, मनुष्य, देवता और राक्षस सभी आपकी सेवा करते हैं ॥१॥ आप पाले और अन्धकार-रूपी हाथियोंको मारनेवाले वनराज सिंह हैं; किरणोंकी माला पहने रहते हैं; दोष, दुःख, दुराचार और रोगोंको भस्म कर डालते हैं ॥२॥ रातके बिछुड़े हुए चकवा-चकवी पक्षियोंको मिलाकर प्रसन्न करने-

वाले, कमलको खिलानेवाले तथा समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेवाले हैं। तेज, प्रताप, रूप और रसकी आप खान हैं ॥३॥ आप दिव्य रथपर चलते हैं, आपका सारथी (अरुण) लूला है । हे स्वामी ! आप विष्णु, शिव और ब्रह्माके ही रूप हैं ॥४॥ वेद-पुराणोंमें आपकी कीर्ति जगमगा रही है । तुलसीदास आपसे श्रीराम-भक्तिका वर माँगता है ॥५॥

शिव-स्तुति

[३]

को जाँचिये संभु तजि आन ।
दीनदयालु भगत-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥१॥
कालकूट-जुर-जरत सुरासुर, निज पन लागि किये बिष-पान ।
दारुन दनुज, जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान ॥२॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति, सकल पुरान ।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥३॥
सेवत सुलभ, उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान ।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥४॥

भावार्थ—भगवान् शिवजीको छोड़कर और किससे याचना की जाय ? आप दीनोंपर दया करनेवाले, भक्तोंके कष्ट हरनेवाले और

सब प्रकारसे समर्थ ईश्वर हैं ॥१॥ समुद्र-मन्थनके समय जब कालकूट विषकी ज्वालासे सब देवता और राक्षस जल उठे, तब आप अपने दीनोंपर दया करनेके प्रणकी रक्षाके लिये तुरन्त उस विषको पी गये। जब दारुण दानव त्रिपुरासुर जगत्‌को बहुत दुःख देने लगा, तब आपने उसको एक ही बाणसे मार डाला ॥२॥ जिस परम गतिको सन्त-महात्मा, वेद और सब पुराण महान् मुनियोंके लिये भी दुर्लभ बताते हैं, हे सदाशिव! वही परम गति काशीमें मरनेपर आप सभीको समान-भावसे देते हैं ॥३॥ हे पार्वतीपति! हे परम सुजान!! सेवा करनेपर आप सहजमें ही प्राप्त हो जाते हैं, आप कल्पवृक्षके समान मुँहमाँगा फल देनेवाले उदार हैं, आप कामदेवके शत्रु हैं। अतएव, हे कृपानिधान! तुलसीदासको श्रीरामके चरणोंकी प्रीति दीजिये ॥४॥

राग धनाश्री

[४]

दानी कहुँ संकर-सम नाहीं।
दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ॥१॥
मारिकै मार थप्यौ जगमें, जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुरकौ रीझि निवाजिबौ, कह्यौ क्यों परत मो पाहीं ॥२॥
जोग कोटि करि जो गति हरिसों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेद-बिदित तेहि पद पुरारि-पुर, कीट पतंग समाहीं ॥३॥

ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं ॥४॥

भावार्थ—शंकरके समान दानी कहीं नहीं है। वे दीनदयालु हैं, देना ही उनके मन भाता है, माँगनेवाले उन्हें सदा सुहाते हैं ॥१॥ वीरोंमें अग्रणी कामदेवको भस्म करके फिर बिना ही शरीर जगत्में उसे रहने दिया, ऐसे प्रभुका प्रसन्न होकर कृपा करना मुझसे क्योंकर कहा जा सकता है? ॥२॥ करोड़ों प्रकारसे योगकी साधना करके मुनिगण जिस परम गतिको भगवान् हरिसे माँगते हुए सकुचाते हैं वही परम गति त्रिपुरारि शिवजीकी पुरी काशीमें कीट-पतंग भी पा जाते हैं, यह वेदोंसे प्रकट है ॥३॥ ऐसे परम उदार भगवान् पार्वतीपति-को छोड़कर जो लोग दूसरी जगह माँगने जाते हैं, उन मूर्ख माँगनेवालोंका पेट भलीभाँति कभी नहीं भरता ॥४॥

[५]

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी ॥१॥
निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ॥२॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनकौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ॥३॥

दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥४॥
प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत , सुनि बिधिकी बर बानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगत-मातु मुसुकानी ॥५॥

भावार्थ–(ब्रह्माजी लोगोंका भाग्य बदलते-बदलते हैरान होकर पार्वतीजीके पास जाकर कहने लगे) हे भवानी ! आपके नाथ (शिवजी) पागल हैं। सदा देते ही रहते हैं। जिन लोगोंने कभी किसीको दान देकर बदलेमें पानेका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त किया, ऐसे लोगोंको भी वे दे डालते हैं, जिससे वेदकी मर्यादा टूटती है ॥१॥ आप बड़ी सयानी हैं, अपने घरकी भलाई तो देखिये (यों देते-देते घर खाली होने लगा है, अनधिकारियोंको) शिवजीकी दी हुई अपार सम्पत्ति देख-देखकर लक्ष्मी और सरस्वती भी (व्यंगसे) आपकी बड़ाई कर रही हैं ॥२॥ जिन लोगोंके मस्तकपर मैंने सुखका नाम-निशान भी नहीं लिखा था, आपके पति शिवजीके पागलपनके कारण उन कंगालोंके लिये स्वर्ग सजाते-सजाते मेरे नाकों दम आ गया है ॥३॥ कहीं भी रहनेको जगह न पाकर दीनता और दुखियोंके दुःख भी दुखी हो रहे हैं और याचकता तो व्याकुल हो उठी है। लोगोंकी भाग्यलिपि बनानेका यह अधिकार कृपाकर आप किसी दूसरेको सौंपिये, मैं तो इस अधिकारकी अपेक्षा भीख माँगकर खाना अच्छा समझता हूँ ॥४॥ इस प्रकार ब्रह्माजीकी प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंगसे भरी हुई सुन्दर वाणी सुनकर महादेवजी मन-ही-मन मुदित हुए और जगज्जननी पार्वती मुसकराने लगीं ॥५॥

राग रामकली

[६]

जाँचिये गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥१॥
औढर-दानि द्रवत पुनि थोरें । सकत न देखि दीन करजोरें ॥२॥
सुख-संपति, मति-सुगति सुहाई । सकल सुलभ संकर-सेवकाई ॥३॥
गये सरन आरतिकै लीन्हे । निरखि निहाल निमिषमहँ कीन्हे ॥४॥
तुलसिदास जाचक जस गावै । बिमल भगति रघुपतिकी पावै ॥५॥

भावार्थ—पार्वती-पति शिवजीसे ही याचना करनी चाहिये, जिनका घर काशी है और अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व नामक आठों सिद्धियाँ जिनकी दासी हैं ॥१॥ शिवजी महाराज औढरदानी हैं, थोड़ी-सी सेवासे ही पिघल जाते हैं। वह दीनोंको हाथ जोड़े खड़ा नहीं देख सकते, उनकी कामना बहुत शीघ्र पूरी कर देते हैं ॥२॥ शंकरकी सेवासे सुख, सम्पत्ति, सुबुद्धि और उत्तम गति आदि सभी पदार्थ सुलभ हो जाते हैं ॥३॥ जो आतुर जीव उनकी शरण गये, उन्हें शिवजीने तुरन्त अपना लिया और देखते ही पलभरमें सबको निहाल कर दिया ॥४॥ भिखारी तुलसीदास भी यश गाता है, इसे भी रामकी निर्मल भक्तिकी भीख मिले ! ॥५॥

[७]

कस न दीनपर द्रवहु उमावर । दारुन बिपति हरन करुनाकर ॥१॥
बेद-पुरान कहत उदार हर । हमरि बेर कस भयेहु कृपिनतर ॥२॥

कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ॥४॥
देहु काम-रिपु! राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु! हरहु भेद-मति ॥५॥

भावार्थ—हे उमा-रमण! आप इस दीनपर कैसे कृपा नहीं करते? हे करुणाकी खान! आप घोर विपत्तियोंके हरनेवाले हैं ॥१॥ वेद-पुराण कहते हैं कि शिवजी बड़े उदार हैं, फिर मेरे लिये आप इतने अधिक कृपण कैसे हो गये? ॥२॥ गुणनिधि नामक ब्राह्मणने आपकी कौन-सी भक्ति की थी, जिसपर प्रसन्न होकर आपने उसे अपना कल्याणपद दे दिया ॥३॥ जिस परम गतिको महान् मुनिगण भी दुर्लभ बतलाते हैं, वह आपकी काशीपुरीमें कीट-पतंगोंको भी मिल जाती है ॥४॥ हे कामारि शिव! हे स्वामी!! तुलसीदासकी भेद-बुद्धि हरण कर उसे श्रीरामके चरणोंकी भक्ति दीजिये ॥५॥

[८]

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे ॥१॥
सेवा, सुमिरन, पूजिबौ, पात आखत थोरे।
दिये जगत जहँ लगि सबै, सुख, गज, रथ, घोरे ॥२॥
गाँव बसत बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥३॥

बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे।
तुलसी दलि, रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे ॥४॥

भावार्थ—हे शंकर! आप बड़े देव हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोले हैं। जिन-जिन लोगोंने आपके सामने हाथ जोड़े, आपने बिना भेद-भावके उन सब लोगोंके दुःख दूर कर दिये ॥१॥ आपकी सेवा, स्मरण और पूजनमें तो थोड़े-से बेलपत्र और चावलोंसे ही काम चल जाता है: परन्तु इनके बदलेमें आप हाथी, रथ, घोड़े और जगत्‌में जितने सुखके पदार्थ हैं, सो सभी दे डालते हैं ॥२॥ हे वामदेव! मैं आपके गाँव (काशी) में रहता हूँ, मैंने कभी आपसे कुछ माँगा नहीं, अब आधिभौतिक कष्टके रूपमें ये आपके किंकरगण मुझे सताने लगे हैं ॥३॥ इसलिये आप इन कठोर कर्म करनेवालोंको जल्दी बुलाकर डाँट दीजिये, मैं आपकी बलैया लेता हूँ, क्योंकि ये दुष्ट तुलसीदासरूपी तुलसीके पेड़को कुचलकर उसकी जगह शाखोट (सहोर) के पेड़ लगाना चाहते हैं ॥४॥

[९]

सिव! सिव! होइ प्रसन्न करु दाया।
करुनामय उदार कीरति, बलि जाउँ हरहु निज माया ॥१॥
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा राम-पद-पंकज, सपनेहुँ भगति न होई ॥२॥
रिषय, सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज, सुर, अपर जीव जग माहीं।
तव पद बिमुख न पार पाव कोउ, कलप कोटि चलि जाहीं ॥३॥

अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव, त्रिपुरारी।
मोह-निहार-दिवाकर संकर, सरन सोक-भयहारी ॥४॥
गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी।
तुलसिदास हरि-चरन-कमल-बर, देहु भगति अबिनासी ॥५॥

भावार्थ—हे कल्याणरूप शिवजी! प्रसन्न होकर दया कीजिये। आप करुणामय हैं, आपकी कीर्ति सब ओर फैली हुई है; मैं बलिहारी जाता हूँ, कृपापूर्वक अपनी माया हर लीजिये ॥१॥ आपके नेत्र कमल-के समान हैं, आप सर्व-गुण-सम्पन्न हैं, कामदेवके शत्रु हैं। आपकी कृपा बिना न तो कोई आपकी महिमा जान सकता है और न श्रीरामके चरणकमलोंमें, स्वप्नमें भी, उसकी भक्ति होती है ॥२॥ ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दैत्य, देवता और जगत्‌में जितने जीव हैं, वे सब आपके चरणोंसे विमुख रहते हुए करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी संसार-सागर-का पार नहीं पा सकते ॥३॥ सर्प आपके भूषण हैं, दूषणको मारनेवाले (और सारे दोषोंको हरनेवाले) भगवान् श्रीरामके आप सेवक हैं, आप देवाधि-देव हैं, त्रिपुरासुरका संहार करनेवाले हैं। हे शंकर! आप मोहरूपी कोहरेका नाश करनेके लिये साक्षात् सूर्य हैं, शरणागत जीवोंका शोक और भय हरण करनेवाले हैं ॥४॥ हे काशीपते! हे श्मशाननिवासी!! हे पार्वतीके मनरूपी मानसरोवरमें विहार करनेवाले राजहंस!!! तुलसीदासको श्रीहरिके श्रेष्ठ चरणकमलोंमें अनपायिनी भक्तिका वरदान दीजिये ॥५॥

राग धनाश्री

[१०]

देव,

मोह-तम तरणि, हर, रुद्र, शंकर, शरण, हरण मम शोक लोकाभिरामं।
बाल-शशि-भाल, सुविशाल लोचन-कमल, काम-शतकोटि-लावण्य-धामं
कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर-विग्रह रुचिर, तरुण-रवि कोटि तनु तेज भ्राजै।
भस्म सर्वांग अर्धांग शैलात्मजा, व्याल-नृकपाल-माला विराजै।२।
मौलिसंकुल जटा-मुकुट विद्युच्छटा, तटिनि-वर-वारि हरि-चरण-पूतं।
श्रवण कुंडल, गरल कंठ, करुणाकंद, सच्चिदानंद वंदेऽवधूतं।३।
शूल-शायक-पिनाकासि-कर, शत्रु-वन-दहन इव धूमध्वज, वृषभ-यानं।
व्याघ्र-गज-चर्म-परिधान, विज्ञान-घन, सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमानं॥
तांडवित-नृत्यपर, डमरु डिंडिम प्रवर, अशुभ इव भाति कल्याणराशी।
महा कल्पांत ब्रह्मांड-मंडल दवन, भवन कैलास, आसीन काशी।५।
तज्ञ, सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत, विभो, विश्व भवदंशसंभव पुरारी।
ब्रह्मेंद्र, चंद्रार्क, वरुणाग्नि, वसु, मरुत, यम, अर्चि भवदंघ्रि सर्वाधिकारी॥
अकल, निरुपाधि, निर्गुण, निरंजन ब्रह्म, कर्म-पथमेकमज निर्विकारं।
अखिलविग्रह, उग्ररूप, शिव, भूपसुर, सर्वगत, शर्व, सर्वोपकारं॥७॥
ज्ञान-वैराग्य, धन-धर्म, कैवल्य-सुख, सुभग सौभाग्य शिव! सानुकूलं।
तदपि नर मूढ आरूढ संसार-पथ, भ्रमत भव, विमुख तव पादमूलं॥८॥

नष्टमति, दुष्ट अति, कष्ट-रत, खेद-गत, दास तुलसी शंभु-शरण आया ।
देहि कामारि ! श्रीराम-पद-पंकजे भक्ति अनवरत गत-भेद-माया ॥९॥

भावार्थ—हे शिव ! मोहान्धकारका नाश करनेके लिये आप साक्षात् सूर्य हैं । हे हर ! हे रुद्र ! हे शरण्य ! हे लोकाभिराम ! आप मेरा शोक हरण करनेवाले हैं । आपके मस्तकपर द्विजका बाल-चन्द्र शोभा पा रहा है, आपके बड़े-बड़े नेत्र कमलके समान हैं । आप सौ करोड़ कामदेवके समान सुन्दरताके भण्डार हैं ॥१॥ आपकी सुन्दर मूर्ति शंख, कुन्द, चन्द्रमा और कपूरके समान शुभ्रवर्ण है; करोड़ों मध्याह्नके सूर्योंके समान आपके शरीरका तेज झलमला रहा है; समस्त शरीरमें भस्म लगी हुई है । आधे अंगमें हिमाचल-कन्या पार्वतीजी शोभित हो रही हैं; साँपों और नर-कपालोंकी माला आपके गलेमें विराज रही है ॥२॥ मस्तकपर बिजलीके समान चमकते हुए पिङ्गलवर्ण जटा-जूटका मुकुट है तथा भगवान् श्रीहरिके चरणोंसे पवित्र हुई गंगाजीका श्रेष्ठ जल शोभित है । कानोंमें कुंडल हैं; कण्ठमें हलाहल विष झलक रहा है; ऐसे करुणा-कन्द, सच्चिदानन्दस्वरूप, अवधूतवेश भगवान् शिवजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥ आपके कर कमलोंमें शूल, बाण, धनुष और तलवार है; शत्रुरूपी वनको भस्म करनेके लिये आप अग्निके समान हैं । बैल आपकी सवारी है । बाघ और हाथीका चमड़ा आप शरीरमें लपेटे हुए हैं । आप विज्ञानघन हैं यानी आपके ज्ञानमें कहीं भी अवकाश नहीं है । आप सिद्ध, देव, मुनि, मनुष्य आदिके द्वारा सेवित हैं ॥४॥ ताण्डव-नृत्य करते हुए आप सुन्दर डमरूको डिमडिम डिमडिम बजाते हैं, आप देखनेमें अशुभरूप प्रतीत

होनेपर भी कल्याणकी खान हैं। महाप्रलयके समय आप सारे ब्रह्माण्डको भस्म कर डालते हैं, कैलास आपका भवन है और काशीमें आप आसन लगाये रहते हैं ॥५॥ आप तत्त्वके जाननेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, यज्ञोंके स्वामी हैं, विभु (व्यापक) हैं, सदा अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं। हे पुरारि! यह सारा विश्व आपके ही अंशसे उत्पन्न है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि, आठ वसु, उनचास मरुत् और यम आपके चरणोंकी पूजा करनेसे ही सर्वाधिकारी बने हैं ॥६॥ आप कला-रहित हैं, उपाधि-रहित हैं, निर्गुण हैं, निर्लेप हैं, परब्रह्म हैं। कर्म-पथमें एक ही हैं, जन्मरहित और निर्विकार हैं। सारा विश्व आपकी ही मूर्ति है, आपका रूप बड़ा उग्र होनेपर भी आप मङ्गलमय हैं, आप देवताओंके स्वामी हैं, सर्वव्यापी हैं, संहारकर्ता होते हुए भी सबका उपकार करनेवाले हैं ॥७॥ हे शिव! आप जिसपर अनुकूल होते हैं उसको ज्ञान, वैराग्य, धन-धर्म, कैवल्य-सुख (मोक्ष) और सुन्दर सौभाग्य आदि सब सहज ही मिल जाते हैं; तो भी खेद है कि मूर्ख मनुष्य आपकी चरणसेवासे मुँह मोड़कर संसारके विकट पथपर इधर-उधर भटकते फिरते हैं ॥८॥ हे शम्भो! हे कामारि!! मैं नष्ट-बुद्धि, अत्यन्त दुष्ट, कष्टोंमें पड़ा हुआ दुखी तुलसीदास आपकी शरण आया हूँ; आप मुझे श्रीरामके चरणारविन्दमें ऐसी अनन्य एवं अटल भक्ति दीजिये जिससे भेदरूप मायाका नाश हो जाय ॥९॥

भैरवरूप शिव-स्तुति

[११]

देव,

भीषणाकार, भैरव, भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति, विपति-हर्त्ता।
मोह-मूषक-मार्जार, संसार-भय-हरण, तारण-तरण, अभय-कर्त्ता॥१॥

अतुल बल, विपुल विस्तार, विग्रह गौर, अमल अति धवल धरणीधराभं।
शिरसि संकुलित-कल-जूट पिंगलजटा, पटल शत-कोटि-विद्युच्छटाभं ॥
भ्राज विबुधापगा आप पावन परम, मौलि-मालेव शोभा विचित्रं।
ललित लल्लाटपर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं ॥
इंदु-पावक-भानु-नयन, मर्दन-मयन, गुण-अयन, ज्ञान-विज्ञान-रूपं।
रमण-गिरिजा भवन भूधराधिप सदा, श्रवण कुंडल, वदन छवि अनूपं॥
चर्म-असि-शूल-धर, डमरु-शर-चाप-कर, यान वृषभेश, करुणा-निधानं।
जरत सुर-असुर, नरलोक शोकाकुलं, मृदुल चित, अजित, कृत गरलपानं॥
भस्म तनु-भूषणं व्याघ्र-चर्माम्बरं, उरग-नर-मौलि उर मालधारी।
डाकिनी, शाकिनी, खेचरं, भूचरं, यंत्र-मंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी ॥६॥
काल-अतिकाल, कलिकाल-व्यालादि-खग, त्रिपुर-मर्दन, भीम-कर्म भारी।
सकल लोकान्त-कल्पान्त शूलाग्र कृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी।७।
पाप-संताप-घनघोर संसृति दीन, भ्रमत जग योनि नहिं कोपि त्राता।
पाहि भैरव-रूप राम-रूपी रुद्र, बंधु, गुरु, जनक, जननी, विधाता ।८।
यस्य गुण-गण गणति विमल, मति शारदा, निगम नारद-प्रमुख ब्रह्मचारी।
शेष, सर्वेश, आसीन आनंदवन, दास तुलसी प्रणत-त्रासहारी ॥९॥

भावार्थ—हे भीषणमूर्ति भैरव ! आप भयंकर हैं। भूत, प्रेत और गणोंके स्वामी हैं। विपत्तियोंके हरण करनेवाले हैं। मोहरूपी चूहेके

लिये आप बिलाव हैं; जन्म-मरणरूप संसारके भयको दूर करनेवाले हैं; सबको तारनेवाले, स्वयं मुक्तरूप और सबको अभय करनेवाले हैं ॥१॥ आपका बल अतुलनीय है। आपका अति विशाल, गौरवर्ण, निर्मल, उज्ज्वल और शेषनागकी कान्तिके समान शरीर है। सिरपर सुन्दर पीले रंगका सौ करोड़ बिजलियोंके समान आभावाला जटाजूट शोभित हो रहा है ॥२॥ मस्तकपर मालाकी तरह विचित्र शोभावाली, परम पवित्र जलमयी देवनदी गंगा विराजमान है। सुन्दर ललाटपर चन्द्रमाकी कमनीय कला शोभा दे रही है, ऐसे कुबेरके मित्र शिवजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य आपके नेत्र हैं; आप कामदेवको भस्म कर चुके हैं; गुणोंके भण्डार और ज्ञान-विज्ञानरूप हैं। पार्वतीके साथ आप विहार करते हैं और पर्वतराज कैलास आपका भवन है। आपके कानोंमें कुण्डल हैं और आपके मुखकी सुन्दरता अनुपम है ॥४॥ आप ढाल, तलवार और शूल धारण किये हुए हैं; आप-के हाथोंमें डमरू, बाण और धनुष हैं। बैल आपकी सवारी है और आप करुणाके खजाने हैं। आपकी करुणाका इसीसे पता लगता है कि आप समुद्रसे निकले हुए भयानक अजेय विषकी ज्वालासे देवता, राक्षस और मनुष्यलोकको जलता हुआ और शोकमें व्याकुल देखकर करुणाके वश होकर उसे स्वयं पी गये ॥ ५ ॥ भस्म आपके शरीर-का भूषण है, आप बाघंबर धारण किये हुए हैं। आपने साँपों और नरमुण्डोंकी माला हृदयपर धारण कर रक्खी है। डाकिनी, शाकिनी, खेचर, (आकाशमें विचरनेवाली दुष्ट आत्माओं) भूचर (पृथ्वीपर विचरनेवाले भूत-प्रेत आदि) तथा यन्त्र-मन्त्र-का आप नाश करनेवाले हैं। प्रबल पापोंको पलभरमें नष्ट

कर डालते हैं ॥ ६ ॥ आप कालके भी महाकाल हैं, कलिकालरूपी सर्पोंके लिये आप गरुड़ हैं। त्रिपुरासुरका मर्दन करनेवाले तथा और बड़े-बड़े भयानक कार्य करनेवाले हैं। समस्त लोकोंके नाश करनेवाले महाप्रलयके समय अपनी त्रिशूलकी नोकसे दिग्गजोंको छेदकर आप गुणातीत होकर नृत्य करते हैं ॥७॥ इस पाप-सन्तापसे पूर्ण भयानक संसारमें मैं दीन होकर चौरासी लाख योनियोंमें भटक रहा हूँ, मुझे कोई भी बचानेवाला नहीं है। हे भैरवरूप! हे रामरूपी रुद्र!! आप ही मेरे बन्धु, गुरु, पिता, माता और विधाता हैं। मेरी रक्षा कीजिये ॥८॥ जिनके गुणोंका निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती, वेद और नारद आदि ब्रह्मज्ञानी तथा शेषजी सदा गान करते हैं, यह तुलसीदास उन सर्वेश्वर, आनन्दवन काशीमें विराजमान, भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले शिवजीको प्रणाम करता है ॥९॥

[१२]

सदा—
शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैल-कन्या-वरं, परमरम्यं।
काम-मद-मोचनं, तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं ॥१॥
कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर-गौरं शिवं, सुन्दरं, सच्चिदानन्दकंदं।
सिद्ध-सनकादि-योगींद्र-वृंदारका, विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविंदं ॥२॥
ब्रह्म-कुल-वल्लभं, सुलभमतिदुर्लभं, विकटवेषं, विभुं वेदपारं।
नौमि करुणाकरं, गरल-गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं, निर्विकारं ॥३॥
लोकनाथं, शोक-शूल-निर्मूलिनं, शूलिनं, मोह-तम-भूरि भानुं।
कालकालं, कलातीतमजरं हरं, कठिन-कलिकाल-कानन-कृशानुं

तज्ञमज्ञान-पाथोधि-घटसंभवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्यमूलं ।
प्रचुर-भव-भंजनं, प्रणत-जन-रंजनं, दास तुलसी शरण सानुकूलं ॥५॥

भावार्थ—कल्याणकारी, कल्याणके दाता, सन्तजनोंको आनन्द देनेवाले, हिमाचलकन्या पार्वतीके पति, परम रमणीय, कामदेवके घमण्डको चूर्ण करनेवाले, कमल-नेत्र, भक्तिसे प्राप्त होनेवाले महादेवका मैं भजन करता हूँ ॥१॥ जिनका शरीर शंख, कुन्द, चन्द्र और कपूरके समान चिकना, कोमल, शीतल, श्वेत और सुगन्धित है; जो कल्याणरूप, सुन्दर और सच्चिदानन्द-कन्द हैं। सिद्ध, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, योगिराज, देवता, विष्णु और ब्रह्मा जिनके चरणारविन्दकी वन्दना किया करते हैं ॥२॥ जिनको ब्राह्मणोंका कुल प्रिय है; जो सन्तोंको सुलभ और दुर्जनोंको दुर्लभ हैं; जिनका वेष बड़ा विकराल है; जो विभु हैं और वेदोंसे अतीत हैं; जो करुणाकी खान हैं; गरलको (कण्ठमें) और गंगाको (मस्तकपर) धारण करनेवाले हैं; ऐसे निर्मल, निर्गुण और निर्विकार शिवजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ जो लोकोंके स्वामी, शोक और शूलको निर्मूल करनेवाले, त्रिशूलधारी हैं। महान् मोहान्धकारको नाश करनेवाले सूर्य हैं, जो कालके भी काल हैं, कलातीत हैं, अजर हैं, आवागमनरूप संसारको हरनेवाले और कठिन कलिकालरूपी वनको जलानेके लिये अग्नि हैं ॥४॥ यह तुलसीदास उन तत्त्ववेत्ता, अज्ञानरूपी समुद्रके सोखनेके लिये अगस्त्यरूप, सर्वान्तर्यामी, सब प्रकारके सौभाग्यकी जड़, जन्म-मरणरूप अपार संसारका नाश करनेवाले, शरणागत जनोंको सुख देनेवाले सदा सानुकूल शिवजीकी शरण है ॥५॥

राग वसन्त

[१३]

सेवहु सिव-चरन-सरोज-रेनु । कल्यान-अखिल-प्रद कामधेनु ॥१॥
कर्पूर-गौर, करुना-उदार । संसार-सार, भुजगेन्द्र-हार ॥२॥
सुख-जन्मभूमि, महिमा अपार । निर्गुन, गुननायक, निराकार ॥३॥
त्रय नयन, मयन-मर्दन महेस । अहँकार-निहार-उदित दिनेस ॥४॥
बर बाल निसाकर मौलि भ्राज । त्रैलोक-सोकहर प्रमथराज ॥५॥
जिन्हकहँ बिधि सुगति न लिखी भाल। तिन्हकी गति कासीपति कृपाल
उपकारी कोऽपर हर-समान । सुर-असुर जरत कृत गरल पान ॥७॥
बहु कल्प उपायन करि अनेक । बिनु संभु-कृपा नहिं भव-बिबेक ॥८॥
बिग्यान-भवन, गिरिसुता-रमन । कह तुलसिदास मम त्रास-समन ॥९॥

भावार्थ—सम्पूर्ण कल्याणके देनेवाली कामधेनुकी तरह शिवजीके चरणकमलकी रजका सेवन करो ॥१॥ वे शिवजी कपूरके समान गौर-वर्ण हैं, करुणा करनेमें बड़े उदार हैं, इस अनात्मरूप असार संसारमें आत्मरूप सार-तत्त्व हैं, सर्पोंके राजा वासुकिका हार पहने रहते हैं ॥२॥ वे सुखकी जन्मभूमि हैं—समस्त सुख उन सुखरूपसे ही निकलते हैं, उनकी अपार महिमा है, वे तीनों गुणोंसे अतीत हैं, सब प्रकारके दिव्य गुणोंके स्वामी हैं, वस्तुतः उनका कोई आकार नहीं है ॥३॥ उनके तीन नेत्र हैं, वे मदनका मर्दन करनेवाले महेश्वर, अहंकार-रूप कोहरेके लिये उदय हुए सूर्य हैं ॥४॥ उनके मस्तकपर सुन्दर बाल

चन्द्रमा शोभित है, वे तीनों लोकोंका शोक हरण करनेवाले तथा गणोंके राजा हैं ॥५॥ विधाताने जिनके मस्तकपर अच्छी गतिका कोई योग ही नहीं लिखा, काशीनाथ कृपालु शिवजी उनकी गति हैं—शिवजीकी कृपासे वे भी सुगति पा जाते हैं ॥६॥ श्रीशंकरके समान उपकारी संसारमें दूसरा कौन है, जिन्होंने विषकी ज्वालासे जलते हुए देव-दानवोंको बचानेके लिये स्वयं विष पी लिया ॥७॥ अनेक कल्पोंतक कितने ही उपाय क्यों न किये जायँ, शिवजीकी कृपा बिना संसारके असली स्वरूपका ज्ञान कभी नहीं हो सकता ॥८॥ तुलसीदास कहते हैं कि हे विज्ञानके धाम, पार्वती-रमण शंकर! आप ही मेरे भयको दूर करनेवाले हैं ॥९॥

[१४]

देखो देखो, बन बन्यो आजु उमाकंत। मानों देखन तुमहिं आई रितु बसंत
जनु तनुदुति चंपक-कुसुम-माल। बर बसन नील नूतन तमाल।२।
कल कदलि जंघ, पद कमल लाल। सूचत कटि केहरि, गति मराल।३।
भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग। नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग।४।
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल। श्रीफल कुच, कंचुकि लता-जाल।५।
आनन सरोज, कच मधुप गुंज। लोचन बिसाल नव नील कंज।६।
पिक बचन चरित बर बर्हि कीर। सित सुमन हास, लीला समीर।७।
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान। उर बसि प्रपंच रचे पंचबान।८।
करि कृपा हरिय भ्रम-फंद काम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम।९।

भावार्थ—देखिये, शिवजी ! आज आप वन बन गये हैं। आपके अर्द्धांगमें स्थित श्रीपार्वतीजी मानो वसन्त ऋतु बनकर आपको देखने आयी हैं ॥१॥ जिनके शरीरकी कान्ति मानो चम्पाके फूलोंकी माला है, सुन्दर नीले वस्त्र नवीन तमाल-पत्र हैं ॥२॥ सुन्दर जंघाएँ केलेके वृक्ष और चरण लाल कमल हैं, पतली कमर सिंहकी और सुन्दर चाल हंसकी सूचना दे रही है ॥३॥ गहने अनेक रंगोंके बहुत-से फूल हैं, नूपुर (पैंजनी) और किंकिणी (करधनी) पक्षियोंका सुमधुर शब्द है ॥४॥ हाथ मौलसिरी और आमके पत्ते हैं, स्तन बेलके फल और चोली लताओंका जाल है ॥५॥ मुख कमल और बाल गूँजते हुए भौंरे हैं, विशाल नेत्र नवीन नील कमलकी पंखड़ियाँ हैं ॥६॥ मधुर वचन कोयल तथा सुन्दर चरित्र मोर और तोते हैं, हँसी सफेद फूल और लीला शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर है ॥७॥ तुलसीदास कहते हैं कि हे परम ज्ञानी शिवजी ! यह कामदेव मेरे हृदयमें बसकर बड़ा प्रपञ्च रचता है ॥८॥ इस कामकी भ्रम-फाँसीको काट डालिये, जिससे सुखस्वरूप श्रीराम मेरे हृदयमें सदा निवास करें ॥९॥

देवी-स्तुति

राग मारू

[१५]

दुसह दोष-दुख दलनि, करु देवि दाया।
विश्व-मूलाऽसि, जन-सानुकूलाऽसि, कर शूलधारिणि महामूलमाया।१।
तडित गर्भाङ्ग सर्वाङ्ग सुन्दर लसत, दिव्य पट भव्य भूषण विराजैं।
बालमृग-मंजुखंजन-विलोचनि, चन्द्रवदनि लखि कोटि रतिमार लाजैं।२।

रूप-सुख-शील-सीमाऽसि, भीमाऽसि, रामाऽसि, वामाऽसि वर बुद्धिबानी
छमुख-हेरम्ब-अंबासि, जगदंबिके, शंभु-जायासि जय जय भवानी ॥३॥
चंड-भुजदंड-खंडनि, बिहंडनि महिष, मुंड-मद-भंग कर अंग तोरे।
शुंभ निःशुंभ कुम्भीश रण केशरिणि, क्रोध वारीश अरि-वृन्द बोरे ।४।
निगम-आगम-अगम गुर्वि! तव गुन-कथन, उर्विधर करत जेहि सहसजीहा
देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज, राम घनश्याम तुलसी पपीहा ॥५॥

भावार्थ—हे देवि ! तुम दुःसह दोष और दुःखोंको दमन करनेवाली हो, मुझपर दया करो। तुम विश्व-ब्रह्माण्डकी मूल (उत्पत्ति-स्थान) हो, भक्तोंपर सदा अनुकूल रहती हो, दुष्टदलनके लिये हाथमें त्रिशूल धारण किये हो और सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाली मूल (अव्याकृत) प्रकृति हो ॥१॥ तुम्हारे सुन्दर शरीरके समस्त अंगोंमें बिजली-सी चमक रही है, उनपर दिव्य वस्त्र और सुन्दर आभूषण शोभित हो रहे हैं। तुम्हारे नेत्र मृगछौने और खञ्जनके नेत्रोंके समान सुन्दर हैं, मुख चन्द्रमाके समान है, तुम्हें देखकर करोड़ों रति और कामदेव लज्जित होते हैं ॥२॥ तुम रूप, सुख और शीलकी सीमा हो; दुष्टोंके लिये तुम भयानक रूप धारण करनेवाली हो। तुम्हीं लक्ष्मी, तुम्हीं पार्वती और तुम्हीं श्रेष्ठ बुद्धिवाली सरस्वती हो। तुम स्वामिकार्तिक और गणेशजीकी ही माता नहीं हो, जगज्जननी हो, शिवजीकी गृहिणी हो; हे भवानी ! तुम्हारी जय हो, जय हो ॥३॥ तुम चण्ड दानवके भुजदण्डोंका खण्डन करनेवाली और महिषासुरको मारनेवाली हो। मुण्ड दानवके घमण्डका नाश कर तुम्हींने उसके अंग-प्रत्यंग तोड़े हैं। शुंभ-निशुंभरूपी

मतवाले हाथियोंके लिये तुम रणमें सिंहिनी हो। तुमने अपने क्रोध-रूपी समुद्रमें शत्रुओंके दल-के-दल डुबो दिये हैं ॥४॥ वेद, शास्त्र और सहस्र जीभवाले शेषजी तुम्हारा गुणगान करते हैं; परन्तु उसका पार पाना उनके लिये बड़ा कठिन है। हे माता! मुझ तुलसीदासको श्रीरामजीमें वैसा ही प्रण, प्रेम और नेम दो, जैसा चातकका श्याम मेघमें होता है ॥५॥

राग रामकली

[१६]

जय जय जगजननि देवि, सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि,
भुक्ति-मुक्ति-दायिनि, भय-हरणि कालिका।
मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्वशर्वरीश-वदनि,
ताप-तिमिर तरुण तरणि-किरणमालिका ॥१॥
वर्म-चर्म कर कृपाण, शूल-शेल-धनुषबाण,
धरणि, दलनि दानव-दल, रण-करालिका।
पूतना-पिशाच-प्रेत-डाकिनि-शाकिनि, समेत,
भूत-ग्रह-बेताल-खग-मृगालि-जालिका ॥२॥
जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप-नामिनी,
समस्त-लोक-स्वामिनी, हिमशैल-बालिका।
रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम,
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत-पालिका ॥३॥

भावार्थ—हे जगत्‌की माता ! हे देवि !! तुम्हारी जय हो, जय हो। देवता, मनुष्य, मुनि और असुर सभी तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम भोग और मोक्ष दोनोंकी ही देनेवाली हो। भक्तोंका भय दूर करनेके लिये तुम कालिका हो। कल्याण, सुख और सिद्धियोंकी स्थान हो। तुम्हारा सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश है। तुम आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये मध्याह्नके तरुण सूर्यकी किरण-माला हो ॥१॥ तुम्हारे शरीरपर कवच है। तुम हाथोंमें ढाल-तलवार, त्रिशूल, सांगी और धनुष-बाण लिये हुए हो। दानवोंके दलका संहार करनेवाली हो, रणमें विकरालरूप धारण कर लेती हो। पूतना, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, भूत, ग्रह और बेतालरूपी पक्षी और मृगोंके समूहको पकड़नेके लिये तुम जालरूप हो ॥२॥ हे शिवे ! तुम्हारी जय हो। तुम्हारे अनेक रूप और नाम हैं। तुम समस्त संसारकी स्वामिनी और हिमाचलकी कन्या हो। हे शरणागतकी रक्षा करनेवाली ! मैं तुलसीदास श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें परम प्रेम और अचल नेम चाहता हूँ, सो प्रसन्न होकर मुझे दो और मेरी रक्षा करो ॥३॥

गंगा-स्तुति

राग रामकली

[१७]

जय जय भगीरथनन्दिनि, मुनि-चय-चकोर-चन्दिनि,

नर-नाग-बिबुध-बन्दिनि, जय जह्नु-बालिका।

बिस्नु-पद-सरोजजासि, ईस-सीसपर बिभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका ॥१॥
बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप-हारि,
भँवर बर बिभंगतर तरंग-मालिका।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धवलधार,
भंजन भव-भार, भक्ति-कल्पथालिका ॥२॥
निज तटबासी बिहंग, जल-थल-चर पसु-पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस-बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥३॥

भावार्थ—हे भगीरथनन्दिनी ! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम मुनियोंके समूहरूपी चकोरोंके लिये चन्द्रिकारूप हो। मनुष्य, नाग और देवता तुम्हारी वन्दना करते हैं। हे जह्नुकी पुत्री ! तुम्हारी जय हो। तुम भगवान् विष्णुके चरणकमलसे उत्पन्न हुई हो; शिवजी-के मस्तकपर शोभा पाती हो; स्वर्ग, भूमि और पाताल—इन तीन मार्गोंसे तीन धाराओंमें होकर बहती हो। पुण्योंकी राशि और पापोंको धोनेवाली हो ॥१॥ तुम अगाध निर्मल जलको धारण किये हो, वह जल शीतल और तीनों तापोंका हरनेवाला है। तुम सुन्दर भँवर और अति चञ्चल तरंगोंकी माला धारण किये हो। नगर-निवासियोंने पूजाके समय जो सामग्रियाँ भेंट चढ़ायी हैं उनसे तुम्हारी चन्द्रमाके समान धवल धारा शोभित हो रही है। वह धारा संसारके जन्म-मरण-

रूप भारको नाश करनेवाली तथा भक्तिरूपी कल्पवृक्षकी रक्षाके लिये थाल्हारूप है ॥२॥ तुम अपने तीरपर रहनेवाले पक्षी, जलचर, थलचर, पशु, पतंग, कीट और जटाधारी तपस्वी आदि सबका समानभावसे पालन करती हो। हे मोहरूपी महिषासुरको मारनेके लिये कालिकारूप गंगाजी! मुझ तुलसीदासको ऐसी बुद्धि दो कि जिससे श्रीरघुनाथजीका स्मरण करता हुआ मैं तुम्हारे तीरपर विचरा करूँ ॥३॥

[१८]

जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी ।
विष्णु-पदकंज-मकरंद इव अम्बुवर वहसि,दुख दहसिअघवृन्द-विद्राविनी
मिलित जलपात्र-अज युक्त-हरिचरणरज, विरज-वर-वारि त्रिपुरारि शिर-धामिनी ॥
जह्नु-कन्या धन्य, पुण्यकृत सगर-सुत, भूधरद्रोणि-विद्दरणि बहुनामिनी
यक्ष,गंधर्व,मुनि,किन्नरोरग,दनुज,मनुज मज्जहिं सुकृत-पुंज युत-कामिनी
स्वर्ग-सोपान, विज्ञान-ज्ञानप्रदे, मोह-मद-मदन-पाथोज-हिमयामिनी २
हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीरवर, मध्य धारा विशद, विश्व-अभिरामिनी
नील-पर्यंक-कृत-शयन सर्पेश जनु, सहस सीसावली स्रोत सुर-स्वामिनी
अमित-महिमा,अमितरूप,भूपावली-मुकुट-मनिवंद्य त्रैलोक पथगामिनी
देहि रघुवीर-पद-प्रीति निर्भर मातु, दासतुलसी त्रासहरणि भवभामिनी

भावार्थ—हे गंगाजी! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम सम्पूर्ण संसारको पवित्र करनेवाली हो। विष्णुभगवान‍्के चरण-कमलके मकरन्दरसके

समान सुन्दर जल धारण करनेवाली हो। दुःखोंको भस्म करनेवाली और पापोंके समूहका नाश करनेवाली हो ॥१॥ भगवान्‌की चरणरजसे मिश्रित तुम्हारा निर्मल सुन्दर जल ब्रह्माजीके कमण्डलुमें भरा रहता है, तुम शिवजीके मस्तकपर रहनेवाली हो। हे जाह्नवी! तुम्हें धन्य है। तुमने सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार कर दिया। तुम पर्वतोंकी कन्दराओंको विदीर्ण करनेवाली हो। तुम्हारे अनेक नाम हैं ॥२॥ जो यक्ष, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य अपनी स्त्रियोंसहित तुम्हारे जलमें स्नान करते हैं वे अनन्त पुण्योंके भागी हो जाते हैं। तुम स्वर्गकी निसेनी हो और ज्ञान-विज्ञान प्रदान करनेवाली हो। मोह, मद और कामरूपी कमलोंके नाशके लिये शिशिर ऋतुकी रात्रि हो ॥३॥ तुम्हारे दोनों सुन्दर तीरोंपर हरे और घने बेंतके वृक्ष लगे हैं और उनके बीचमें संसारको सुख पहुँचानेवाली तुम्हारी विशाल निर्मल धारा बह रही है, यह ऐसा सुन्दर दृश्य है मानो नीले रंगके पलंगपर सहस्र फनवाले शेषनाग सो रहे हैं। हे देवताओंकी स्वामिनी! तुम्हारे हजारों सोते शेषजीकी फनावली-जैसे शोभित हो रहे हैं ॥४॥ तुम्हारी असीम महिमा है, अगणित रूप हैं, राजाओंकी मुकुटमणियोंसे तुम वन्दनीय हो। हे तीनों मार्गोंसे जानेवाली! हे शिवप्रिये!! हे भव-भय-हारिणी जननी!!! मुझ तुलसीदासको श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अनन्य प्रेम दो ॥५॥

[१९]

हरनि, पाप त्रिबिध ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद, मनोरथ फरित ॥१॥

सोहत ससि धवल धार सुधा-सलिल-भरित ।
बिमलतर तरंग लसत रघुबर केसे चरित ॥२॥
तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित ?
घोर भव-अपारसिंधु तुलसी किमि तरित ॥३॥

भावार्थ—हे गंगाजी ! स्मरण करते ही तुम पापों और दैहिक, दैविक, भौतिक-इन तीनों तापोंको हर लेती हो । आनन्द और मनोकामनाओंके फलोंसे फली हुई कल्पलताके सदृश तुम पृथ्वीपर शोभित हो रही हो ॥१॥ अमृतके समान मधुर एवं मृत्युसे छुड़ानेवाले जलसे भरी हुई तुम्हारी चन्द्रमाके सदृश धवल धारा शोभा पा रही है । उसमें निर्मल रामचरित्रके समान अत्यन्त निर्मल तरङ्गें उठ रही हैं ॥२॥ हे जगज्जननी गंगाजी ! तुम न होतीं तो पता नहीं कलियुग क्या-क्या अनर्थ करता और यह तुलसीदास घोर अपार संसार-सागरसे कैसे तरता ? ॥३॥

[२०]

ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि, नभ-पताल-धरनि ।
सुर-नर-मुनि-नाग-सिद्ध-सुजन मंगल-करनि ॥१॥
देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद-दरनि ।
सगर-सुवन-साँसति-समनि, जलनिधि जल भरनि ॥२॥
महिमाकी अवधि करसि बहु बिधि-हरि-हरनि ।
तुलसी करु बानि बिमल, बिमल बारि बरनि ॥३॥

भावार्थ—हे गंगाजी ! तुम शिवजीके सिरपर बिराजती हो; आकाश,

पाताल और पृथ्वी—इन तीनों मार्गोंसे बहती हुई शोभायमान होती हो। देवता, मनुष्य, मुनि, नाग, सिद्ध और सज्जनोंका तुम कल्याण करती हो ॥१॥ तुम देखते ही दुःख, दोष, पाप, ताप और दरिद्रताका नाश कर देती हो। तुमने सगरके साठ हजार पुत्रोंको यम-यातनासे छुड़ा दिया। जलनिधि समुद्रमें तुम सदा जल भरा करती हो ॥२॥ ब्रह्माके कमण्डलुमें रहकर, विष्णुके चरणसे निकलकर और शिवजी-के मस्तकपर बिराजकर तुम्हींने तीनोंकी महिमा बढ़ा रक्खी है। हे गंगाजी! जैसा तुम्हारा निर्मल पापनाशक जल है, तुलसीदासकी वाणीको भी वैसी ही निर्मल बना दो, जिससे वह सर्वपापनाशक रामचरितका गान कर सके ॥३॥

यमुना-स्तुति

राग बिलावल

[२१]

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न।

त्यों त्यों सुकृत-सुभट कलि-भूपहिं, निदरि लगे बहु काढ़न ॥१॥

ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़ न।

तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघमेघ लागे डाढ़न ॥२॥

भावार्थ—यमुनाजी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगीं, त्यों-त्यों पुण्यरूपी योद्धा-गण कलियुगरूपी राजाका निरादर करते हुए उसे निकालने लगे ॥१॥ बरसातमें यमुनाजीका जल बढ़कर ज्यों-ज्यों मैला होने लगा, त्यों-

त्यों यमदूतोंका मुख भी काला होता गया। अन्तमें उन्हें कोई भी आसरा नहीं रहा, अब वे किसको यमलोकमें ले जायँ ? तुलसीदास कहते हैं कि यमुनाजीके बढ़ते ही पुण्यरूपी मेघने संसारके पापरूपी जवासेको जलाकर भस्म कर डाला ॥२॥

काशी-स्तुति

राग भैरव

[२२]

सेइय सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल सुमंगल-रासी ॥ १ ॥
मरजादा चहुँओर चरन बर, सेवत सुरपुर-बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥ २ ॥
अंतरऐन ऐन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी।
गलकंबल बरुना बिभाति जनु, लूम लसति सरिताऽसी ॥ ३ ॥
दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि-खलगन-भयदा-सी।
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा-सी ॥ ४ ॥
मनिकर्निका बदन-ससि सुन्दर, सुरसरि-सुख सुखमा-सी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन, पंचकोसि महिमा-सी ॥ ५ ॥
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा-सी।
सिद्धि, सची, सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा-सी ॥६॥

पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गब्य सुपंचनदा-सी।
ब्रह्म-जीव-सम रामनाम जुग, आखर बिस्व-बिकासी॥ ७॥
चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपंच-उदासी॥ ८॥
कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कला-सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी॥ ९॥

भावार्थ—इस कलियुगमें काशीरूपी कामधेनुका प्रेमसहित जीवन-भर सेवन करना चाहिये। यह शोक, सन्ताप, पाप और रोगका नाश करने-वाली तथा सब प्रकारके कल्याणोंकी खान है॥१॥ काशीके चारों ओरकी सीमा इस कामधेनुके सुन्दर चरण हैं। स्वर्गवासी देवता इसके चरणोंकी सेवा करते हैं। यहाँके सब तीर्थस्थान इसके शुभ अंग हैं और नाशरहित अगणित शिवलिङ्ग इसके रोम हैं॥२॥ अन्तर्गृही (काशीका मध्यभाग) इस कामधेनुका ऐन* (गद्दी) है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारों फल इसके चार थन हैं; वेद-शास्त्रोंपर विश्वास रखनेवाले आस्तिक लोग इसके बछड़े हैं,—विश्वासी पुरुषोंको ही इसमें निवास करनेसे मुक्तिरूपी अमृतमय दूध मिलता है; सुन्दर वरुणा नदी इसकी गल-कंबलके समान शोभा बढ़ा रही है और असी नामक नदी पूँछके रूपमें शोभित हो रही है॥३॥ दण्डधारी भैरव इसके सींग हैं, पापमें मन रखनेवाले दुष्टोंको उन सींगोंसे यह सदा डराती रहती है। लोलार्क (कुण्ड) और त्रिलोचन (एक तीर्थ) इसके नेत्र हैं और कर्णघण्टा नामक तीर्थ इसके गलेका घण्टा है॥४॥ मणि-कर्णिका इसका चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, गंगाजीसे मिलनेवाला

* थनोंके ऊपरका भाग जिसमें दूध भरा रहता है।

पाप-ताप-नाशरूपी सुख इसकी शोभा है, भोग और मोक्षरूपी सुखोंसे परिपूर्ण पञ्चकोसीकी परिक्रमा ही इसकी महिमा है ॥५॥ दयालु-हृदय विश्वनाथजी इस कामधेनुका पालन-पोषण करते हैं और पार्वती-सरीखी स्नेहमयी जगज्जननी इसपर सदा प्यार करती रहती है; आठों सिद्धियाँ, सरस्वती और इन्द्राणी शची इसका पूजन करती हैं; जगत्‌का पालन करनेवाली लक्ष्मी-सरीखी इसका रुख देखती रहती है ॥६॥ 'नमः शिवाय' यह पञ्चाक्षरी मन्त्र ही इसके पाँच प्राण हैं। भगवान् विन्दुमाधव ही आनन्द है। पञ्चनदी (पञ्चगङ्गा) तीर्थ ही इसके पञ्चगव्य* हैं। यहाँ संसारको प्रकट करनेवाले रामनामके दो अक्षर 'रकार' और 'मकार' इसके अधिष्ठाता ब्रह्म और जीव हैं ॥ ७ ॥ यहाँ मरनेवाले जीवोंका सब सुकर्म और कुकर्मरूपी घास यह चर जाती है, जिससे उनको वही परमपदरूपी पवित्र दूध मिलता है, जिसको संसारके विरक्त महात्मागण चाहा करते हैं ॥८॥ पुराणोंमें लिखा है कि भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण कला लगाकर अपने हाथोंसे इसकी रचना की है। हे तुलसीदास ! यदि तू सुखी होना चाहता है तो काशीमें रहकर श्रीरामनाम जपा कर ॥९॥

चित्रकूट-स्तुति

राग बसन्त

[२३]

सब सोच-बिमोचन चित्रकूट । कलिहरन, करन कल्यान बूट ॥१॥

सुचि अवनि सुहावनि आलबाल । कानन बिचित्र, बारी बिसाल ॥२॥

मंदाकिनि-मालिनि सदा सींच । बर बारि, बिषम नर नारि नीच ॥३॥

---

* दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र ।

साखा सुसृंग, भूरुह-सुपात। निरझर मधुबर,मृदु मलय बात ॥४॥
सुक, पिक, मधुकर,मुनिबर बिहारु। साधन प्रसून, फल चारि चारु ॥५॥
भव-घोरघाम-हर सुखद छाँह। थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह॥६॥
साधक-सुपथिक बड़े भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥७॥
रस एक, रहित-गुन-करम-काल। सिय राम लखन पालक कृपाल॥८॥
तुलसी जो राम पद चहिय प्रेम। सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥९॥

भावार्थ—चित्रकूट सब तरहके शोकोंसे छुड़ानेवाला है। यह कलियुग-का नाश करनेवाला और कल्याण करनेवाला हरा-भरा वृक्ष है ॥१॥ पवित्र भूमि इस वृक्षके लिये सुन्दर थाल्हा और विचित्र वन ही इसकी बड़ी भारी बाड़ है ॥२॥ मन्दाकिनीरूपी मालिन इसे अपने उस उत्तम जलसे सदा सींचती है, जिसमें दुष्ट और नीच स्त्री-पुरुषोंके नित्य स्नान करनेसे भी उसपर कोई बुरा असर नहीं पड़ता ॥३॥ यहाँके सुन्दर शिखर ही इसकी शाखाएँ और वृक्ष सुन्दर पत्ते हैं। झरने मधुर मकरन्द है और चन्दनकी सुगन्धसे मिली हुई पवन ही इसकी कोमलता है ॥४॥ यहाँ विहार करनेवाले श्रेष्ठ मुनिगण ही इस वृक्षमें रमनेवाले तोते, कोयल और भौंरे हैं। उनके नानाप्रकारके साधन इसके फूल हैं और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष-ये ही चार सुन्दर फल हैं ॥५॥ इस वृक्षकी छाया संसारकी जन्म-मृत्युरूप कड़ी धूपका नाश कर सुन्दर सुख देती है। जानकीनाथ श्रीरामने इसके प्रभावको सदाके लिये स्थिर कर दिया है ॥६॥ साधकरूपी श्रेष्ठ पथिक बड़े सौभाग्यसे इस वृक्षको पाकर, इससे अनेक प्रकारके मनोवाञ्छित सुख प्राप्त करके तृप्त हो जाते हैं ॥७॥ यह

मायाके तीनों गुण, काल और कर्मसे रहित सदा एकरस है, अर्थात् इसके सेवन करनेवाले माया, काल और कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं, क्योंकि कृपालु सीता, राम और लक्ष्मण इसके रक्षक हैं ॥८॥ हे तुलसी-दास ! जो तू श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम चाहता है तो चित्रकूट-पर्वतका निश्छल नियमपूर्वक सेवन कर ॥९॥

राग कान्हरा

[२४]

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।
कोपित कलि, लोपित मंगल मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु ।१।
भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहारथलु ।
सैल-सृंग भवभंग-हेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु ॥२॥
जहँ जनमे जग-जनक जगतपति, बिधि-हरि-हर परिहरि प्रपंच छलु ।
सकृत प्रवेस करत जेहि आश्रम, बिगत-बिषाद भये पारथ नलु ॥३॥
न करु बिलंब बिचारु चारुमति, बरष पाछिले सम अगिले पलु ।
मंत्र सो जाइ जपहि, जो जपि भे, अजर अमर हर अचइ हलाहलु ॥४॥
रामनाम-जप जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु ।
करिहैं राम भावतौ मनकौ, सुख-साधन, अनयास महाफलु ॥५॥
कामद मनि कामता-कलपतरु सो जुग-जुग जागत जगतीतलु ।
तुलसी तोहि बिसेषि बूझिये, एक प्रतीति-प्रीति एकै बलु ॥६॥

भावार्थ—हे चित्त ! अब तो चेतकर चित्रकूटको चल। कलियुगने क्रोध कर धर्म और ईश्वरभक्तिरूप कल्याणके मार्गोंका लोप कर दिया है; मोह, माया और पापोंकी नित्य वृद्धि हो रही है ॥१॥ चित्रकूटमें श्रीरामजी-के चरणोंसे चिह्नित भूमिका और उनके विहारके स्थान वनका दर्शन कर। वहाँ कपट, पाखण्ड और दम्भके दल (समूह) का नाश करनेवाले पर्वतके उन शिखरोंको देख, जो जन्म-मरणरूप संसारसे छुटकारा मिलनेके कारण हैं ॥२॥ जहाँपर जगत्पिता जगदीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिवने सती अनसूयाके पुत्ररूपसे प्रपञ्च और छल छोड़कर जन्म लिया है। जिस चित्रकूटरूपी आश्रममें एक बार प्रवेश करते ही जुएमें हारकर वन-वन भटकते हुए युधिष्ठिर आदि पाण्डव और राजा नलका सारा दुःख दूर हो गया ॥३॥ वहाँ जानेमें अब देर न कर, अपनी अच्छी बुद्धिसे यह तो विचार कर कि जितने वर्ष बीत गये सो तो गये, अब आयुके जितने पल बाकी हैं, वे बीते हुए वर्षोंके समान हैं। एक-एक पलको एक-एक वर्षके समान बहुमूल्य समझकर, मृत्युको समीप जानकर, जल्दी चित्रकूट जाकर उस श्रीराम-मन्त्रका जप कर, जिसे जपनेसे श्रीशिवजी कालकूट विष पीनेपर भी अजर-अमर हो गये ॥४॥ जब तू वहाँ निरन्तर श्रीराम-नाम-जपरूपी सर्वश्रेष्ठ यज्ञ और पयस्विनी नदीके पवित्र जलमें स्नान तथा उसके जलका पान करता रहेगा, तब श्रीरामजी तेरी मनोकामना पूरी कर देंगे और इस सुखमय साधनसे सहजहीमें तुझे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चारों फल दे देंगे ॥५॥ चित्रकूटमें जो कामतानाथ पर्वत है, वही मनोरथ पूर्ण करनेवाली चिन्तामणि और कल्पवृक्ष है, जो युग-युग पृथ्वीपर जगमगाता है। यों तो चित्रकूट सभीके लिये सुखदायक है, परन्तु हे

तुलसीदास ! तुझे तो विशेषरूपसे उसीके विश्वास, प्रेम और बलपर निर्भर रहना चाहिये ॥६॥

हनुमत्-स्तुति

राग धनाश्री

[२५]

जयत्यंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-विधु, विबुध-कुल-कैरवानंदकारी ।
केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगन शोक-संतापहारी ॥१॥
जयति जय बालकपि केलि-कौतुक उदित चंडकर-मंडल-ग्रासकर्त्ता ।
राहु-रवि-शक्र पवि-गर्व-खर्वीकरण शरण भयहरण जय भुवन-भर्त्ता॥२॥
जयति रणधीर, रघुवीरहित, देवमणि, रुद्र-अवतार, संसार-पाता ।
विप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आशिषाकारवपुष,विमलगुण,बुद्धि-वारिधि-विधाता
जयति सुग्रीव ऋक्षादि रक्षण-निपुण, बालि बलशालि-बध-मुख्यहेतू ।
जलधि-लंघन सिंह सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर-नगर-उत्पात-केतू ४
जयति भूनन्दिनी-शोच-मोचन विपिन-दलन घननादवश विगतशंका ।
लूमलीलाऽनल-ज्वालमालाकुलित, होलिकाकरण लंकेश-लंका ॥५॥
जयति सौमित्रि-रघुनंदनानंदकर, ऋक्ष-कपि-कटक-संघट-विधायी ।
बद्ध-वारिधि-सेतु,अमर-मंगल हेतु, भानुकुल-केतु-रणविजयदायी ॥६॥
जयति जय वज्रतनु दशन नख मुख विकट,चंड-भुजदंड तरु-शैल-पानी ।
समर-तैलिक-यंत्र तिल-तमीचर-निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी ७

जयति दशकंठ-घटकर्ण-वारिद-नाद-कदन-कारन, कालिनेमि-हंता ।
अघटघटना-सुघट सुघट-विघटन विकट, भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता
जयति विश्व-विख्यात बानैत-विरुदावली, विदुष बरनत वेद विमल बानी
दास तुलसी त्रास शमन सीतारमण संग शोभित राम-राजधानी ॥९॥

भावार्थ—हे हनुमान्‌जी ! तुम्हारी जय हो । तुम अञ्जनीके गर्भरूपी समुद्रसे चन्द्ररूप उत्पन्न होकर देव-कुल-रूपी कुमुदोंको प्रफुल्लित करनेवाले हो, पिता केसरीके सुन्दर नेत्र-रूपी चकोरोंको आनन्द देनेवाले हो और समस्त लोकोंका शोक-सन्ताप हरनेवाले हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो, जय हो । तुमने बचपनमें ही बाललीलासे उदयकालीन प्रचण्ड सूर्यके मण्डलको लाल-लाल खिलौना समझकर निगल लिया था । उस समय तुमने राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्रका गर्व चूर्ण कर दिया था । हे शरणागतके भय हरनेवाले ! हे विश्वका भरण-पोषण करनेवाले !! तुम्हारी जय हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो, तुम रणमें बड़े धीर, सदा श्रीरामजीका हित करनेवाले, देव-शिरोमणि रुद्रके अवतार और संसारके रक्षक हो । तुम्हारा शरीर ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वादका मूर्तिमान् रूप है । तुम निर्मल गुण और बुद्धिके समुद्र तथा विधाता हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो ! तुमने सुग्रीव तथा रीछ (जाम्बवन्त) आदिकी कुशलतासे रक्षा की । महा बलवान् बालिके मरवानेमें तुम्हीं मुख्य कारण हो । तुम्हीं समुद्र लाँघनेके समय सिंहिका राक्षसीका मर्दन करनेमें सिंहरूप तथा राक्षसोंकी लङ्कापुरीके लिये धूमकेतु (पुच्छल तारे) रूप हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो । तुम श्रीसीताजीको राम-

का सन्देशा सुनाकर उनकी चिन्ता दूर करनेवाले, रावणके अशोक-वनको उजाड़नेवाले हो। तुमने अपनेको निःशंक होकर मेघनादसे ब्रह्मास्त्र-में बँधवा लिया था। अपनी पूँछकी लीलासे अग्निकी धधकती हुई लपटोंसे व्याकुल हुए रावणकी लङ्कामें चारों ओर होली जला दी थी ॥५॥ तुम्हारी जय हो। तुम श्रीराम-लक्ष्मणको आनन्द देनेवाले, रीछ और बन्दरोंकी सेना इकट्ठी कर समुद्रपर पुल बाँधनेवाले, देवताओंका कल्याण करनेवाले और सूर्यकुल-केतु श्रीरामजीको संग्राममें विजय-लाभ करानेवाले हो ॥६॥ तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम्हारा शरीर, दाँत, नख और विकराल मुख वज्रके समान है। तुम्हारे भुजदण्ड बड़े ही प्रचण्ड हैं, वृक्षों और पर्वतोंको तुम हाथोंपर उठानेवाले हो। तुमने संग्रामरूपी कोल्हूमें राक्षसोंके समूह और बड़े-बड़े योद्धा-रूपी तिलोंको डाल-डाल-कर घानीकी तरह पेल डाला ॥७॥ तुम्हारी जय हो। रावण, कुम्भकर्ण और मेघनादके नाशमें तुम्हीं कारण हो; कपटी कालनेमिको तुम्हींने मारा था। तुम असम्भवको सम्भव और सम्भवको असम्भव कर दिखानेवाले हो। तुम बड़े विकट हो। पृथ्वी, पाताल, समुद्र और आकाश सभी स्थानोंमें तुम्हारी अबाधित गति है ॥८॥ तुम्हारी जय हो। तुम विश्वमें विख्यात हो, वीरताका बाना सदा ही कसे रहते हो। विद्वान् और वेद अपनी विशुद्ध वाणीसे तुम्हारी विरदावलीका वर्णन करते हैं। तुम तुलसीदासके भव-भयको नाश करनेवाले हो और अयोध्यामें सीतारमण श्रीरामजीके साथ सदा शोभायमान रहते हो ॥ ९ ॥

[२६]

जयति मर्कटाधीश, मृगराज-विक्रम, महादेव, मुद-मंगलालय, कपाली ।
मोह-मद-क्रोध-कामादि-खल-संकुला, घोर संसार-निशि किरणमाली ॥ १ ॥

जयति लसदंजनाऽदितिज, कपि-केसरी-कश्यप-प्रभव, जगदार्त्तिहर्त्ता ।
लोक-लोकप-कोक-कोकनद-शोकहर, हंस हनुमान कल्याणकर्त्ता ।।२।।
जयति सुविशाल-विकराल-विग्रह, वज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी ।
कुलिशनख, दशनवर लसत, बालधि बृहद, वैरि-शस्त्रास्त्रधर कुधरधारी ।।
जयति जानकी-शोच-संताप-मोचन, राम-लक्ष्मणानंद-वारिज-विकासी।
कीश-कौतुक-केलि लूम-लंका-दहन, दलन कानन तरुण तेजरासी।।४।।
जयति पाथोधि-पाषाण-जलयानकर, यातुधान-प्रचुर-हर्ष-हाता ।
दुष्ट रावण-कुंभकर्ण-पाकारिजित-मर्मभित्, कर्म-परिपाक-दाता ।।५।।
जयति भुवनैकभूषण, विभीषणवरद, विहित कृत राम-संग्राम साका ।
पुष्पकारूढ़ सौमित्रि-सीता-सहित, भानु-कुलभानु-कीरति-पताका ।।६।।
जयति पर-यंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमन-कूट-कृत्यादि-हंता ।
शाकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-वेताल-भूत-प्रमथ-यूथ-यंता ।।७।।
जयति वेदान्तविद विविध-विद्या-विशद, वेद-वेदांगविद ब्रह्मवादी ।
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो, विमल गुण गनति शुकनारदादी ८
जयति काल-गुण-कर्म-माया-मथन, निश्चलज्ञान, व्रत-सत्यरत, धर्मचारी।
सिद्ध-सुरवृंद-योगींद्र-सेवित सदा, दास तुलसी प्रणत भय-तमारी ।।९।।

भावार्थ—हे हनुमान्‌जी ! तुम्हारी जय हो। तुम बन्दरोंके राजा, सिंहके समान पराक्रमी, देवताओंमें श्रेष्ठ, आनन्द और कल्याणके स्थान तथा कपालधारी शिवजीके अवतार हो। मोह, मद, क्रोध, काम आदि

दुष्टोंसे व्याप्त घोर संसाररूपी अन्धकारमयी रात्रिके नाश करनेवाले तुम साक्षात् सूर्य हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो। तुम्हारा जन्म अञ्जनीरूपी अदिति (देव-माता) और वानरोंमें सिंहके समान केसरीरूपी कश्यपसे हुआ है। तुम जगत्के कष्टोंके हरनेवाले हो तथा लोक और लोकपालरूपी चकवा-चकवी और कमलोंका शोक नाश करनेवाले साक्षात् कल्याण-मूर्ति सूर्य हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो। तुम्हारा शरीर बड़ा विशाल और भयङ्कर है, प्रत्येक अंग वज्रके समान है। बड़े भारी भुजदण्ड हैं, वज्रके समान नख और सुन्दर दाँत शोभित हो रहे हैं। तुम्हारी पूँछ बड़ी लम्बी है, शत्रुओंके संहारके लिये तुम अनेक प्रकारके अस्त्र, शस्त्र और पर्वतोंको लिये रहते हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो। तुम श्रीसीताजीके शोक-सन्तापका नाश करनेवाले और श्रीराम-लक्ष्मणके आनन्दरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले हो। बन्दर-स्वभावसे खेलमें ही पूँछसे लंका जला देनेवाले, अशोक-वनको उजाड़नेवाले, तरुण तेजके पुञ्ज मध्याह्नकालके सूर्यरूप हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो। तुम समुद्रपर पत्थरका पुल बाँधनेवाले, राक्षसोंके महान् आनन्दके नाश करनेवाले, दुष्ट रावण, कुम्भकर्ण और मेघनादके मर्म-स्थानोंको तोड़कर उनके कर्मोंका फल देनेवाले हो ॥५॥ तुम्हारी जय हो। तुम त्रिभुवनके भूषण हो, विभीषणको राम-भक्तिका वर देनेवाले हो और रण-में श्रीरामजीके साथ बड़े-बड़े काम करनेवाले हो। लक्ष्मण और सीताजी-सहित पुष्पक-विमानपर विराजमान सूर्यकुलके सूर्य श्रीरामजीकी कीर्ति-पताका तुम्हीं हो ॥६॥ तुम्हारी जय हो। तुम शत्रुओंद्वारा किये जाने-वाले यन्त्र-मन्त्र, अभिचार (मोहन-उच्चाटन आदि प्रयोगों तथा जादू-टोने) को ग्रसनेवाले तथा गुप्त मारण-प्रयोग और प्राणनाशिनी कृत्या

आदि क्रूर देवियोंका नाश करनेवाले हो । शाकिनी, डाकिनी, पूतना, प्रेत, वेताल, भूत और प्रमथ आदि भयानक जीवोंके नियन्त्रण-कर्ता शासक हो ॥७॥ तुम्हारी जय हो । तुम वेदान्तके जाननेवाले, नाना-प्रकारकी विद्याओंमें विशारद, चार वेद और छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) के ज्ञाता तथा शुद्ध ब्रह्मके स्वरूप-का निरूपण करनेवाले हो । ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यके पात्र हो अर्थात् तुम्हींने इनको अच्छी तरहसे जाना है । तुम समर्थ हो । इसीसे शुकदेव और नारद आदि देवर्षि सदा तुम्हारी निर्मल गुणावली गाया करते हैं ॥८॥ तुम्हारी जय हो । तुम काल (दिन, घड़ी, पल आदि) त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) कर्म (सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण) और मायाका नाश करनेवाले हो । तुम्हारी स्थिति ज्ञानमें सदा निश्चल रहती है । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप महाव्रतोंके पालनमें तुम सदा रत हो और सदा धर्मका आचरण करते हो । सिद्ध, देवगण और योगिराज सदा तुम्हारी सेवा किया करते हैं । हे भव-भयरूपी अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्य ! यह दास तुलसी तुम्हारी शरण है ॥९॥

[२७]

जयति मंगलागार, संसारभारापहर, वानराकारविग्रह पुरारी ।
राम-रोषानल-ज्वालमाला-मिष ध्वांतचर-सलभ-संहारकारी ॥१॥
जयति मरुदंजनामोद-मंदिर, नतग्रीव सुग्रीव-दुःखैकबंधो ।
यातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंद-सिंधो ॥२॥
जयति रुद्राग्रणी, विश्व-वंद्याग्रणी, विश्वविख्यात-भट-चक्रवर्ती ।
सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्ती ॥३॥

जयति संग्रामजय, रामसंदेसहर, कौशला-कुशल-कल्याणभाषी ।
राम-विरहार्क-संतप्त-भरतादि-नरनारि-शीतलकरण कल्पशाषी ॥४॥
जयति सिंहासनासीन सीतारमण, निरखि निर्भरहरष नृत्यकारी ।
राम संभ्राज शोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-विहारी ॥५॥

भावार्थ—हे हनुमान्‌जी ! तुम्हारी जय हो । तुम कल्याणके स्थान, संसारके भारको हरनेवाले, बन्दरके आकारमें साक्षात् शिव-स्वरूप हो । तुम राक्षसरूपी पतंगोंको भस्म करनेवाली श्रीरामचन्द्रजीके क्रोधरूपी अग्नि-की ज्वालमालाके मूर्तिमान् स्वरूप हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो, तुम पवन और अञ्जनी देवीको आनन्द देनेवाले हो । नीची गर्दन किये हुए, दुखी सुग्रीव-के दुःखमें तुम सच्चे बन्धुके समान सहायक हुए थे । तुम राक्षसोंके कराल क्रोधरूपी प्रलय-कालकी अग्निका नाश करनेवाले और सिद्ध, देवता तथा सज्जनोंके लिये आनन्दके समुद्र हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो, तुम एकादश रुद्रोंमें और जगत्पूज्य ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हो, संसारभरके शूरवीरोंके प्रसिद्ध सम्राट् हो । तुम सामवेदका गान करनेवालोंमें और कामदेवको जीतनेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हो । तुम श्रीरामजीके हितकारी और श्रीराम-भक्तोंके साथ रहनेवाले रक्षक हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो । तुम संग्राममें विजय पानेवाले, श्रीरामजीका सन्देशा (सीताजीके पास) पहुँचानेवाले और अयोध्याका कुशल-मंगल (श्रीरघुनाथजीसे) कहने-वाले हो । तुम श्रीरामजीके वियोगरूपी सूर्यसे जलते हुए भरत आदि अयोध्यावासी नर-नारियोंका ताप मिटानेके लिये कल्पवृक्ष हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो । तुम श्रीरामजीको राज्य-सिंहासनपर विराजमान देख,

आनन्दमें विह्वल होकर नाचनेवाले हो। जैसे श्रीरामजी अयोध्यामें सिंहासनपर विराजित हो शोभा पा रहे थे, वैसे ही तुम इस तुलसीदास-की मानसरूपी अयोध्यामें सदा विहार करते रहो ॥५॥

[२८]

जयति वात-संजात, विख्यातविक्रम, बृहद्बाहु, बलबिपुल, बालधिबिसाला।
जातरूपाचलाकारविग्रह, लसल्लोम विद्युल्लता ज्वालमाला ॥१॥
जयति बालार्क वर-वदन, पिंगल-नयन, कपिश-कर्कश-जटाजूटधारी।
विकट भृकुटी, वज्र दशन नख, वैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी ॥२॥
जयति भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्वहर, धनंजय-रथ-त्राण-केतू।
भीष्म-द्रोण-कर्णादि-पालित, कालदृक सुयोधन-चमू-निधन-हेतू ॥३॥
जयति गतराजदातार, हंतार संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी।
ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-व्याधिबाधा-शमन घोर मारी ॥४॥
जयति निगमागम व्याकरण करणलिपि, काव्यकौतुक-कला-कोटि-सिंधो।
सामगायक, भक्त-कामदायक, वामदेव, श्रीराम-प्रिय-प्रेम-बंधो ॥५॥
जयति धर्मांशु-संदग्ध-संपाति नवपक्ष-लोचन-दिव्य-देहदाता।
कालकलि-पापसंताप-संकुल सदा, प्रणत तुलसीदास तात-माता ॥६॥

भावार्थ—हे हनुमान्जी! तुम्हारी जय हो। तुम पवनसे उत्पन्न हुए हो, तुम्हारा पराक्रम प्रसिद्ध है। तुम्हारी भुजाएँ बड़ी विशाल हैं, तुम्हारा बल अपार है। तुम्हारी पूँछ बड़ी लम्बी है। तुम्हारा शरीर सुमेरु-पर्वतके

समान विशाल एवं तेजस्वी है। तुम्हारी रोमावली बिजलीकी रेखा अथवा ज्वालाओंकी मालाके समान जगमगा रही है ॥१॥ तुम्हारी जय हो। तुम्हारा मुख उदय-कालीन सूर्यके समान सुन्दर है। पीले नेत्र हैं, तुम्हारे सिरपर भूरे रंगकी कठोर जटाओंका जूड़ा बँध रहा है। तुम्हारी भौंहें टेढ़ी हैं। तुम्हारे दाँत और नख वज्रके समान हैं, तुम शत्रुरूपी मदमत्त हाथियोंके दलको विदीर्ण करनेवाले सिंहके समान हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो। तुम भीमसेन, अर्जुन और गरुड़के गर्वको हरनेवाले तथा अर्जुनके रथ-की पताकापर बैठकर उसकी रक्षा करनेवाले हो। तुम भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण आदिसे रक्षित कालकी दृष्टिके समान भयानक, दुर्योधनकी महान् सेनाका नाश करनेमें मुख्य कारण हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो। तुम सुग्रीवके गये हुए राज्यको फिरसे दिलानेवाले, संसारके संकटोंका नाश करनेवाले और दानवोंके दर्पको चूर्ण करनेवाले हो। तुम अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टीडी, चूहे, पक्षी और राज्यके आक्रमणरूप खेतीमें बाधक छः प्रकारकी ईति, महाभय, ग्रह, प्रेत, चोर, अग्निकाण्ड, रोग, बाधा और महामारी आदि क्लेशोंके नाश करनेवाले हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो। तुम वेद, शास्त्र और व्याकरणपर भाष्य लिखनेवाले और काव्य-के कौतुक तथा करोड़ों कलाओंके समुद्र हो। तुम सामवेदका गान करनेवाले, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले साक्षात् शिवरूप हो और श्रीरामके प्यारे प्रेमी बन्धु हो ॥५॥ तुम्हारी जय हो। तुम सूर्यसे जले हुए सम्पाती नामक (जटायुके भाई) गृद्धको नये पंख, नेत्र और दिव्य शरीरके देनेवाले हो। और कलिकालके पाप-सन्तापोंसे पूर्ण इस शरणागत तुलसीदासके माता-पिता हो ॥६॥

[२९]

जयति निर्भरानंद-संदोह कपिकेसरी, केसरी-सुवन भुवनैकभर्त्ता ।
दिव्य भूम्यंजना-मंजुलाकर-मणे, भक्त-संताप-चिंतापहर्त्ता ॥१॥
जयति धर्मार्थ-कामापवर्गद विभो, ब्रह्मलोकादि-वैभव-विरागी ।
वचन-मानस-कर्म सत्य-धर्मव्रती, जानकीनाथ-चरणानुरागी ॥२॥
जयति बिहगेश-बलबुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मनमथ-मथन,ऊर्ध्वरेता ।
महानाटक-निपुन, कोटि-कविकुल-तिलक, गानगुण-गर्व-गंधर्व-जेता ॥
जयति मंदोदरी-केश-कर्षण, विद्यमान दशकंठ भट-मुकुट मानी ।
भूमिजा-दुःख संजात-रोषांतकृत जातना जंतु कृत जातुधानी ॥४॥
जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच, लोचन सजल, शिथिल वाणी ।
रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर, पाहि, दास तुलसी शरण, शूलपाणी ॥५॥

भावार्थ—हे हनुमान्‌जी ! तुम्हारी जय हो। तुम पूर्ण आनन्दके समूह, वानरोंमें साक्षात् केसरी सिंह (बबर शेर), केसरीके पुत्र और संसारके एकमात्र भरण-पोषण करनेवाले हो। तुम अञ्जनी-रूपी दिव्य भूमिकी सुन्दर खानसे निकली हुई मनोहर मणि हो और भक्तोंके सन्ताप और चिन्ताओंको सदा नाश करते हो ॥१॥ हे विभो ! तुम्हारी जय हो। तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके देनेवाले हो, ब्रह्मलोकतकके समस्त भोग-ऐश्वर्योंमें वैराग्यवान् हो। मन, वचन और कर्मसे सत्यरूप धर्मके व्रतका पालन करनेवाले हो और श्रीजानकीनाथ रामजीके चरणोंके परम प्रेमी हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो। तुम गरुड़के बल, बुद्धि और वेगके बड़े भारी

गर्वको खर्व करनेवाले तथा कामदेवके नाश करनेवाले बाल-ब्रह्मचारी हो। तुम बड़े-बड़े नाटकोंके निर्माण और अभिनयमें निपुण हो, करोड़ों महाकवियोंके कुलशिरोमणि और गान-विद्याका गर्व करनेवाले गन्धर्वोंपर विजय पानेवाले हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो। तुम वीरोंके मुकुटमणि, महा अभिमानी रावणके सामने उसकी स्त्री मन्दोदरीके बाल खींचनेवाले हो। तुमने श्रीजानकीजीके दुःखको देखकर उत्पन्न हुए क्रोधके वश हो राक्षसियोंको ऐसा क्लेश दिया जैसा यमराज पापी प्राणियोंको दिया करता है ॥४॥ तुम्हारी जय हो। श्रीरामजीका चरित्र सुनते ही तुम्हारा शरीर पुलकित हो जाता है, तुम्हारे नेत्रोंमें प्रेमके आँसू भर आते हैं, तुम्हारी वाणी गद्गद हो जाती है। हे श्रीरामके चरण-कमल-परागके रसिक भौंरे! हे हनुमान्-रूपी त्रिशूलधारी शिव! यह दास तुलसी तुम्हारी शरण है, इसकी रक्षा करो ॥५॥

राग सारंग

[३०]

जाके गति है हनुमानकी।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषानकी ॥१॥
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आनकी।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन, मूरति मोद-निधानकी ॥२॥
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी।
तुलसी कपिकी कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यानकी ॥३॥

भावार्थ—जिसको (सब प्रकारसे) श्रीहनुमान्‌जीका आश्रय है, उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो ही गयी। यह सिद्धान्त वज्र(हीरे)की लकीरके समान अमिट है ॥१॥ क्योंकि श्रीहनुमान्‌जी असम्भव घटनाको सम्भव और सम्भवको असम्भव करनेवाले हैं, ऐसे यशका बाना दूसरे किसीका भी नहीं है। श्रीहनुमान्‌जीकी आनन्दमयी मूर्तिका स्मरण करते ही सारे संकट और शोक मिट जाते हैं ॥२॥ सब प्रकारके कल्याणोंकी खान श्रीहनुमान्‌जीकी कृपा-दृष्टि जिसपर है, हे तुलसीदास! उसपर पार्वती, शङ्कर, लक्ष्मण, श्रीराम और जानकीजी सदा कृपा किया करती हैं ॥३॥

राग गौरी

[३१]

ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोरको ॥१॥
जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन खल बरजोर को।
बेद-पुरान-प्रगट पुरुषारथ सकल-सुभट-सिरमोर को ॥२॥
उथपे-थपन, थपे उथपन पन, बिबुधबृंद बँदिछोर को।
जलधि लाँघि दहि लंक प्रबल बल दलन निसाचर घोर को ॥३॥
जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोरको।
जाकी चिबुक-चोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोरको ॥४॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोरको।
सदा अभय, जय, मुद-मंगलमय जो सेवक रनरोरको ॥५॥

भगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोरको ।
तुलसी फल चारों करतल जस गावत गईबहोरको ॥६॥

भावार्थ—जिसे सब प्रकारसे केसरी-नन्दन श्रीहनुमान्‌जीका भरोसा है, उसकी ओर भला क्रोधभरी दृष्टिसे कौन ताक सकता है? ॥१॥ हनुमान्‌जीके समान भक्तोंको प्रसन्न करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला, दुष्टोंका मुँह तोड़नेवाला बड़ा बलवान् संसारमें और कौन है? इनका पुरुषार्थ वेदों और पुराणोंमें प्रकट है। इनके समान समस्त शूरवीरोंमें शिरोमणि दूसरा कौन है? ॥२॥ इनके समान (सुग्रीव, विभीषण आदि) राज्यबहिष्कृतोंका पुनः स्थापित करनेवाला, सिंहासनपर स्थित (वालि, रावण आदि) राजाधिराजोंको राज्यच्युत करनेवाला, देवताओंको प्रण करके रावणके बन्धनसे छुड़ानेवाला, समुद्र लाँघकर लङ्काको जलानेवाला और बड़े-बड़े बलवान् भयानक राक्षसोंके बलका नाश करनेवाला दूसरा कौन है? ॥३॥ जिनके बाल-विनोदको याद करके अब भी प्रातःकालके सूर्यदेव डरा करते हैं, जिनकी ठोड़ीकी चोटने कठोर वज्रके दाँतोंका घमण्ड चूर कर दिया ॥४॥ बड़े-बड़े लोकपाल भी जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, ऐसे रणबाँकुरे हनुमान्‌जीकी जो सेवा करता है, वह सदा निडर रहता है, शत्रुओंपर विजयी होता है और संसारके सभी सुख तथा कल्याणरूप मोक्षको प्राप्त करता है ॥५॥ पूर्णकला-सम्पन्न चन्द्रमा-जैसे श्रीरामचन्द्रजीके मुखको अनिमेष-दृष्टिसे देखनेवाले चकोररूप हनुमान्‌जीका नाम भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान है। हे तुलसीदास ! गयी हुई वस्तुको फिरसे दिला देनेवाले श्रीहनुमान्‌जीका जो गुण गाता है, अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूप चारों फल सदा उसकी हथेलीपर धरे रहते हैं ॥६॥

राग बिलावल

[३२]

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले ।
साहेब कहूँ न रामसे, तोसे न उसीले ॥१॥
तेरे देखत सिंहके सिसु मेंढक लीले ।
जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुनगन कीले ॥२॥
हाँक सुनत दसकंधके भये बंधन ढीले ।
सो बल गयो किधौं भये अब गरबगहीले ॥३॥
सेवकको परदा फटे तू समरथ सीले ।
अधिक आपुते आपुनो सुनि मान सही ले ॥४॥
साँसति तुलसीदासकी सुनि सुजस तुही ले ।
तिहूँकाल तिनको भलौ जे राम रँगीले ॥५॥

भावार्थ—हे हठीले (भक्तोंके कष्ट बरबस दूर करनेवाले) हनुमान् ! तुझे ऐसा नहीं चाहिये। श्रीराम-सरीखे तो कहीं स्वामी नहीं हैं और तेरे समान कहीं सहायक नहीं हैं ॥१॥ यह होते हुए भी आज तेरे देखते-देखते मुझ सिंहके बच्चेको (तुझ सिंहरूप सहायकके शरणागत मुझ बालकको) कलियुगरूपी मेंढक (जिसकी तेरे सामने कोई हस्ती नहीं है) निगले लेता है। मालूम होता है, इस कलियुगने तेरे भक्तवत्सलता शरणागतकी रक्षाके लिये हठकारिता, उदारता आदि गुणोंको कील

दिया है ॥२॥ एक दिन तेरी हुंकार सुनते ही रावणके अङ्ग-अङ्गके जोड़ ढीले पड़ गये थे, वह तेरा बल-पराक्रम आज कहाँ गया ? अथवा क्या तू अब दयालुके बदले घमण्डी हो गया है ? ॥३॥ आज तेरे सेवकका पर्दा फट रहा है, उसे तू सी दे,—जाती हुई इज्ज़तको बचा दे, तू बड़ा समर्थ है, पहले तो तू सेवकको अपनेसे अधिक मानता, उसकी सुनता और सहता था, पर अब क्या हो गया ? ॥४॥ इस तुलसीदासके संकटको सुनकर उसे दूर करके यह सुयश तू ही ले ले। वास्तवमें तो जो रामके रँगीले भक्त हैं उनका तीनों कालोंमें कल्याण ही है ॥५॥

[३२]

समरथ सुअन समीरके, रघुबीर-पियारे।
मोपर कीबी तोहि जो करि लेहि भिया रे ॥१॥
तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी-चिया रे।
अँधियारो मेरी बार क्यों, त्रिभुवन-उजियारे ॥२॥
केहि करनी जन जानिकै सनमान किया रे।
केहि अघ औगुन आपने कर डारि दिया रे ॥३॥
खाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागि जिया रे ॥४॥
जो तोसों होतौ फिरौं मेरो हेतु हिया रे।
तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इयारे ॥५॥
तोसो ग्यान-निधान को सरबग्य बिया रे।
हौं समुझत साईं-द्रोहकी गति छार छिया रे ॥६॥

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे।
तहँ तुलसीके कौनको काको तकिया रे ॥७॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् पवनकुमार! हे रामजीके प्यारे! तुझे मुझ-पर जो कुछ करना हो सो भैया अभी कर ले ॥१॥ तेरे प्रतापसे इमलीके चियें भी (रुपये-अशरफीकी जगह) चल सकते हैं; अर्थात् यदि तू चाहे तो मेरे-जैसे निकम्मोंकी भी गणना भक्तोंमें हो सकती है। फिर मेरेलिये, हे त्रिभुवन-उजागर! इतना अँधेरा क्यों कर रक्खा है? ॥२॥ पहले मेरी कौन-सी अच्छी करनी जानकर तैंने मुझे अपना दास समझा था तथा मेरा सम्मान किया था और अब किस पाप तथा अवगुणसे मुझे हाथसे फेंक दिया, अपनाकर भी त्याग दिया? ॥३॥ मैंने तो सदासे ही तेरे नामपर टुकड़ा माँगकर खाया, तेरी बलैया लेता हूँ, मैं तो तेरे ही बलके भरोसेपर जगत्में उजागर होकर अबतक जीता रहा हूँ॥४॥जो मैं तुझसे विमुख होता, तो मेरा हृदय ही उसमें कारण होता, फिर मैं निज-परिवारके मनुष्यकी तरह भली-बुरी सुनाकर तुझे अपना मुँह कैसे दिखाता? ॥५॥ तू मेरे मनकी सब कुछ जानता है, क्योंकि तेरे समान ज्ञानकी खानि और सबके मनकी जाननेवाला दूसरा कौन है? यह तो मैं भी समझता हूँ कि स्वामी-के साथ द्रोह करनेवालेको नष्ट-भ्रष्ट हो जाना पड़ता है ॥६॥ तेरे स्वामी श्रीरामजी और स्वामिनी श्रीसीताजी सरीखी हैं, वहाँ तुलसीदासका तेरे सिवा और किस मनुष्यका और किस वस्तुका सहारा है? इसलिये तू ही मुझे वहाँतक पहुँचा दे ॥७॥

[३४]

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन-दुखारी ।
इनको बिलगु न मानिये, बोलहिं न बिचारी ॥१॥
लोक-रीति देखी सुनी, ब्याकुल नर-नारी ।
अति बरषे अनबरषेहूँ, देहिं दैवहिं गारी ॥२॥
नाकहि आये नाथसों, साँसति भय भारी ।
कहि आयो, कीबी छमा, निज ओर निहारी ॥३॥
समै साँकरे सुमिरिये, समरथ हितकारी ।
सो सब बिधि ऊबर करै, अपराध बिसारी ॥४॥
बिगरी सेवककी सदा, साहेबहिं सुधारी ।
तुलसीपर तेरी कृपा, निरुपाधि निरारी ॥५॥

भावार्थ—हे हनुमान्‌जी ! अति पीड़ित, अति स्वार्थी, अति दीन और अति दुखीके कहेका बुरा नहीं मानना चाहिये, क्योंकि ये घबराये हुए रहनेके कारण भले-बुरेका विचार करके नहीं बोलते ॥१॥ संसारमें यह प्रत्यक्ष देखा-सुना जाता है कि वर्षा अधिक होने या बिल्कुल न होनेपर व्याकुल हुए स्त्री-पुरुष दैवको गालियाँ सुनाया करते हैं; परन्तु इसका परमेश्वर कोई खयाल नहीं करता ॥२॥ जब कलियुगके कष्ट और भव-सागरके भारी भयसे मेरे नाकों दम आ गया, तभी मैं भली-बुरी कह बैठा । अब तुम अपनी भक्त-वत्सलताकी ओर देखकर मुझे क्षमा कर दो ॥३॥ संकटके समय लोग समर्थ और अपने हितकारीको ही याद करते हैं और

वह भी उनके सारे अपराधोंको भुलाकर उनकी सब प्रकारसे रक्षा करता है ॥४॥ सेवककी भूलोंको सदासे स्वामी ही सुधारते आये हैं। फिर इस तुलसीदासपर तो तुम्हारी एक निराली ही एवं निश्छल कृपा है ॥५॥

[३५]

कटु कहिये गाढ़े परे, सुनि समुझि सुसाई ।
करहिं अनभलेउ को भलो, आपनी भलाई ॥१॥
समरथ सुभ जो पाइये, बीर पीर पराई ।
ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई ॥२॥
अपने अपनेको भलो, चहैं लोग लुगाई ।
भावै जो जेहि तेहि भजै, सुभ असुभ सगाई ॥३॥
बाँह बोलि दै थापिये, जो निज बरिआई ।
बिन सेवा सों पालिये, सेवककी नाई ॥४॥
चूक-चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई ।
होत आदरे ढीठ है, अति नीच निचाई ॥५॥
बंदिछोर बिरुदावली, निगमागम गाई ।
नीको तुलसीदासको, तेरियै निकाई ॥६॥

भावार्थ—जब संकट पड़ता है, तभी अपने स्वामीको भला-बुरा कहा जाता है, और अच्छे स्वामी यह समझ-बूझकर अपनी भलाईसे उस बुरे सेवकका भी भला कर देते हैं॥१॥समर्थ,कल्याणकारी और ऐसे शूरवीरको

पाकर जो दूसरोंकी विपत्तिमें सहायता देता है, सब लोग उस ओर ऐसे देखा करते हैं, जैसे समुद्रके पास नदियाँ बिना बुलाये ही दौड़-दौड़-कर जाती हैं ॥२॥ संसारमें सभी स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी भलाई चाहते हैं, शुभ-अशुभके नातेसे जो (देवता) जिसको अच्छा लगता है, वह उसी (देवता) को भजता है। मुझे तो एक तुम्हारा ही भरोसा है ॥३॥ जिसे जबरदस्ती अपने बलका भरोसा देकर रख लिया वह यदि तुम्हारी सेवा नहीं करता, तो भी उसे सेवककी तरह पालना चाहिये ॥४॥ भूल और चञ्चलता तो सब मेरी ही है; पर तुम बड़े हो, मुझ-जैसे अपराधियोंको क्षमा करनेमें ही तुम्हारी बड़ाई है। यह तो सभी जानते हैं कि आदर करनेसे नीच भी ढीठ हो जाता और नीचता करने लगता है ॥५॥ वेद-शास्त्र गाते हैं कि तुम बन्धनोंसे छुड़ानेवाले हो। मुझ तुलसीदासका भला अब तुम्हारी भलाईसे ही होगा, अन्यथा मैं तो किसी भी योग्य नहीं हूँ ॥ ६ ॥

राग गौरी

[३६]

मंगल-मूरति मारुत-नंदन । सकल-अमंगल-मूल-निकंदन ॥१॥
पवनतनय संतन-हितकारी । हृदय बिराजत अवध-बिहारी ॥२॥
मातु-पिता,गुरु,गनपति,सारद । सिवा-समेत संभु,सुक,नारद ॥३॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू । देहु रामपद-नेह-निबाहू ॥४॥
बंदौं राम-लखन-बैदेही । जे तुलसीके परम सनेही ॥५॥

भावार्थ—पवन-कुमार हनुमान्‌जी कल्याणकी मूर्ति हैं। सारी बुराइयों को जड़से उखाड़नेवाले हैं ॥१॥ पवनके पुत्र हैं, सन्तोंका हित करनेवाले

हैं। अवधविहारी श्रीरामजी सदा इनके हृदयमें विराजते हैं ॥२॥ इनके तथा माता-पिता, गुरु, गणेश, सरस्वतीसहित, पार्वती, शिवजी, शुकदेवजी, नारद ॥३॥ इन सबके चरणोंमें प्रणाम करके मैं यह विनती करता हूँ कि श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें मेरा प्रेम सदा एक-सा निबह रहे, यह वरदान दीजिये ॥ ४ ॥ अन्तमें श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजीको मैं सबसे पीछे प्रणाम करता हूँ, जो तुलसीदासके परमप्रेमी और सर्वस्व हैं ॥५॥

लक्ष्मण-स्तुति

दण्डक

[३७]

लाल लाड़िले लखन, हित हौ जनके।
सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी,
पालक कृपालु अपने पनके ॥१॥
धरनी-धरनहार भंजन-भुवनभार,
अवतार साहसी सहसफनके ॥
सत्यसंध, सत्यब्रत, परम धरमरत,
निरमल करम बचन अरु मनके ॥२॥
रूपके निधान, धनु-बान पानि,
तून कटि, महावीर बिदित, जितैया बड़े रनके ॥
सेवक-सुख-दायक, सबल, सब लायक,
गायक जानकीनाथ गुनगनके ॥३॥

भावते भरतके, सुमित्रा-सीताके दुलारे,
चातक चतुर राम स्याम घनके ॥
बल्लभ उरमिलाके, सुलभ सनेहवस,
धनी धन तुलसीसे निरधनके ॥४॥

भावार्थ—हे प्यारे लखनलालजी ! तुम भक्तोंका हित करनेवाले हो। स्मरण करते ही तुम संकट हर लेते हो। सब प्रकारके सुन्दर कल्याण करनेवाले, अपने प्रणको पालनेवाले और दीनोंपर कृपा करनेवाले हो ॥१॥ पृथ्वीको धारण करनेवाले, संसारका भार दूर करनेवाले, बड़े साहसी और शेषनागके अवतार हो। अपने प्रण और व्रतको सत्य करनेवाले, धर्मके परम प्रेमी तथा निर्मल मन, वचन और कर्मवाले हो ॥२॥ तुम सुन्दरताके भण्डार हो, हाथोंमें धनुष-बाण धारण किये और कमरमें तरकस कसे हुए हो, तुम विश्व-विख्यात महान् वीर हो ! और बड़े-बड़े संग्राममें विजय प्राप्त करनेवाले हो। तुम सेवकोंको सुख देनेवाले, महाबली, सब प्रकारसे योग्य और जानकीनाथ श्रीरामकी गुणावलीके गानेवाले हो ॥३॥ तुम भरतजीके प्यारे, सुमित्रा और सीताजीके दुलारे तथा राम-रूपी श्याम मेघके चतुर चातक, उर्मिलाजीके पति, प्रेमसे सहजहीमें मिलनेवाले और तुलसी-सरीखे रंकको राम-भक्ति-रूपी धन देनेमें बड़े भारी धनी हो ॥ ४ ॥

राग धनाश्री

[३८]

जयति
लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर, भुजग-
राज, भुवनेश, भूभारहारी ।

प्रलय-पावक-महाज्वालमाला-वमन,
शमन-संताप लीलावतारी ॥१॥
जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रा-
सुवन, शत्रुसूदन, राम-भरत बंधो ।
चारु-चंपक-बरन, वसन-भूषन-धरन,
दिव्यतर, भव्य, लावण्य-सिंधो ॥२॥
जयति गाधेय-गौतम-जनक-सुख-जनक,
विश्व-कंटक-कुटिल-कोटि-हंता ।
वचन-चय-चातुरी-परशुधर-गरबहर,
सर्वदा रामभद्रानुगंता ॥३॥
जयति सीतेश-सेवासरस, विषयरस–
निरस, निरुपाधि धुरधर्मधारी ।
विपुलबलमूल शार्दूलविक्रम जलद–
नाद-मर्दन, महावीर भारी ॥४॥
जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरन,
रामहित-करण वरबाहु-सेतू ।
उर्मिला-रवन, कल्याण-मंगल-भवन,
दासतुलसी-दोष-दवन-हेतू ॥५॥

भावार्थ—लक्ष्मणजीकी जय हो—जो अनन्त, छः प्रकारके ऐश्वर्यसे युक्त,

पृथ्वीको धारण करनेवाले सर्पराज शेषनागके अवतार, सारे संसारके स्वामी, पृथ्वीके भारको दूर करनेवाले, क्रोधके समय प्रलय-कालकी अग्निके समान भयङ्कर ज्वालाएँ उगलनेवाले, जगत्के सन्तापको नाश करनेवाले और अपनी लीलासे ही अवतार धारण करनेवाले हैं ॥१॥ दशरथ-पुत्र श्रीलक्ष्मणजीकी जय हो–जो संग्राममें सर्वशक्तिमान्, सुमित्राजीके पुत्र, शत्रुओंका नाश करनेवाले और श्रीरामजी तथा भरतजीके प्यारे भाई हैं। जिनके सुन्दर शरीरका रंग चम्पेके फूलके समान है, जो अत्यन्त दिव्य एवं भव्य वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं और सौन्दर्यके महान् समुद्र हैं ॥२॥ विश्वामित्र, गौतम और जनकके सुख उत्पन्न करनेवाले, संसारके लिये करोड़ों काँटेके समान कुटिल राक्षसोंको मारनेवाले, चतुराईकी बहुत-सी बातोंसे ही परशुरामजीका गर्व हरनेवाले और सदा श्रीरामजीके पीछे-पीछे चलनेवाले लक्ष्मणजीकी जय हो ॥३॥ सीतापति श्रीरामजीकी सेवामें परम अनुरागी, विषय-रसके विरागी, कपटरहित होकर श्रीराम-सेवा-रूपी धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले, अनन्त बलके आदि-स्थान, सिंहके समान पराक्रमवाले, मेघनादका मर्दन करनेवाले अत्यन्त महावीर लक्ष्मणजीकी जय हो ॥४॥ भयानक संग्रामरूपी समुद्रको अनायास ही पार कर जानेवाले, श्रीरामजीके हितके लिये अपनी सुन्दर भुजाओंका पुल बनानेवाले, उर्मिलाजीके पति, कल्याण तथा मंगलके स्थान और तुलसीदासके पापोंके नाश करनेमें मुख्य कारण, ऐसे श्रीलक्ष्मणजीकी जय हो ॥५॥

भरत-स्तुति

[३९]

जयति

भूमिजा-रमण-पदकंज-मकरंद-रस-

रसिक-मधुकर भरत भूरिभागी ।

भुवन भूषण-भानुवंश-भूषण, भूमिपाल-
मणि रामचंद्रानुरागी ॥१॥
जयति विबुधेश-धनदादि दुर्लभ महा
राज-संम्राज-सुख-पद-विरागी ।
खड्ग-धाराव्रती-प्रथमरेखा प्रकट
शुद्धमति-युवति पति-प्रेमपागी ॥२॥
जयति निरुपाधि-भक्तिभाव-यंत्रित-हृदय,
बंधु-हित चित्रकूटाद्रि-चारी ।
पादुका-नृप-सचिव, पुहुमि-पालक परम
धरम-धुर-धीर, वरवीर भारी ॥३॥
जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान
धनुबान-महिमा बखानी ।
बाहुबल बिपुल परमिति पराक्रम अतुल,
गूढ़ गति जानकी-जानि जानी ॥४॥
जयति रण-अजिर गन्धर्व-गण-गर्वहर,
फिर किये रामगुणगाथ-गाता ।
माण्डवी-चित्त-चातक-नवांबुद-बरन,
सरन तुलसीदास अभय-दाता ॥५॥

भावार्थ—बड़े भाग्यवान् श्रीभरतजीकी जय हो—जो जानकीपति

श्रीरामजीके चरण-कमलोंके मकरन्दका पान करनेके लिये रसिक भ्रमर हैं। जो संसारके भूषणस्वरूप, सूर्यवंशके विभूषण हैं और नृप-शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके पूर्ण प्रेमी हैं ॥१॥ भरतजीकी जय हो—जिन्होंने, इन्द्र, कुबेर आदि लोकपालोंको भी जो अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे महान् सुखप्रद महाराज्य और साम्राज्यसे मुख मोड़ लिया। जिनका सेवा-व्रत तलवारकी धारके समान अति कठिन है, ऐसे सत्-पुरुषोंमें भी जो सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं और जिनकी शुद्ध बुद्धिरूपी तरुणी स्त्री श्रीराम-रूपी स्वामीके प्रेममें लवलीन है ॥२॥ भरतजीकी जय हो—जो निष्कपट भक्तिभावके अधीन होकर प्रिय भाई श्रीरामचन्द्रजीके लिये चित्रकूट-पर्वतपर पैदल गये, जो श्रीरामजीकी पादुका-रूपी राजाके मन्त्री बनकर पृथ्वीका पालन करते रहे और जो राम-सेवा-रूपी परम धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले तथा बड़े भारी वीर हैं ॥३॥ श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर सञ्जीवनी बूटी लानेके समय, जब भरतजीके बाणसे व्यथित होकर हनुमान्‌जी गिर पड़े तब उन्होंने जिन भरतजीके धनुष-बाणकी बड़ी बड़ाई की थी, जिनकी भुजाओंका बड़ा भारी बल है, जिनका अनुपम पराक्रम है। जिनकी गूढ़ गतिको श्रीजानकीनाथ रामजी ही जानते हैं ऐसे भरतजीकी जय हो ॥४॥ जिन्होंने रणाङ्गणमें गन्धर्वोंका गर्व खर्व कर दिया और फिरसे उन्हें श्रीरामकी गुण-गाथाओंका गानेवाला बनाया, ऐसे भरतजीकी जय हो। माण्डवीके चित्तरूपी चातकके लिये जो नवीन मेघ-वर्ण हैं, ऐसे अभय देनेवाले भरतजीकी यह तुलसीदास शरण है ॥५॥

शत्रुघ्न-स्तुति

राग धनाश्री

[४०]

जयति जय शत्रु-करि-केसरी शत्रुहन,
शत्रुतम-तुहिनहर किरणकेतू ।
देव-महिदेव-महि-धेनु-सेवक सुजन-
सिद्ध-मुनि-सकल-कल्याण-हेतू ॥१॥
जयति सर्वांगसुन्दर सुमित्रा-सुवन,
भुवन-विख्यात-भरतानुगामी ।
वर्मचर्मासि-धनु-बाण-तूणीर-धर
शत्रु-संकट-समय यत्प्रणामी ॥२॥
जयति लवणाम्बुनिधि-कुंभसंभव महा-
दनुज-दुर्जनदवन, दुरितहारी ।
लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरण-
रेणु-भूषित-भाल-तिलकधारी ॥३॥
जयति श्रुतिकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ
नमत नर्मद भुक्तिमुक्तिदाता ।
दासतुलसी चरण-शरण सीदत विभो,
पाहि दीनार्त्त-संताप-हाता ॥४॥

भावार्थ—शत्रुरूपी हाथियोंके नाश करनेको सिंहरूप श्रीशत्रुघ्नजीकी जय हो, जय हो—जो शत्रुरूपी अन्धकार और कुहरेके हरनेके लिये साक्षात् सूर्य हैं और देवता, ब्राह्मण, पृथ्वी और गौके सेवक, सज्जन सिद्ध और मुनियोंका सब प्रकार कल्याण करनेवाले हैं ॥ १ ॥ जिनके सारे अंग सुन्दर हैं, जो सुमित्राजीके पुत्र और विश्व-विख्यात भरतजीकी आज्ञामें चलनेवाले हैं; जो कवच, ढाल, तलवार, धनुष, बाण और तरकस धारण किये हैं और शत्रुओंद्वारा दिये हुए संकटोंका नाश करनेवाले हैं, उन शत्रुघ्नजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ लवणासुररूपी समुद्रको पान करनेके लिये अगस्त्यके समान, बड़े-बड़े दुष्ट दानवोंका संहार करनेवाले और पापोंका नाश करनेवाले शत्रुघ्नजीकी जय हो। ये लक्ष्मणजीके छोटे भाई हैं और भरतजी, श्रीरामजी तथा सीताजीके चरणकमलोंकी रजका, मस्तकपर सुन्दर तिलक धारण करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ श्रुतिकीर्तिजीके पति हैं, दुष्टोंको दुर्लभ और सेवकोंको सुलभ हैं, प्रणाम करते ही सुख, भोग और मुक्ति देनेवाले हैं, ऐसे शत्रुघ्नजीकी जय हो। हे प्रभो! यह तुलसीदास तुम्हारे चरणोंकी शरण आकर भी दुःख भोग रहा है, हे दीन और आर्तोंके सन्ताप हरनेवाले! उसकी (तुलसीदासकी) रक्षा करो ॥ ४ ॥

श्रीसीता-स्तुति*

राग केदारा

[४१]

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ॥ १ ॥

---

* कई पुरानी प्रतियोंमें श्रीसीता-स्तुति-प्रसंगमें नीचे लिखा दण्डक भी मिलता

दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ॥२॥
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥३॥

है। इसे ४० क संख्या देकर हम यहाँ टिप्पणीके रूपमें देते हैं, क्योंकि कोई-कोई इसे क्षेपक भी समझते हैं।

जयति श्रीजानकी भानुकुल-भानुकी प्राणप्रियवल्लभे तरणि भूपे।
राम आनंद-चैतन्यघन-विग्रहा शक्ति आह्लादिनी साररूपे ॥
जयति चितचरणचिन्तनि जेहि धरति हृत काम-भय-कोह-मद-मोह-माया।
रुद्र-विधि-विष्णु-सुर-सिद्ध-वंदितपदे जयति सर्वेश्वरी रामजाया ॥
कर्म जप योग विज्ञान वैराग्य लहि मोक्षहित योगि जे प्रभु मनावैं।
जयति वैदेहि सब शक्तिशिरभूषणे ते न तव दृष्टि बिन कबहुँ पावैं ॥
जयति जय कोटि ब्रह्माण्डकी ईशि, जेहि निगम-मुनि बुद्धितें अगम गावैं।
विदित यह गाथ अहदानकुलमाथ सो नाथ तव दान ते हाथ आवैं ॥
दिव्य शत वर्ष जप-ध्यान जब शिव धर्यो राम गुरुरूप मिलि पथ बतायो।
चितै हित लीन लखि कृपा कीन्ही तबै देवि, दुर्लभ देव-दरस पायो ॥
जयति श्रीस्वामिनी सीय सुभनामिनी, दामिनी कोटि निज देह दरसैं।
इंदिरा आदि दै मत्त गजगामिनी देवभामिनि सबै पाँव परसैं ॥
दुखित लखि भक्त बिन दरस निज रूप तप यजन जप तंत्रतें सुलभ नाहीं।
कृपा करि पूर्ण नवकंजदललोचना प्रकट भइ जनकनृप-अजिर माहीं ॥
रमित तव विपिन प्रिय प्रेम प्रगटन करन लंकपति व्याज कछु खेल ठान्यौ।
गोपिका कृष्ण तव तुल्य बहु जतन करि तोहि मिलि ईश आनंद मान्यौ ॥
हीन तव सुमुखि कै संग रहि रंकसों विमुख जो देव नहिं नाथ नेरो।
अधमउद्धरण यह जानि गहि शरण तव दासतुलसी भयौ आय चेरो ॥ ४० क ॥

जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ ॥४॥

भावार्थ—हे माता ! कभी अवसर हो तो कुछ करुणाकी बात छेड़कर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी भी याद दिला देना, इसीसे मेरा काम बन जायगा ॥१॥ यों कहना कि एक अत्यन्त दीन, सर्व साधनोंसे हीन, मन-मलीन, दुर्बल और पूरा पापी मनुष्य आपकी दासी (तुलसी) का दास कहलाकर और आपका नाम ले-लेकर पेट भरता है ॥२॥ इसपर प्रभु कृपा करके पूछें कि वह कौन है, तो मेरा नाम और मेरी दशा उन्हें बता देना । कृपालु रामचन्द्रजीके इतना सुन-लेनेसे ही मेरी सारी बिगड़ी बात बन जायगी ॥३॥ हे जगज्जननी जानकीजी ! यदि इस दासकी आपने इस प्रकार वचनोंसे ही सहायता कर दी तो यह तुलसीदास आपके स्वामीकी गुणावली गाकर भव-सागरसे तर जायगा ॥४॥

[४२]

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी ।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी॥१॥
सरल प्रकृति आपु जानिए करुना-निधानकी ।
निजगुन,अरिकृतअनहितौ,दास-दोष,सुरति चित रहत न,दिये दानकी।
बानि बिसारनसील है मानद अमानकी ।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके,सपनेहुँ गति न आनकी।

भावार्थ—हे जानकी माता ! कभी मौका पाकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी याद दिला देना । मैं उन्हींका दास कहाता हूँ, उन्हींका नाम लेता हूँ,

उन्हींके लिये पपीहेकी तरह प्रण किये बैठा हूँ, मुझे उनके स्वाती-जलरूपी प्रेम-रसकी बड़ी प्यास लग रही है ॥१॥ यह तो आप जानती ही हैं कि, करुणा-निधान रामजीका स्वभाव बड़ा सरल है; उन्हें अपना गुण, शत्रु-द्वारा किया हुआ अनिष्ट, दासका अपराध और दिये हुए दानकी बात कभी याद ही नहीं रहती ॥२॥ उनकी आदत भूल जानेकी है; जिसका कहीं मान नहीं होता, उसको वह मान दिया करते हैं, पर वह भी भूल जाते हैं ! हे माता ! तुम उनसे कहना कि तुलसीदासको न भूलिये, क्योंकि उसे मन, वचन और कर्मसे स्वप्नमें भी किसी दूसरेका आश्रय नहीं है ॥३॥

श्रीराम-स्तुति

[४३]

जयति

सच्चिदव्यापकानंद परब्रह्म-पद, विग्रह-व्यक्त लीलावतारी।
विकल ब्रह्मादि सुर,सिद्ध संकोचवश,विमल गुण-गेह नर-देह-धारी॥१॥
जयति

कोशलाधीश कल्याण कोशलसुता, कुशल कैवल्य-फल चारु चारी ।
वेद-बोधित करम-धरम-धरनी-धेनु, विप्र-सेवक साधु-मोदकारी ॥२॥
जयति ऋषि-मखपाल, शमन सज्जन-साल, शापवश मुनिवधू-पापहारी ।
भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी ।३।
जयति धारमिक-धुर, धीर रघुवीर गुर-मातु-पितु-बंधु-वचनानुसारी ।
चित्रकूटाद्रि विन्ध्याद्रि दंडकविपिन, धन्यकृत पुन्यकानन-विहारी ।४।
जयति पाकारिसुत-काक-करतूति-फलदानि खनि गर्त्त गोपित विराधा
दिव्य देवी वेष देखि लखि निशिचरी जनु विडंबित करी विश्वबाधा ।५।

जयति खर-त्रिशिर-दूषण चतुर्दश-सहस-सुभट-मारीच-संहारकर्त्ता ।
गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु,चरित निरुपाधि,त्रिविधार्तिहर्त्ता॥
जयति मद-अंध कुकबंध बधि,बालि बलशालि बधि, करन सुग्रीव राजा ।
सुभट मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत, नमत पद रावणानुज निवाजा ।७।
जयति पाथोधि-कृत-सेतु कौतुक हेतु,काल-मन-अगम लई ललकि लंका।
सकुल,सानुज,सदल दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किये रहित-शंका॥
जयति सौमित्रि-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी ।
दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप वैदेहि रानी ॥९॥

भावार्थ--श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो। आप सत्, चेतन, व्यापक, आनन्दरूप परब्रह्म हैं। आप लीला करनेके लिये ही अव्यक्तसे व्यक्तरूपमें प्रकट हुए हैं। जब ब्रह्मा आदि सब देवता और सिद्धगण दानवोंके अत्याचारसे व्याकुल हो गये, तब उनके संकोचसे आपने निर्मल गुण-सम्पन्न नर-शरीर धारण किया ॥१॥ आपकी जय हो,-आप कल्याणरूप कोशलनरेश दशरथजी और कल्याण-स्वरूपिणी महारानी कौशल्याके यहाँ चार भाइयोंके रूपमें (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य) मोक्षके सुन्दर चार फल उत्पन्न हुए। आपने वेदोक्त यज्ञादि कर्म, धर्म, पृथ्वी, गौ, ब्राह्मण, भक्त और साधुओंको आनन्द दिया ॥२॥ आपकी जय हो-आपने विश्वामित्रजीके यज्ञकी, राक्षसोंको मारकर रक्षा की, सज्जनोंको सतानेवाले दुष्टोंका दलन किया, शापके कारण पाषाणरूप हुई गौतम-पत्नी अहल्याके पापोंको हर लिया, शिवजीके धनुषको तोड़कर राजाओंके दलका दर्प चूर्ण किया और बल-वीर्य-विजयके मदसे ऊँचा

रहनेवाला परशुरामजीका मस्तक झुका दिया ॥३॥ आपकी जय हो—आप धर्मके भारको धारण करनेमें बड़े धीर और रघुवंशमें असाधारण वीर हैं। आपने गुरु, माता, पिता और भाईके वचन मानकर चित्रकूट, विन्ध्याचल और दण्डक वनको, उन पवित्र वनोंमें विहार करके कृत-कृत्य कर दिया ॥४॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जिन्होंने इन्द्रके पुत्र, काक-रूप बने हुए कपटी जयन्तको उसकी करनीका उचित फल दिया, जिन्होंने गड्ढा खोदकर विराध दैत्यको उसमें गाड़ दिया, दिव्य देव-कन्याका रूप धरकर आयी हुई राक्षसी शूर्पणखाको पहचानकर उसके नाक-कान कटवाकर मानो संसारभरके सुखमें बाधा पहुँचानेवाले रावणका तिरस्कार किया ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो,-आप खर, त्रिशिरा, दूषण, उनकी चौदह हजार सेना और मारीचको मारनेवाले हैं, मांसभोजी गृद्ध जटायु और नीच जातिकी स्त्री शबरीके प्रेमके वश हो उनका उद्धार करनेवाले, करुणाके समुद्र, निष्कलङ्क चरित्रवाले और त्रिविध तापोंका हरण करनेवाले हैं ॥६॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जिन्होंने दुष्ट, मदान्ध कबन्धका वध किया, महा बलवान् बालिको मार-कर सुग्रीवको राजा बनाया, बड़े-बड़े वीर बन्दर तथा रीछोंकी सेनाको एकत्र करके उनको व्यूहाकार सजाया और शरणागत विभीषणको मुक्ति और भक्ति देकर निहाल कर दिया ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जिन्हों-ने खेलके लिये ही समुद्रपर पुल बाँध लिया, कालके मनको भी अगम लंकाको उमंगसे ही लपक लिया और कुलसहित, भाईसहित और सारी सेनासहित रावणको रणमें नाश करके तीनों लोकों और इन्द्र, कुबेरादि लोकपालोंको निर्भय कर दिया ॥८॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जो लंका विजयकर लक्ष्मणजी, जानकीजी और सुग्रीव, हनुमानादि

मन्त्रियोंसहित पुष्पक विमानपर चढ़कर अपनी राजधानी अयोध्याको चले। तुलसीदास गाता है कि वहाँ पहुँचकर श्रीरामके महाराजा और श्रीसीताजीके महारानी होनेपर समस्त अवधवासी परम प्रसन्न हो गये ॥९॥

[४४]

जयति
राज-राजेंद्र राजीवलोचन, राम,
नाम कलि-कामतरु, साम-शाली।
अनय-अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-
तिमिर घनघोर खर किरणमाली ॥१॥
जयति मुनि-देव-नरदेव दसरत्थके,
देव-मुनि-वंद्य किय अवध-वासी।
लोकनायक-कोक-शोक-संकट-शमन,
भानुकुल-कमल-कानन-विकासी ॥२॥
जयति श्रृंगार-सर तामरस-दामदुति-
देह, गुणगेह, विश्वोपकारी।
सकल सौभाग्य-सौंदर्य-सुषमारूप,
मनोभव कोटि गर्वापहारी ॥३॥
(जयति) सुभग सारंग सुनिखंग सायक शक्ति,
चारु चर्मासि वर वर्मधारी।
धर्मधुरधीर, रघुवीर, भुज-बल अतुल,
हेलया दलित भूभार भारी ॥४॥
जयति कलधौत मणि-मुकुट, कुंडल, तिलक-
झलक भलि भाल, विधु-वदन-शोभा।

दिव्य भूषन, बसन पीत, उपवीत,
किय ध्यान कल्यान-भाजन न को भा ॥५॥
(जयति) भरत-सौमित्रि-शत्रुघ्न-सेवित, सुमुख,
सचिव-सेवक-सुखद, सर्वदाता ।
अधम, आरत, दीन, पतित, पातक-पीन
सकृत नतमात्र कहि 'पाहि' पाता ॥६॥
जयति जय भुवन दसचारि जस जगमगत,
पुन्यमय, धन्य जय रामराजा ।
चरित-सुरसरित कवि-मुख्य गिरि निःसरित,
पिबत, मज्जत मुदित संत-समाजा ॥७॥
जयति वर्णाश्रमाचारपर नारि-नर,
सत्य-शम-दम-दया-दानशीला ।
विगत दुख-दोष, संतोष सुख सर्वदा,
सुनत, गावत राम राजलीला ॥८॥
जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे,
नमत नर्मद, पाप-ताप-हर्त्ता ।
दास तुलसी चरण शरण संशय-हरण,
देहि अवलंब वैदेहि-भर्त्ता ॥९॥

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो—जो राज-राजेश्वरोंमें इन्द्रके समान हैं, जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं, जिनका नाम कलियुगमें कल्पवृक्षके समान है, जो (शरणागत भक्तोंको) सान्त्वना देनेवाले (ढाढस बँधानेवाले) हैं, अनीतिरूपी समुद्रको सोखनेके लिये

जो अगस्त्य ऋषिके समान और दानव-दलरूपी गाढ़ और भयानक अन्धकारके नाश करनेके लिये जो प्रचण्ड सूर्यके समान हैं ॥१॥ श्रीराम-चन्द्रजीकी जय हो-मुनि, देवता और मनुष्योंके स्वामी जिन दशरथसूनु श्रीरामचन्द्रजीने अवधवासियोंको ऐसा श्रेष्ठ बना दिया कि मुनि और देवता भी उनकी वन्दना करने लगे। जो लोकपालरूपी चकवोंके शोक-सन्तापका नाश करनेवाले और सूर्यकुलरूपी कमलोंके वनको प्रफुल्लित करनेवाले साक्षात् सूर्य हैं ॥२॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-सौन्दर्यरूपी सरोवरमें उत्पन्न हुए नीले कमलोंकी मालाके समान जिनके शरीरकी आभा है, जो सम्पूर्ण दिव्य गुणोंके धाम हैं, सारे विश्वका हित करनेवाले हैं और समस्त सौभाग्य, सौन्दर्य तथा परम शोभायुक्त अपने रूपसे करोड़ों कामदेवोंके गर्वको खर्व करनेवाले हैं ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जो सुन्दर शार्ङ्ग धनुष, तरकस, बाण, शक्ति, ढाल, तलवार और श्रेष्ठ कवच धारण किये हैं, धर्मका भार उठानेमें जो धीर हैं, जो रघुवंशमें सर्वश्रेष्ठ वीर हैं, जिनकी प्रचण्ड भुजाओंका अतुलनीय बल है और जिन्होंने खेलसे ही राक्षसोंका नाश करके पृथिवीका भारी भार हरण कर लिया ॥४॥ श्रीराम-चन्द्रजीकी जय हो-जो मणि-जड़ित सुवर्णका मुकुट मस्तकपर धारण किये और कानोंमें मकराकृत कुण्डल पहने हैं; जिनके भालपर तिलककी सुन्दर झलक है और चन्द्रमाके समान जिनका मुखमण्डल शोभित हो रहा है; जो पीताम्बर, दिव्य आभूषण और यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं। ऐसा कौन है जो श्रीरामके इस नयनाभिराम रूपका ध्यान करके कल्याणका भागी न हुआ हो ? ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो-जो भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे सेवित और सुग्रीव, सुमन्त आदि मन्त्रियों और भक्तोंको सुख तथा सम्पूर्ण इच्छित पदार्थ देनेवाले हैं;

जो अधम, आर्त, दीन, पतित और महापापियोंको केवल एक बार प्रणाम करने और 'मेरी रक्षा करो' इतना कहनेपर ही जन्म-मरणरूप संसारसे बचा लेते हैं ॥६॥ महाराज श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो—जिनका पवित्र यश चौदहों भुवनोंमें जगमगा रहा है, जो सर्वथा पुण्यमय और धन्य हैं, जिनकी कथारूपी गंगाजी आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिरूपी हिमालय-पर्वतसे निकली है, जिसमें स्नान कर और जिसके जलका पान कर अर्थात् जिसका श्रवण-मनन कर सन्त-समाज सदा प्रसन्न रहता है ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो—जिनके प्रसिद्ध रामराज्यमें सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने वर्णाश्रम-विहित आचारपर चलनेवाले; सत्य, शम, दम, दया और दानरूपी व्रतोंका पालन करनेवाले; दुःखों और दोषोंसे रहित, सदा सन्तोषी, सब प्रकारसे सुखी और रामकी राज्यलीलाको सदा गाया और सुना करते थे अर्थात् वे निश्चिन्त होकर सदा रामकी लीलाको ही गाते-सुनते थे ॥८॥ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो—जो वैराग्य और ज्ञान-विज्ञानके समुद्र हैं, जो प्रणाम करनेवालोंको सुख देते और उनके सारे पाप-तापोंको हर लेते हैं। हे जानकीनाथ! हे संशयका नाश करनेवाले! यह तुलसीदास आपकी शरण पड़ा है, कृपाकर इसे अपने प्रणतपाल चरणोंका सहारा दीजिये ॥९॥

राग गौरी

[४५]

श्री रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद कंजारुणं ॥१॥

कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील नीरद सुंदरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक-सुतावरं ॥२॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य-वंश-निकंदनं।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं ॥३॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषणं ॥४॥
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनं।
मम हृदय-कंज-निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं ॥५॥

भावार्थ—हे मन! कृपालु श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर। वे संसारके जन्म-मरणरूप दारुण भयको दूर करनेवाले हैं, उनके नेत्र नव-विकसित कमलके समान हैं; मुख, हाथ और चरण भी लाल कमलके सदृश हैं ॥१॥ उनके सौन्दर्यकी छटा अगणित कामदेवोंसे बढ़कर है, उनके शरीरका नवीन-नील-सजल मेघके जैसा सुन्दर वर्ण है, पीताम्बर मेघरूप शरीरमें मानो बिजलीके समान चमक रहा है, ऐसे पावन-रूप जानकीपति श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ हे मन! दीनोंके बन्धु, सूर्यके समान तेजस्वी, दानव और दैत्योंके वंशका समूल नाश करनेवाले, आनन्द-कन्द, कोशल-देशरूपी आकाशमें निर्मल चन्द्रमाके समान, दशरथनन्दन श्रीरामका भजन कर ॥३॥ जिनके मस्तकपर रत्नजटित मुकुट, कानोंमें कुण्डल, भालपर सुन्दर तिलक और प्रत्येक अंगमें सुन्दर आभूषण सुशोभित हो रहे हैं; जिनकी भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी हैं; जो धनुष-बाण लिये हुए हैं; जिन्होंने संग्राममें खर-दूषणको जीत लिया है ॥४॥ जो शिव, शेष और मुनियोंके मनको प्रसन्न करनेवाले, और काम-क्रोध-लोभादि

शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। तुलसीदास प्रार्थना करता है कि वे श्रीरघुनाथजी मेरे हृदय-कमलमें सदा निवास करें ॥५॥

राग रामकली

[४६]

सदा

राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, मूढ़ मन, बार बारं।
सकल सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि शठ, मानि विश्वास वद वेदसारं॥
कोशलेन्द्र नव-नीलकंजाभतनु, मदन-रिपु-कंजहृदि-चंचरीकं।
जानकीरवन सुखभवन भुवनैकप्रभु, समर-भंजन, परम कारुनीकं ॥२॥
दनुज-वन-धूमधुज पीन आजानुभुज, दंड-कोदंडवर चंड बानं।
अरुण करचरण मुख नयनराजीव, गुन-अयन, बहु मयन-शोभा-निधानं॥
वासनावृंद-कैरव-दिवाकर, काम-क्रोध-मद-कंज-कानन-तुषारं।
लोभ अति मत्त नागेंद्र पंचाननं भक्तहित हरण संसार-भारं ॥४॥
केशवं, क्लेशहं, केश-वंदित पद-द्वंद्व मंदाकिनी-मूलभूतं।
सर्वदानंद-संदोह, मोहापहं, घोर-संसार-पाथोधि-पोतं ॥५॥
शोक-संदेह-पाथोदपटलानिलं, पाप-पर्वत-कठिन-कुलिशरूपं।
संतजन-कामधुक-धेनु, विश्रामप्रद, नाम कलि-कलुष-भंजन अनूपं ॥६॥
धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि संबलं, मूलमिदमेव एकं।
भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम, नाम आधीन साधन अनेकं ॥७॥
तेन तप्तं, हुतं, दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं ॥८॥

श्वपच, खल, भिल्ल, यवनादि हरिलोकगत, नामबल विपुल मति मल न परसी।
त्यागि सब आस, संत्रास, भवपास, असि निसित हरिनाम जपु दासतुलसी॥

भावार्थ—रे मूर्ख मन! सदा-सर्वदा बारबार श्रीरामनामका ही जप कर; यह सम्पूर्ण सौभाग्य-सुखकी खान है और यही वेदका निचोड़ है, ऐसा जीमें समझकर और पूर्ण विश्वास करके सदा श्रीरामनाम कहा कर॥१॥ कोशलराज श्रीरामचन्द्रजीके शरीरकी कान्ति नवीन नील कमलके समान है; वे कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीके हृदयरूपी कमलमें रमनेवाले भ्रमर हैं। वे जानकीरमण, सुखधाम, अखिल विश्वके एकमात्र प्रभु, समरमें दुष्टोंका नाश करनेवाले और परम दयालु हैं॥२॥ वे दानवोंके वनके लिये अग्निके समान हैं। पुष्ट और घुटनोंतक लम्बे भुजदण्डोंमें सुन्दर धनुष और प्रचण्ड बाण धारण किये हैं। उनके हाथ, चरण, मुख और नेत्र लाल कमलके समान कमनीय हैं। वे सद्गुणोंके स्थान और अनेक कामदेवोंकी सुन्दरताके भण्डार हैं॥३॥ विविध वासनारूपी कुमुदिनीका नाश करनेके लिये साक्षात् सूर्य और काम, क्रोध, मद आदि कमलोंके वनको नष्ट करनेके लिये तुषार (पाला) हैं; लोभरूपी अत्यन्त मतवाले गजराजके लिये वनराज सिंह और भक्तोंकी भलाईके लिये राक्षसोंको मारकर संसारका भार उतारनेवाले हैं॥४॥ जिनका नाम केशव है, जो क्लेशोंके नाश करनेवाले हैं, ब्रह्मा और शिवसे जिनके चरणयुगल वन्दित होते हैं—जो गंगाजीके उत्पत्तिस्थान हैं। सदा आनन्दके समूह, मोहके विनाशक और भयानक भव-सागरके पार जानेके लिये जहाज हैं॥५॥ श्रीरामजी शोक और संशयरूपी मेघोंके समूहको छिन्न-भिन्न करनेके लिये वायु-रूप और पाप-रूपी कठिन पर्वतको तोड़नेके लिये

वज्ररूप हैं। जिनका अनुपम नाम सन्तोंको कामधेनुके समान इच्छित फल देनेवाला तथा शान्तिदायक और कलियुगके भारी पापोंको नाश करनेमें सानी नहीं रखता ॥६॥ यह श्रीरामनाम धर्मरूपी कल्पवृक्षका बगीचा, भगवान्के धाममें जानेवाले पथिकोंके लिये पाथेय तथा समस्त साधन और सिद्धियोंका मूल आधार है। भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, शम, दम, दान आदि मोक्षके अनेक साधन सभी इस राम-नामके अधीन हैं ॥७॥ जिसने इस कराल कलिकालको देखकर नित्य निरन्तर श्रीरामनामरूपी निर्दोष अमृतका पान किया,—उसने सारे तप कर लिये, सब यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया, सर्वस्व दान दे दिया और विधिके अनुसार सभी वैदिक कर्म कर लिये ॥८॥ अनेक चाण्डाल, दुष्कर्मी, भील और यवनादि केवल रामनामके प्रचण्ड प्रतापसे श्रीहरिके परमधाममें पहुँच गये और उनकी बुद्धिको विकारोंने स्पर्श भी नहीं किया। हे तुलसीदास! सारी आशा और भयको छोड़कर संसाररूपी बन्धनको काटनेके लिये पैनी तलवारके समान श्रीराम-नामका सदा जप कर ॥९॥

[४७]

ऐसी आरती राम रघुबीरकी करहि मन ।
हरन दुखदुंद गोबिंद आनन्दघन ॥१॥

अचरचर रूप हरि, सरबगत, सरबदा बसत, इति बासना धूप दीजै ।
दीप निजबोधगत-कोह-मद-मोह-तम,प्रौढ़अभिमान चितबृत्ति छीजै ।२।
भाव अतिशय विशद प्रवर नैवेद्य शुभ श्रीरमण परम संतोषकारी ।
प्रेम-तांबूल गत शूल संशय सकल, विपुल भव-बासना-बीजहारी ।३।

अशुभ-शुभकर्म-घृतपूर्ण दश वर्तिका, त्याग पावक, सतोगुण प्रकासं ।
भक्ति-वैराग्य-विज्ञान दीपावली, अर्पि नीराजनं जगनिवासं ॥४॥
विमल हृदि भवन कृत शांति पर्यंक शुभ, शयन विश्राम श्रीरामराया ।
क्षमा-करुणा प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहिं भेद, माया ।५।
एहि
आरती-निरत सनकादि, श्रुति, शेष, शिव, देवरिषि, अखिलमुनि तत्व-दरसी
करै सोइ तरै, परिहरै कामादि मल, वदति इति अमलमति-दास तुलसी ॥

भावार्थ—हे मन ! रघुकुल-वीर श्रीरामचन्द्रजीकी इस प्रकार आरती कर । वे रागद्वेष आदि द्वन्द्वों तथा दुःखोंके नाशक, इन्द्रियोंका नियन्त्रण करनेवाले और आनन्दकी वर्षा करनेवाले हैं ॥१॥ जड़-चेतन जगत् सब श्रीहरिका रूप है, वे सर्वव्यापी और नित्य हैं-इस वासना (सुगन्ध) की उनकी धूप कर । इससे तेरी भेदरूप दुर्गन्ध मिट जायगी । धूपके बाद दीप दिखाना चाहिये, सो आत्मज्ञानका स्वयं प्रकाशमय दीपक जलाकर उससे क्रोध, मद, मोहके अन्धकारका नाश कर दे । इस ज्ञान-प्रकाशसे अभिमानभरी चित्त-वृत्तियाँ आप ही क्षीण हो जायँगी ॥२॥ इसके बाद अत्यन्त निर्मल श्रेष्ठ भावका नैवेद्य भगवान्‌के अर्पण कर, विशुद्ध भावका सुन्दर नैवेद्य लक्ष्मीपति भगवान्‌को परम सन्तोषकारी होगा । फिर दुःख, समस्त सन्देह और अपार-संसारकी वासनाओंके बीजके नाश करनेवाले 'प्रेम' का ताम्बूल भगवान्‌के निवेदन कर ॥३॥ तदनन्तर शुभाशुभ कर्मरूपी घृतमें डूबी हुई दस इन्द्रियरूपी वृत्तियोंको त्यागकी अग्निसे जलाकर सत्त्वगुणरूपी प्रकाश कर; इस तरह भक्ति, वैराग्य और विज्ञानरूपी दीपावलीकी आरती जगन्निवास भगवान्‌के अर्पण कर ॥४॥

आरतीके बाद निर्मल हृदयरूपी मन्दिरमें शान्तिरूपी सुन्दर पलंग बिछाकर उसपर महाराज श्रीरामचन्द्रजीको शयन करवाकर विश्राम करा। वहाँ महाराजकी सेवाके लिये क्षमा, करुणा आदि मुख्य दासियोंको नियुक्त कर। जहाँ भगवान् हरि रहते हैं, वहाँ भेदरूप माया नहीं रहती ॥५॥ सनकादि, वेद, शुकदेवजी, शेष, शिवजी, नारदजी और सभी तत्त्वदर्शी मुनि ऐसी आरतीमें सदा लगे रहते हैं; निर्मलमति मुनियोंका दास तुलसी कहता है कि जो कोई ऐसी आरती करता है वह कामादि विकारोंसे छूटकर इस भवसागरसे तर जाता है ॥६॥

[४८]

हरति सब आरती आरती रामकी।
दहन दुख-दोष, निरमूलिनी कामकी ॥ १ ॥
सुभग सौरभ धूप दीपबर मालिका।
उड़त अघ-बिहँग सुनि ताल करतालिका ॥ २ ॥
भक्त-हृदि-भवन, अग्यान-तम-हारिनी।
बिमल बिग्यानमय तेज-बिस्तारिनी ॥ ३ ॥
मोह-मद-कोह-कलि-कंज-हिमजामिनी।
मुक्तिकी दूतिका, देह-दुति दामिनी ॥ ४ ॥
प्रनत-जन-कुमुद-बन-इन्दु-कर-जालिका।
तुलसि अभिमान-महिषेस बहु कालिका ॥ ५ ॥

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजीकी आरती सब आर्त्ति-पीड़ाको हर लेती है। दुःख और पापोंको जला देती है तथा कामनाको जड़से उखाड़कर फेंक देती है ॥१॥ वह सुन्दर सुगन्धयुक्त धूप और श्रेष्ठ दीपकोंकी माला है।

आरतीके समय हाथोंसे बजायी जानेवाली तालीका शब्द सुनकर पाप-रूपी पक्षी तुरन्त उड़ जाते हैं ॥२॥ यह आरती भक्तोंके हृदयरूपी भवन-के अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाली और निर्मल विज्ञानमय प्रकाशको फैलानेवाली है ॥३॥ यह मोह, मद, क्रोध और कलियुगरूपी कमलोंके नाश करनेके लिये जाड़ेकी रात है और मुक्तिरूपी नायिकासे मिला देनेके लिये दूती है तथा इसके शरीरकी चमक बिजलीके समान है ॥४॥ यह शरणागत भक्तरूपी कुमुदिनीके वनको प्रफुल्लित करनेके लिये चन्द्रमाकी किरणोंकी माला है और तुलसीदासके अभिमानरूपी महिषासुरका मर्दन करनेके लिये अनेक कालिकाओंके समान है ॥५॥

हरिशंकरी पद

[४९]

देव—

दनुज-वन-दहन, गुन-गहन, गोविंद नंदादि-आनंद-दाताऽविनाशी ।
शंभु, शिव, रुद्र, शंकर, भयंकर, भीम, घोर, तेजायतन, क्रोध-राशी ॥१॥
अनँत, भगवंत, जगदंत-अंतक-त्रास-शमन, श्रीरमन, भुवनाभिरामं ।
भूधराधीश जगदीश ईशान, विज्ञानघन, ज्ञान-कल्यान-धामं ॥२॥
वामनाव्यक्त, पावन, परावर, विभो, प्रकट परमातमा, प्रकृति-स्वामी ।
चंद्रशेखर, शूलपाणि, हर, अनघ, अज, अमित, अविछिन्न, वृषभेश-गामी ॥३॥
नील जलदाभतनु श्याम, बहु काम छवि राम राजीवलोचन कृपाला ।
कंबु-कर्पूर-वपु, धवल, निर्मल, मौलि जटा, सुर-तटिनि, सित सुमन माला ॥४॥
वसन किंजल्कधर, चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति विशाला ।
मार-करि मत्त मृगराज, त्रैनैन, हर, नौमि अपहरण संसार-जाला ॥५॥

कृष्ण, करुणाभवन, दवन कालीय खल, विपुल कंसादि निर्वंशकारी।
त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्मधर, अन्धकोरग-ग्रसन पन्नगारी ॥६॥
ब्रह्म,व्यापक,अकल,सकल,पर,परमहित,ग्यान,गोतीत गुण-वृत्ति-हर्त्ता।
सिंधुसुत-गर्व-गिरि-वज्र, गौरीश, भव, दक्ष-मख अखिल विध्वंसकर्त्ता॥
भक्तिप्रिय,भक्तजन-कामधुक धेनु, हरि, हरण दुर्घट विकट विपति भारी।
सुखद,नर्मद, वरद,विरज,अनवद्यऽखिल,विपिन-आनंद-वीथिन-विहारी
रुचिर हरिशंकरी नाम-मंत्रावली द्वन्द्वदुख हरनि, आनंदखानी।
विष्णु-शिव-लोक-सोपान-सम सर्वदा वदति तुलसीदास विशद बानी॥

[इस भजनके प्रत्येक पदमें आधेमें भगवान् श्रीविष्णुकी और आधे-में भगवान् शिवकी स्तुति की गयी है, इसीसे इसका नाम हरि-शंकरी है। गोसाईंजी महाराजने विष्णु और शिवकी एक साथ स्तुति करके हरि-हरमें अभेद सिद्ध किया है।]

भगवान् विष्णु—दानवरूपी वनके जलानेवाले, गुणोंके वन अर्थात् सात्त्विक सद्गुणोंसे सम्पन्न, इन्द्रियोंके नियन्ता, नन्द-उपनन्द आदिको आनन्द देनेवाले और अविनाशी हैं।

भगवान् शिव—शम्भु, शिव, रुद्र, शंकर आदि कल्याणकारी नामोंसे प्रसिद्ध हैं; बड़े भारी भयङ्कर, महान् तेजस्वी और क्रोधकी राशि हैं ॥१॥

भगवान् विष्णु—अनन्त हैं, छः प्रकारके ऐश्वर्योंसे युक्त हैं, जगत्-का अन्त करनेवाले यमकी त्रासको मिटानेवाले, लक्ष्मीजीके स्वामी और समस्त ब्रह्माण्डको आनन्द देनेवाले हैं।

भगवान् शिव—कैलासके राजा, जगत्के स्वामी, ईशान, विज्ञानघन और ज्ञान तथा मोक्षके धाम हैं ॥२॥

भगवान् विष्णु—वामनरूप धरनेवाले, मन-इन्द्रियोंसे अव्यक्त, पवित्र (विकाररहित), जड़-चेतन और लोक-परलोकके स्वामी, साक्षात् परमात्मा और प्रकृतिके स्वामी हैं।

भगवान् शिव—चन्द्रमाको मस्तकपर और हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले, सृष्टिके संहारकर्त्ता, पापशून्य, अजन्मा, अमेय, अखण्ड और नन्दीपर सवार होकर चलनेवाले हैं ॥३॥

भगवान् विष्णु—नीले मेघके समान श्याम शरीरवाले, अनेक कामदेवोंकी-सी शोभावाले, कमलके सदृश सुन्दर नेत्रवाले और समस्त विश्वमें रमनेवाले, कृपालु हैं।

भगवान् शिव—शंख और कपूरके समान चिकने, श्वेत और सुगन्धित शरीरवाले, मलरहित, मस्तकपर जटाजूट और गंगाजीको धारण करनेवाले तथा सफेद पुष्पोंकी माला पहने हुए हैं ॥४॥

भगवान् विष्णु—कमलके केसरके समान पीताम्बर धारण किये तथा हाथोंमें शंख, चक्र, पद्म, शार्ङ्ग धनुष और अत्यन्त विशाल कौमोदकी गदा लिये हुए हैं।

भगवान् शिव—कामदेवरूपी मतवाले हाथीको मारनेके लिये सिंहरूप, तीन नेत्रवाले और आवागमनरूपी जगत्के जालका नाश करनेवाले हैं, ऐसे शिवजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

भगवान् विष्णु—सबका आकर्षण करनेवाले, करुणाके धाम, कालिय-नागके दमन करनेवाले और कंस आदि अनेक दुष्टोंको निर्वंश करनेवाले हैं।

भगवान् शिव—त्रिपुरासुरका मद चूर्ण करनेवाले, मतवाले हाथीका चर्म धारण करनेवाले और अन्धकासुररूपी सर्पको ग्रसनेके लिये गरुड़ हैं ॥६॥

भगवान् विष्णु—पूर्णब्रह्म, चराचरमें व्यापक, कलारहित, सबसे श्रेष्ठ, परम हितैषी, ज्ञानस्वरूप, अन्तःकरणरूपी भीतरी और श्रवणादि बाहरी इन्द्रियोंसे अतीत और तीनों गुणोंकी वृत्तियोंका हरण करनेवाले हैं।

भगवान् शिव—जलन्धरके गर्वरूपी पर्वतको तोड़नेके लिये वज्र-रूप, पार्वतीके पति, संसारके उत्पत्तिस्थान हैं और दक्षके सम्पूर्ण यज्ञके विध्वंस करनेवाले हैं ॥७॥

भगवान् विष्णु—जिनको भक्ति ही प्यारी है, जो भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कामधेनुके समान हैं और उनकी बड़ी-बड़ी कठिन तथा भयानक विपत्तियोंको हरनेवाले, अतएव हरि कहलानेवाले हैं।

भगवान् शिव—सुख, आनन्द और मनचाहा वर देनेवाले; विरक्त; सब प्रकारके विकारों एवं दोषोंसे रहित और आनन्द-वन काशीकी गलियोंमें विहार करनेवाले हैं ॥८॥

यह हरि और शंकरके नाम-मन्त्रोंकी सुन्दर पंक्तियाँ राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे जनित दुःखको हरनेवाली, आनन्दकी खानि और विष्णु तथा शिवलोकमें जानेके लिये सदा सीढ़ीके समान हैं, यह बात तुलसीदास शुद्ध वाणीसे कहता है ॥९॥

[५०]

देव—

भानुकुल-कमल-रवि, कोटि कंदर्प-छवि, काल-कलि-व्यालमिव वैनतेयं ।
प्रबल भुजदंड परचंड कोदंड-धर तूणवर विशिख बलमप्रमेयं ॥१॥
अरुण राजीवदल-नयन, सुषमा-अयन, श्याम तन-कांति वर वारिदाभं ।
तप्त कांचन-वस्त्र, शस्त्र-विद्या-निपुण, सिद्ध-सुर-सेव्य, पाथोजनाभं ॥
अखिल लावण्य-गृह, विश्व-विग्रह, परम प्रौढ़, गुणगूढ़, महिमा उदारं ।
दुर्धर्ष, दुस्तर, दुर्ग, स्वर्ग-अपवर्ग-पति, भग्न संसार-पादप-कुठारं ॥३॥
शापवश मुनिवधू-मुक्तकृत, विप्रहित, यज्ञ-रक्षण-दक्ष, पक्षकर्ता ।
जनक-नृप-सदसि शिवचाप-भंजन, उग्र भार्गवागर्व-गरिमापहर्ता ॥४॥
गुरु-गिरा-गौरवामर-सुदुस्त्यज राज्य त्यक्त, श्रीसहित सौमित्रि-भ्राता ।
संग जनकात्मजा, मनुजमनुसृत्य अज, दुष्ट-वध-निरत, त्रैलोक्यत्राता ॥
दंडकारण्य कृतपुण्य पावन चरण, हरण मारीच-मायाकुरंगं ।
बालि बलमत्त गजराज इव केसरी, सुहृद-सुग्रीव-दुख-राशि-भंगं ॥६॥
ऋक्ष, मर्कट विकट सुभट उद्भट समर, शैल-संकाश रिपु त्रासकारी ।
बद्धपाथोधि, सुर-निकर-मोचन, सकुल दलन दससीस-भुजबीस भारी॥
दुष्ट विबुधारि-संघात, अपहरण महि-भार, अवतार कारण अनूपं ।
अमल, अनवद्य, अद्वैत, निर्गुण, सगुण, ब्रह्म सुमिरामि नरभूप-रूपं ॥८॥
शेष-श्रुति-शारदा-शंभु-नारद-सनक गनत गुन अंत नहिं तव चरित्रं ।
सोइ राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसी-त्रास-निधि-वहित्रं

भावार्थ—सूर्यवंश-रूपी कमलको खिलानेके लिये जो सूर्य हैं, करोड़ों कामदेवोंके समान जिनकी सुन्दरता है, कलिकालरूपी सर्पको ग्रसनेके लिये जो गरुड़ हैं, अपने प्रबल भुजदण्डोंमें जिन्होंने प्रचण्ड धनुष और बाण धारण कर रक्खे हैं, जो तरकस बाँधे हैं और जिनका बल असीम है ॥१॥ लाल कमलकी पँखुड़ियों-जैसे जिनके नेत्र हैं, जो शोभाके धाम हैं, जिनके साँवरे शरीरकी सुन्दर कान्ति मेघके समान है। जो तपे हुए सोनेके समान पीताम्बर धारण किये हैं, जो शस्त्र-विद्यामें निपुण और सिद्धों तथा देवताओंके उपास्य हैं, और जिनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है ॥२॥ जो सम्पूर्ण सुन्दरताके स्थान हैं, सारा विश्व ही जिनकी मूर्ति है, जो बड़े ही बुद्धिमान् और रहस्यमय गुणवाले हैं, जिनकी अपार महिमा है, जिनको कोई भी नहीं जीत सकता और जिनकी लीलाका पार कोई भी नहीं पा सकता, जिनको पहचानना बड़ा कठिन है, जो स्वर्ग और मोक्षके स्वामी तथा आवागमनरूपी संसारके वृक्षकी जड़ काटने-के लिये कुठार हैं ॥३॥ जो गौतम मुनिकी स्त्री अहल्याको शापसे मुक्त करनेवाले, विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेमें बड़े चतुर और अपने भक्तोंका पक्ष करनेवाले हैं, तथा राजा जनककी सभामें शिवजीके धनुषको तोड़कर महान् तेजस्वी एवं क्रोधी परशुरामजीके गर्व और महत्त्वको हरण करनेवाले हैं ॥४॥ जिन्होंने पिताके वचनोंका गौरव रखनेके लिये, देवता भी जिसको बड़ी कठिनतासे छोड़ सकते हैं, ऐसे राज्यको सहजमें ही त्याग दिया और भाई लक्ष्मण तथा श्रीजानकीजीको साथ लेकर, अजन्मा परब्रह्म होकर भी, नरलीलासे तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये रावणादि दुष्ट राक्षसोंका संहार किया ॥५॥ जिन्होंने अपने

पावन चरणकमलोंसे दण्डक वनको पवित्र कर दिया, कपट-मृगरूपी मारीचका नाश कर दिया, जो बालिरूपी महान् बलसे मतवाले हाथीके संहारके लिये सिंहरूप हैं और सुग्रीवके समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले परम सुहृद् हैं ॥६॥ जिन्होंने भयंकर और बड़े भारी शूरवीर रीछ-बन्दरोंको साथ लेकर संग्राममें कुम्भकर्ण-सरीखे पर्वतके समान आकारवाले योद्धाओंको डरा दिया, समुद्रको बाँध लिया, देवताओंके समूहको रावणके बन्धनसे छुड़ा दिया और दस सिर तथा विशाल बीस भुजाओंवाले रावणका कुलसहित नाश कर दिया ॥७॥ देवताओंके शत्रु दुष्ट राक्षसोंके समूहका, जो पृथ्वीपर भाररूप था, संहार करनेके लिये अवतार लेनेमें उपमारहित कारणवाले, निर्मल, निर्दोष, अद्वैतरूप, वास्तवमें निर्गुण, मायाको साथ लेकर सगुण, परब्रह्म नर-रूप राजराजेश्वर श्रीरामका मैं स्मरण करता हूँ ॥८॥ शेषजी, वेद, सरस्वती, शिवजी, नारद और सनकादि सदा जिनके गुण गाते हैं, परन्तु जिनकी लीलाका पार नहीं पा सकते वही शिवजीके प्यारे अयोध्यानाथ श्रीराम इस तुलसीदासको दुःखरूपी समुद्रसे पार उतारनेके लिये सदा-सर्वदा जहाजरूप हैं ॥९॥

[५१]

देव—

जानकीनाथ, रघुनाथ, रागादि-तम-तरणि, तारुण्यतनु, तेजधामं ।
सच्चिदानंद, आनंदकंदाकरं, विश्व-विश्राम, रामाभिरामं ॥१॥
नीलनव-वारिधर-सुभग-सुभकांति, कटि पीत कौशेय वर वसनधारी ।
रत्न-हाटक-जटित-मुकुट-मंडित-मौलि, भानु-शत-सदृश उद्योतकारी ॥

श्रवण कुंडल, भाल तिलक, भ्रू रुचिर अति, अरुण अंभोज लोचन विशालं ।
वक्र अवलोक, त्रैलोक शोकापहं, मार-रिपु-हृदय-मानस-मरालं ॥३॥
नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रदुति, अधर बिंबोपमा, मधुरहासं ।
कंठ दर, चिबुक वर, वचन गंभीरतर, सत्य संकल्प, सुरत्रास-नासं ॥
सुमन सुविचित्र नव तुलसिकादल-युतं मृदुल वनमाल उर भ्राजमानं ।
भ्रमत आमोदवश मत्त मधुकर-निकर, मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं ॥५॥
सुभग श्रीवत्स, केयूर, कंकण, हार, किंकिणी-रटनि कटि-तट रसालं ।
वाम दिशि जनकजासीन-सिंहासनं कनक-मृदुवल्लिवत तरु तमालं ॥६॥
आजानु भुजदंड, कोदंड-मंडित वाम बाहु, दक्षिण पाणि बाणमेकं ।
अखिल मुनि-निकर, सुर, सिद्ध, गंधर्व वर नमत नर नाग अवनिप अनेकं ॥
अनघ, अविछिन्न, सर्वज्ञ, सर्वेश, खलु सर्वतोभद्र-दाताऽसमाकं ।
प्रणतजन-खेद-विच्छेद-विद्या-निपुण नौमि श्रीराम सौमित्रिसाकं ॥८॥
युगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालयं, चिन्ह कुलिशादि शोभाति भारी ।
हनुमंत-हृदि विमल कृत परममंदिर, सदा दासतुलसी-शरण शोकहारी ॥

भावार्थ—जानकी-नाथ श्रीरघुनाथजी राग-द्वेषरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये सूर्यरूप, तरुण शरीरवाले, तेजके धाम, सच्चिदानन्द, आनन्द-कन्दकी खानि, संसारको शान्ति देनेवाले, परम सुन्दर हैं ॥१॥ जिनकी नवीन नील सजल मेघके समान सुन्दर और शुभ कान्ति है, जो कटि-तटमें सुन्दर रेशमी पीताम्बर धारण किये हैं, और जिनके

मस्तकपर सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाश करनेवाला रत्न-जड़ित सुन्दर सुवर्ण-मुकुट शोभित हो रहा है ॥२॥ जो कानोंमें कुण्डल पहिने, भालपर तिलक लगाये, अत्यन्त सुन्दर भ्रुकुटि तथा लाल कमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले, तिरछी चितवनसे देखते हुए, तीनों लोकोंका शोक हरनेवाले और कामारि श्रीशिवजीके हृदय-रूपी मान-सरोवरमें विहार करनेवाले हंस-रूप हैं ॥३॥ जिनकी नासिका बड़ी सुन्दर है, मनोहर कपोल हैं, दाँत हीरे-जैसे चमकदार हैं, होठ लाल-लाल बिम्बाफलके समान हैं, मधुर मुसकान है, शंखके समान कण्ठ और परम सुन्दर ठोढ़ी है। जिनके वचन बड़े ही गम्भीर होते हैं, जो सत्य-संकल्प और देवताओंके दुःखोंका नाश करनेवाले हैं ॥४॥ रंग-बिरंगे फूलों और नये तुलसी-पत्रोंकी कोमल वनमाला जिनके हृदयपर सुशोभित हो रही है, उस मालापर सुगन्धके वश मतवाले भौंरोंका समूह मधुर गुञ्जार करता हुआ उड़ रहा है ॥५॥ जिनके हृदयपर सुन्दर श्रीवत्सका चिह्न है, बाहुओंपर बाजूबन्द, हाथोंमें कंकण और गलेमें मनोहर हार शोभित हो रहा है, कटि-देशमें सुन्दर तागड़ीका मधुर शब्द हो रहा है। सिंहासनपर वाम भागमें श्रीजानकीजी विराजमान हैं, जो तमाल-वृक्षके समीप कोमल सुवर्ण-लता-सी शोभित हो रही हैं ॥६॥ जिनके भुजदण्ड घुटनोंतक लम्बे हैं; बायें हाथमें धनुष और दाहिने हाथमें एक बाण है; जिनको सम्पूर्ण मुनिमण्डल, देवता, सिद्ध, श्रेष्ठ गन्धर्व, मनुष्य, नाग और अनेक राजा-महाराजागण प्रणाम करते हैं ॥७॥ जो पापरहित, अखण्ड, सर्वज्ञ, सबके स्वामी और निश्चयपूर्वक हमलोगोंको कल्याण प्रदान करनेवाले हैं; जो शरणागत भक्तोंके कष्ट मिटानेकी कलामें सर्वथा निपुण हैं, ऐसे लक्ष्मण-

जी सहित श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥ जिनके दोनों चरण-कमल आनन्दके धाम और कमला (लक्ष्मीजी)के निवास-स्थान हैं अर्थात् लक्ष्मीजी सदा उन चरणोंकी सेवामें लगी रहती हैं। वज्र आदि ४८ चिह्नोंसे जो अत्यन्त शोभा पा रहे हैं और जिन्होंने भक्तवर श्रीहनुमान्‌जीके निर्मल हृदयको अपना श्रेष्ठ मन्दिर बना रक्खा है यानी श्रीहनुमान्‌जीके हृदयमें यह चरणकमल सदा बसते हैं, ऐसे शोक हरनेवाले श्रीरामके चरणोंकी शरणमें यह तुलसीदास है ॥९॥

[५२]

देव—

कोशलाधीश, जगदीश, जगदेकहित, अमितगुण, विपुल विस्तार लीला।
गायंतितव चरितसुपवित्र श्रुति-शेष-शुक-शंभु-सनकादि मुनि मननशीला
वारिचर-वपुष धरि भक्त-निस्तारपर, धरणिकृत नाव महिमातिगुर्वी।
सकल यज्ञांशमय उग्र विग्रह क्रोड़, मर्दि दनुजेश उद्धरण उर्वी ॥२॥
कमठ अति विकट तनु कठिन पृष्ठोपरी, भ्रमत मंदर कंडु-सुख मुरारी।
प्रकटकृत अमृत, गो, इंदिरा, इंदु, वृंदारकावृंद-आनंदकारी ॥३॥
मनुज-मुनि-सिद्ध-सुर-नाग-त्रासक, दुष्ट दनुज द्विज-धर्म-मरजाद-हर्त्ता।
अतुल मृगराज-वपुधरित, विद्दरित अरि, भक्त प्रहलाद-अहलाद-कर्त्ता ॥
छलन बलि कपट-बटुरूप वामन ब्रह्म, भुवन पर्यंत पद तीन करणं।
चरण-नख-नीर त्रैलोक-पावन परम, विबुध-जननी-दुसह-शोक हरणं ॥५॥
क्षत्रियाधीश-करि निकर-नव-केसरी, परशुधर विप्र-ससि-जलदरूपं।
बीस भुजदंड दससीस खंडन चंड वेग सायक नौमि राम भूपं ॥६॥

भूमिभर-भार-हर, प्रकट परमातमा, ब्रह्म नररूपधर भक्तहेतू।
वृष्णि-कुल-कुमुद-राकेश राधारमण, कंस-बंसाटवी-धूमकेतू ॥७॥
प्रबल पाखंड महि-मंडलाकुल देखि, निंद्यकृत अखिल मख कर्म-जालं।
शुद्ध बोधैकघन, ज्ञान-गुणधाम, अज, बौद्ध-अवतार वंदे कृपालं ॥८॥
कालकलिजनित मलमलिन मन सर्वनर मोह-निशि-निबिड़यवनांधकारं।
विष्णुयश पुत्र कलकी दिवाकर उदित दासतुलसी हरण विपतिभारं ॥९॥

भावार्थ—हे कोसलपति !! हे जगदीश्वर ! आप जगत्‌के एकमात्र हितकारी हैं, आपने अपने अपार गुणोंकी बड़ी लीला फैलायी है। आपके परम पवित्र चरित्रको चारों वेद, शेषजी, शुकदेव, शिव, सनकादि और मनन-शील मुनि गाते हैं ॥१॥ आपने मत्स्य-रूप धारणकर अपने भक्तोंको पार करनेके लिये (महाप्रलयके समय) पृथ्वीकी नौका बनायी; आपकी अपार महिमा है। आप समस्त यज्ञोंके अंशोंसे पूर्ण हैं, आपने बड़े भयङ्कर शरीरवाले हिरण्याक्ष दानवका मर्दन करके शूकर-रूपसे पृथ्वीका उद्धार किया ॥२॥ हे मुरारे ! आपने अति भयानक कछुएका रूप धारण करके, समुद्र-मन्थनके समय रसातलमें जाते हुए मन्दराचल पहाड़को अपनी कठिन पीठपर रख लिया, उस समय उसपर पर्वतके घूमनेसे आपको खुजलाहटका-सा सुख प्रतीत हुआ था। समुद्र मथने-पर आपने उसमेंसे अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी और चन्द्रमाको उत्पन्न किया, इससे आपने देवताओंको बहुत आनन्द दिया ॥३॥ आपने अतुलित बलशाली नृसिंहरूप धारण करके मनुष्य, मुनि, सिद्ध, देवता और नागोंको दुःख

देनेवाले, ब्राह्मण और धर्मकी मर्यादा नाश करनेवाले दुष्ट दानव हिरण्य-कशिपुरूप शत्रुको विदीर्णकर भक्तवर प्रह्लादको आह्लादित कर दिया ॥४॥ आपने वामन ब्रह्मचारीका रूप धारणकर राजा बलिको छलनेके लिये पहिले तीन पैर पृथ्वी माँगी, पर नापते समय तीन पैरसे सारा ब्रह्माण्ड-तक नाप लिया। (नापनेके समय) आपके चरण-नखसे तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला (गंगा) जल निकला। आपने बलिको पातालमें भेज, और वह राज्य इन्द्रको देकर देवमाता अदितिका दुःसह शोक हर लिया ॥५॥ आपने सहस्रबाहु आदि अभिमानी क्षत्रिय राजा-रूपी हाथियोंके समूहको विदीर्ण करनेके लिये सिंह-रूप और ब्राह्मण-रूपी धान्यको हराभरा करनेके लिये मेघरूप, ऐसा परशुराम अवतार धारण किया। और रामरूपसे दस सिर तथा बीस भुजदण्डवाले रावणको प्रचण्ड बाणोंसे खण्ड-खण्ड कर दिया, ऐसे राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥ भूमिके भारी भारको हरनेके लिये आप परमात्मा शुद्ध ब्रह्म होकर भी भक्तोंके लिये मनुष्यरूप धारण करके प्रकट हुए, जो वृष्णिवंश-रूपी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा, राधाजीके पति और कंसादिके वंशरूपी वनको जलानेके लिये अग्निस्वरूप थे ॥७॥ प्रबल पाखण्ड-दम्भसे पृथ्वीमण्डलको व्याकुल देखकर आपने यज्ञादि सम्पूर्ण कर्मकाण्डरूपी जालका खण्डन किया, ऐसे शुद्ध बोधस्वरूप, विज्ञानघन, सर्व दिव्य-गुण-सम्पन्न, अजन्मा, कृपालु बुद्ध भगवान्‌की मैं वन्दना करता हूँ ॥८॥ कलिकालजनित पापोंसे सभी मनुष्योंके मन मलिन हो रहे हैं। आप मोहरूपी रात्रिमें म्लेच्छरूपी घने अन्धकारके नाश करनेके लिये सूर्योदयकी तरह विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहाँ पुत्र-

रूपसे कल्कि-अवतार धारण करेंगे। हे नाथ! आप तुलसीदासकी विपत्तिके भारको दूर करें ॥९॥

[५२]

देव—

सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्र-निधि, सर्व, सर्वेश, सर्वाभिरामं।
शर्व-हृदि-कंज-मकरंद-मधुकर रुचिर रूप, भूपालमणि नौमि रामं ॥१॥
सर्वसुख-धाम गुणग्राम, विश्रामपद, नाम सर्वसपदमति पुनीतं।
निर्मलं, शांत, सुविशुद्ध, बोधायतन, क्रोध-मद-हरण, करुणा-निकेतं ॥
अजित, निरुपाधि, गोतीतमव्यक्त, विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।
प्राकृतं, प्रकट परमातमा, परमहित, प्रेरकानंत वंदे तुरीयं ॥३॥
भूधरं, सुन्दरं, श्रीवरं, मदन-मद-मथन सौन्दर्य-सीमातिरम्यं।
दुष्प्राप्य, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर्क्य, दुष्पार, संसारहर, सुलभ, मृदुभाव-गम्यं ॥
सत्यकृत, सत्यरत, सत्यव्रत सर्वदा, पुष्ट, संतुष्ट, संकष्टहारी।
धर्मवर्मनि ब्रह्मकर्मबोधैक, विप्रपूज्य, ब्रह्मण्यजनप्रिय, मुरारी ॥५॥
नित्य, निर्मम, नित्यमुक्त, निर्मान, हरि, ज्ञानघन, सच्चिदानंद मूलं।
सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष, कूटस्थ, गूढ़ार्चि, भक्तानुकूलं ॥६॥
सिद्ध-साधक-साध्य, वाच्य-वाचकरूप, मंत्र-जापक-जाप्य, सृष्टि-स्रष्टा।
परम कारण, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुण, निर्गुण, सकल दृश्य-द्रष्टा ॥७॥
व्योम-व्यापक, विरज, ब्रह्म, वरदेश, वैकुंठ, वामन, विमल ब्रह्मचारी।
सिद्ध-वृंदारकावृंदवंदित सदा, खंडि पाखंड-निर्मूलकारी ॥८॥

पूरनानंदसंदोह, अपहरन संमोह-अज्ञान, गुण-सन्निपातं।
वचन-मन-कर्म-गत शरण तुलसीदास त्रास-पाथोधि इव कुंभजातं ॥९॥

भावार्थ—समस्त सौभाग्यके देनेवाले, सब प्रकारसे कल्याणके भण्डार, विश्वरूप, विश्वके ईश्वर, सबको सुख देनेवाले, शिवजीके हृदय-कमलके मकरन्दको पान करनेके लिये भ्रमर-रूप, मनोहर रूपवान् एवं राजाओंमें शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥ हे श्रीरामजी! आप सब सुखोंके धाम, गुणोंकी राशि और परमशान्ति देनेवाले हैं। आपका नाम समस्त पदार्थोंको देनेवाला तथा बड़ा ही पवित्र है। आप शुद्ध, शान्त, अत्यन्त निर्मल, ज्ञान-स्वरूप, क्रोध और मदका नाश करनेवाले तथा करुणाके स्थान हैं ॥२॥ आप सबसे अजेय, उपाधिरहित, मन-इन्द्रियोंसे परे, अव्यक्त, व्यापक, एक, निर्विकार, अजन्मा और अद्वितीय हैं। परमात्मा होनेपर भी प्रकृतिको साथ लेकर प्रकट होनेवाले, परम हितकारी, सबके प्रेरक, अनन्त और निर्गुणरूप हैं। ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥ आप पृथ्वीको धारण करनेवाले, सुन्दर, लक्ष्मीपति, सुन्दरतामें कामदेवका गर्व खर्व करनेवाले, सौन्दर्यकी सीमा और अत्यन्त ही मनोहर हैं। आपको प्राप्त करना बड़ा कठिन है, आपके दर्शन बड़े कठिन हैं, तर्कसे कोई आपको नहीं जान सकता, आपकी लीलाका पार पाना बड़ा कठिन है। आप अपनी कृपासे आवागमनरूप संसारके हरनेवाले, भक्तोंको सहजहीमें दर्शन देनेवाले और प्रेम तथा दीनतासे प्राप्त होनेवाले हैं ॥४॥ आप सत्यको उत्पन्न करनेवाले, सत्यमें रहनेवाले, सत्य-संकल्प, सदा ही पुष्ट—दिव्य शक्ति-सामर्थ्यवान्,

सन्तुष्ट और महान् कष्टोंके हरनेवाले हैं। धर्म आपका कवच है, आप ब्रह्म और कर्मके ज्ञानमें अद्वितीय हैं, ब्राह्मणोंके पूज्य हैं, ब्राह्मणों और भक्तोंके प्यारे हैं, तथा मुर दानवके मारनेवाले हैं ॥५॥ हे हरे ! आप नित्य, ममता-रहित, नित्यमुक्त, मान-रहित, पापोंके हरनेवाले, ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्दघन और सबके मूल कारण हैं। आप सबके रक्षक, सबको मृत्युरूपसे भक्षण करनेवाले यमराजके स्वामी, कूटस्थ, गूढ़ तेजवाले और भक्तोंपर कृपा करने-वाले हैं ॥६॥ आप ही सिद्ध, साधक और साध्य हैं, आप ही वाच्य और वाचक हैं, आप ही मन्त्र, जापक और जाप्य तथा आप ही सृष्टि और आप ही स्रष्टा हैं। आप परम कारण हैं । आपकी नाभिसे कमल निकला है। आपका शरीर मेघके समान श्यामसुन्दर है। सगुण-निर्गुण दोनों ही आप हैं। यह समस्त दृश्यरूप संसार भी आप हैं और उसके द्रष्टा भी आप ही हैं ॥७॥ आप आकाशके समान सर्वव्यापी, रागरहित, ब्रह्म और वर देनेवाले देवताओंके स्वामी हैं। आपका नाम वैकुण्ठ और विमल वामन ब्रह्मचारी है। सिद्ध और देव-समूह सदा आपकी वन्दना किया करते हैं, आप पाखण्डका खण्डन कर उसे निर्मूल करनेवाले हैं ॥८॥ आप पूर्ण आनन्दकी राशि, अविवेक, अज्ञान और सत्त्व, रज, तम गुणोंके त्रिदोषको हरनेवाले हैं। यह तुलसीदास वचन, मन और कर्मसे आपकी शरण पड़ा है; इसके भव-भयरूपी समुद्रके सोखनेके लिये आप ही साक्षात् अगस्त्य ऋषिके समान हैं ॥९॥

[५४]

देव—

विश्व-विख्यात, विश्वेश, विश्वायतन, विश्वमरजाद, व्यालारिगामी ।
ब्रह्म, वरदेश, वागीश, व्यापक, विमल, विपुल बलवान, निर्वानस्वामी ॥१॥

प्रकृति, महत्तत्व, शब्दादि गुण, देवता व्योम, मरुद्‌ग्नि, अमलांबु, उर्वी ।
बुद्धि, मन, इंद्रिय, प्राण, चित्तातमा, काल, परमाणु, चिच्छक्ति गुर्वी ॥२॥
सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमणि ! व्यक्तमव्यक्त, गतभेद, विष्णो ।
भुवन भवदंग, कामारि-चंदित, पदद्वंद्व मंदाकिनी-जनक, जिष्णो ॥३॥
आदिमध्यांत, भगवंत ! त्वं सर्वगतमीश, पश्यन्ति ये ब्रह्मवादी ।
यथा पट-तंतु, घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु करि, कनक-कटकांगदादी ॥४॥
गूढ़, गंभीर, गर्वघ्न, गूढार्थवित, गुप्त, गोतीत, गुरु, ग्यान-ग्याता ।
ग्येय, ग्यानप्रिय, प्रचुर गरिमागार, घोर-संसार-पर, पार दाता ॥५॥
सत्यसंकल्प, अतिकल्प, कल्पांतकृत, कल्पनातीत, अहि तल्पवासी ।
वनज-लोचन, वनज-नाभ, वनदाभ-वपु, वनचरध्वज-कोटि-लावण्यरासी ॥६॥
सुकर, दुःकर, दुराराध्य, दुर्व्यसनहर, दुर्ग, दुर्द्धर्ष, दुर्गार्तिहर्त्ता ।
वेदगर्भार्भकादर्भ-गुनगर्व, अर्वागपर-गर्व-निर्वाप-कर्त्ता ॥७॥
भक्त-अनुकूल, भवशूल-निर्मूलकर, तूलअघ-नाम पावक-समानं ।
तरल तृष्णातमी-तरणि, धरणीधरण, शरण-भयहरण, करुणानिधानं ॥८॥
बहुल वृंदारकावृंद-वंदारु-पद-द्वंद्व मंदार-मालोर-धारी ।
पाहि मामीश संताप-संकुल सदा दास तुलसी प्रणत रावणारी ॥९॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आप विश्वमें प्रसिद्ध, अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी, विश्व-रूप, विश्वकी मर्यादा और गरुड़पर जानेवाले हैं। आप ब्रह्म हैं। वर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंके और वाणीके स्वामी हैं। आप सर्वव्यापक, निर्मल, बड़े बलवान् और मोक्ष-पदके अधीश्वर हैं ॥१॥ मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्त्व, रज,

तमोगुण; समस्त देवता; आकाश, वायु, अग्नि, निर्मल जल, पृथ्वी, बुद्धि, मन, दसों इन्द्रियाँ; प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान नामक पञ्च-प्राण; चित्त, आत्मा, काल, परमाणु और महान् चैतन्य-शक्ति आदि सभी कुछ आपका ही रूप है। हे राज-शिरोमणि ! प्रकट और अप्रकट सब कुछ आप ही हैं, आप अभेदरूपसे अखिल विश्वमें रम रहे हैं। यह समस्त जगत् आपके एक अंशमें स्थित है। शिवजी आपके दोनों चरण-कमलोंकी वन्दना करते हैं, श्रीगंगाजी इन्हीं चरणोंसे निकली हैं। आप सर्व-विजयी हैं ॥२-३॥ हे भगवन् ! आप ही आदि, मध्य और अन्त हैं। आप सबमें व्याप्त हैं। हे ईश ! ब्रह्मवादी ज्ञानीजन आपको सबमें ऐसे ओतप्रोत देखते हैं, जैसे वस्त्रमें सूत, घड़ेमें मिट्टी, सर्पमें माला, लकड़ीके बने हुए हाथीमें लकड़ी और कड़े, बाजू आदि गहनोंमें सोना ओतप्रोत है ॥४॥ इस प्रकार आप अत्यन्त गूढ़, गम्भीर, दर्प-हारी, गुप्त रहस्यके ज्ञाता, गुप्त, मन-इन्द्रियों-से अतीत, सबके गुरु, ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेयस्वरूप, ज्ञान-प्रिय, महान् गौरवके भण्डार और इस घोर भवसागरसे पार उतार देनेवाले हैं ॥५॥ आपका संकल्प सत्य है, आप प्रलय और महाप्रलय करनेवाले हैं। मन-बुद्धिसे आपकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। आप शेषनागकी शय्यापर निवास करनेवाले हैं। आपके कमलके समान नेत्र हैं, आपकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है, आपके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम है और करोड़ों कामदेवोंके समान आप सुन्दरताकी राशि हैं ॥६॥ आप भक्तोंके लिये सुलभ, दुष्टोंके लिये दुर्लभ हैं, आपकी आराधनामें (परीक्षाके लिये) बड़े-बड़े कष्ट आते हैं, आप भक्तोंके सारे दुर्गुणोंका नाश कर देते हैं, बड़े दुर्गम (बड़ी

कठिनाईसे मिलते हैं) दुर्द्धर्ष हैं और कठिन दुःखोंके हरनेवाले हैं। आप ब्रह्माजीके पुत्र सनकादिको अपनी परा-अपरा विद्याका जो गर्व था, उसे हरण करनेवाले हैं ॥७॥ आप भक्तोंपर प्रसन्न रहनेवाले, जन्म-मरणरूप संसारके क्लेशको जड़से उखाड़नेवाले हैं। आपका रामनाम पाप-रूपी रूईको जलानेके लिये अग्निरूप है। चञ्चल तृष्णा-रूपी रात्रिका नाश करनेके लिये आप सूर्य हैं, पृथ्वीको धारण करनेवाले, शरणागतका भय हरनेवाले और करुणाके स्थान हैं ॥८॥ आपके चरणयुगलोंकी बहुत-से देवताओंके समूह वन्दना करते हैं। आप मन्दारकी माला हृदयपर धारण किये रहते हैं। हे रावणके शत्रु श्रीरामजी! सदा सन्तापसे व्याकुल मैं तुलसीदास आपकी शरण हूँ। हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिये ॥९॥

[५५]

देव—

संत-संतापहर, विश्व-विश्रामकर, राम कामारि, अभिरामकारी।
शुद्ध बोधायतन, सच्चिदानंदघन, सज्जनानंद-वर्धन, खरारी ॥१॥
शील-समता-भवन, विषमता-मति-शमन, राम रामारमन, रावनारी।
खड्गकर, चर्मवर-वर्मधर, रुचिर कटि तूण शर-शक्ति सारंगधारी ॥२॥
सत्यसंधान, निर्वानप्रद, सर्वहित, सर्वगुण-ज्ञान-विज्ञानशाली।
सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी-नाम दिवसेश खर-किरणमाली ॥३॥
तपन तीच्छन तरुन तीव्र तापघ्न, तपरूप, तनभूप, तमपर, तपस्वी।
मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन, मोह-अंभोधि-मंदर, मनस्वी ॥४॥

वेद-विख्यात, वरदेश,वामन, विरज, विमल, वागीश, वैकुंठस्वामी।
काम-क्रोधादिमर्दन,विवर्धन,छमा-शांति-विग्रह,विहगराज-गामी ॥५॥
परम पावन, पाप-पुंज-मुंजाटवी-अनलइव निमिष निर्मूलकर्त्ता।
भुवन-भूषण,दूषणारि, भुवनेश,भूनाथ,श्रुतिमाथ जय भुवनभर्त्ता ॥६॥
अमल,अविचल, अकल,सकल,संतप्त-कलि-विकलता-भंजनानंदरासी।
उरगनायक-शयन, तरुणपंकज-नयन,छीरसागर-अयन,सर्ववासी ॥७॥
सिद्ध-कवि-कोविदानंद-दायक पदद्वंद्व मंदात्ममनुजैर्दुरापं।
यत्र संभूत अतिपूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं ॥८॥
नित्य निर्मुक्त, संयुक्तगुण, निर्गुणानंद, भगवंत, न्यामक, नियंता।
विश्व-पोषण-भरण,विश्व-कारण-करण,शरण तुलसीदास त्रास-हंता॥९॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! आप सन्तोंके संताप हरनेवाले, महाप्रलयके समय सारे विश्वको अपनेमें विश्राम देनेवाले तथा शिवजीको आनन्द देनेवाले हैं। आप शुद्ध-बोध-धाम, सच्चिदानन्दघन, सज्जनोंके आनन्दको बढ़ानेवाले और खर दैत्यके शत्रु हैं॥१॥ हे श्रीरामजी! आप शील और समताके स्थान, भेद-बुद्धिरूप विषमताके नाशक, लक्ष्मी-रमण और रावणके शत्रु हैं। आप हाथमें तलवार, सुन्दर ढाल, बाण, धनुष और शक्ति लिये रहते हैं, शरीरपर कवच धारण किये और सुन्दर कमरमें तरकस कसे हैं॥२॥ आप सत्य-संकल्प, कल्याणके दाता, सबके हितकारी, सर्व दिव्यगुण और ज्ञान, विज्ञानसे पूर्ण हैं। आपका राम-नाम (अज्ञान-रूपी) अत्यन्त घन अन्धकारसे पूर्ण घोर संसाररूपी रात्रिका नाश करनेके

लिये प्रचण्ड किरणयुक्त सूर्यके समान है ॥३॥ आपका तेज बड़ा ही तीक्ष्ण है, संसारके नये-नये तीव्र तापोंको आप नाश करनेवाले हैं, राजाका शरीर होनेपर भी आपका स्वरूप तपोमय है। आप अज्ञानसे परे और तपस्वी हैं। मान, मद, काम, मत्सर, कामना और मोहरूपी समुद्रके मथनेके लिये आप मन्दराचल हैं; आप बड़े विचारशील हैं ॥४॥ वेदोंमें प्रसिद्ध, वर देनेवाले देवताओंके स्वामी, वामन, विरक्त, विमल, वाणीके अधीश्वर और वैकुण्ठके स्वामी हैं। आप काम, क्रोध, लोभ आदिके नाश करनेवाले, क्षमा बढ़ानेवाले, शान्ति-रूप और पक्षि-राज गरुड़पर चढ़कर जानेवाले हैं ॥५॥ आप परम पवित्र और पाप-पुञ्जरूपी मूजके वनको पलभरमें जड़सहित जला देनेवाले अग्निरूप हैं। आप ब्रह्माण्डके भूषण, दूषण दैत्यके शत्रु, जगत्‌के स्वामी, पृथ्वीके पति, वेदके मस्तक और सारे विश्वका भरण-पोषण करनेवाले हैं। आपकी जय हो ॥६॥ आप निर्मल, एकरस, कला-रहित, कला-सहित और कलियुगके तापसे तपे हुए जीवोंकी व्याकुलताका नाश करनेवाले, आनन्दकी राशि हैं। आप शेषनागपर शयन करते हैं, आपके नेत्र अत्यन्त प्रफुल्लित कमलके समान हैं। आप व्यक्तरूपसे क्षीर-सागरमें निवास करते हैं और अव्यक्तरूपसे सबमें रहते हैं ॥७॥ सिद्धों, कवियों और विद्वानोंको सुख देनेवाले आपके वे चरण-युगल दुष्टात्मा मनुष्योंको बड़े दुर्लभ हैं; जिन पवित्र चरणोंसे परम पवित्र जलवाली गंगाजी निकली हैं, जिनके दर्शनमात्रसे ही पाप दूर हो जाते हैं ॥८॥ आप नित्य हैं, मायासे सर्वथा मुक्त हैं, दिव्य-गुण-सम्पन्न हैं, तीनों गुणोंसे रहित हैं, आनन्द-स्वरूप हैं, छः प्रकारके ऐश्वर्यसे युक्त भगवान् हैं, नियमोंके कर्ता और

सबपर शासन करनेवाले हैं । आप समस्त विश्वके पालन-पोषण करनेवाले, जगत्‌के आदि-कारण और शरणागत तुलसीदासका भय हरनेवाले हैं ॥ ९ ॥

[५६]

देव—

दनुजसूदन, दयासिंधु, दंभापहन, दहन दुर्दोष, दर्पापहर्त्ता ।
दुष्टतादमन, दमभवन, दुःखौघहर, दुर्ग दुर्वासना नाशकर्त्ता ॥१॥
भूरिभूषण, भानुमंत, भगवंत, भव-भंजनाभयद, भुवनेश भारी ।
भावनातीत, भववंद्य, भवभक्तहित, भूमिउद्धरण, भूधरण-धारी ॥२॥
वरद, वनदाभ, वागीश, विश्वातमा, विरज, वैकुण्ठ-मन्दिर-विहारी ।
व्यापकं व्योम, वंदारु, वामन, विभो, ब्रह्मविद, ब्रह्म, चिंतापहारी ॥३॥
सहज सुंदर, सुमुख, सुमन, शुभ सर्वदा, शुद्ध सर्वज्ञ, स्वच्छन्दचारी ।
सर्वकृत, सर्वभृत, सर्वजित, सर्वहित, सत्य-संकल्प, कल्पांतकारी ॥४॥
नित्य, निर्मोह, निर्गुण, निरंजन, निजानंद, निर्वाण, निर्वाणदाता ।
निर्भरानंद, निःकंप, निःसीम, निर्मुक्त, निरुपाधि, निर्मम, विधाता ॥५॥
महामंगलमूल, मोद-महिमायतन, मुग्ध-मधु-मथन, मानद, अमानी ।
मदनमर्दन, मदातीत, मायारहित, मंजु मानाथ, पाथोजपानी ॥६॥
कमल-लोचन, कलाकोश, कोदंडधर, कोशलाधीश, कल्याणरासी ।
यातुधान प्रचुर मत्तकरि-केसरी, भक्तमन-पुण्य-आरण्यवासी ॥७॥
अनघ, अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनंदसिंधो ।
अचल, अनिकेत, अविरल, अनामय, अनारंभ, अंभोदनादहन-बंधो ॥८॥

दासतुलसी खेदखिन्न, आपन्न इह, शोकसंपन्न, अतिशय सभीतं ।
प्रणतपालक राम, परम करुणाधाम, पाहि मामुर्विपति, दुर्विनीतं ॥९॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आप दानवोंके नाशकर्ता, दयाके समुद्र दम्भ दूर करनेवाले, दुष्कृतोंको भस्म करनेवाले और दर्पको हरनेवाले हैं; आप दुष्टताका नाश करनेवाले, दमके स्थान अर्थात् जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ, दुःखोंके समूहको हरनेवाले और कठिन तथा बुरी वासनाओंके विनाशक हैं ॥ १ ॥ आप अनेक अलंकार धारण किये, सूर्यके समान प्रकाशमान, ऐश्वर्यादि छः दिव्य गुणोंसे युक्त, संसारसे छुड़ानेवाले, अभय दान देनेवाले और सबसे बड़े जगदीश्वर हैं। आप मन-बुद्धिकी भावनाओंसे परे, शिवजीसे वन्दनीय, शिवभक्तोंके हितकारी, भूमिका उद्धार करनेवाले और (गोवर्द्धन) पर्वतको धारण करनेवाले हैं ॥२॥ हे वरद ! आपका शरीर मेघके समान श्याम है। आप वाणीके अधीश्वर, विश्वके आत्मा, राग-रहित और वैकुण्ठ-मन्दिरमें नित्य विहार करनेवाले हैं। आप आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त हैं, सबसे वन्दनीय, वामन-रूप-धारी, सर्वसमर्थ, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मरूप और चिन्ताओंको दूर करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ आप स्वभावसे ही सुन्दर, सुन्दर मुखवाले और शुद्ध मन-वाले हैं। आप सदा शुभस्वरूप, निर्मल, सर्वज्ञ और स्वतन्त्र आचरण करनेवाले हैं। आप सब कुछ करनेवाले, सबका भरण-पोषण करनेवाले, सबको जीतनेवाले, सबके हितकारी, सत्य-संकल्प और कल्पका अन्त अर्थात् प्रलय करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ आप नित्य हैं, मोह-रहित हैं, निर्गुण हैं, निरञ्जन हैं, निजानन्दरूप हैं, मुक्तिस्वरूप और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आप पूर्ण आनन्दस्वरूप, अचल, सीमारहित, मोक्षरूप, उपाधिरहित,

ममतारहित और सबके विधाता हैं ॥५॥ आप बड़े-बड़े मंगलोंके मूल, आनन्द और महिमाके स्थान, मूर्ख मधु दैत्यको मारनेवाले, दूसरों-को मान देनेवाले और स्वयं मानरहित हैं। आप कामदेवके नाशक, मदसे रहित, मायासे रहित, सुन्दरी लक्ष्मी देवीके स्वामी और हाथमें कमल लेनेवाले हैं ॥६॥ आपके नेत्र कमलके समान हैं, आप चौंसठ कलाओंके भण्डार, धनुष धारण करनेवाले, कोसलदेशके स्वामी और कल्याणकी राशि हैं। राक्षसरूपी बहुत-से मतवाले हाथियोंको मारनेके लिये सिंह हैं, भक्तोंके मनरूपी पवित्र वनमें निवास करनेवाले हैं ॥७॥ आप पापरहित, अद्वितीय, दोषरहित, अप्रकट, अजन्मा, सीमारहित, निर्विकार और आनन्दके समुद्र हैं। आप अचल हैं, (पर) एक ही स्थानमें आपका निवास नहीं है,—आप सर्वत्र हैं, परिपूर्ण हैं, नीरोग अर्थात् मायाके विकारोंसे रहित हैं और अनादि हैं। मेघनादके मारने-वाले लक्ष्मणजीके आप ही बड़े भाई हैं ॥८॥ यह तुलसीदास संसारके दुःखोंसे दुखी, विपद्-ग्रस्त, शोकयुक्त और अत्यन्त भयभीत हो रहा है; हे शरणागत-पालक! हे परम करुणाके धाम! हे पृथ्वीपति रामजी! इस दुर्विनीतकी रक्षा कीजिये ॥९॥

[५७]

देव—

देहि सतसंग निजअंग श्रीरंग! भवभंग-कारण शरण-शोकहारी।
ये तु भवदंघ्रिपल्लव-समाश्रित सदा, भक्तिरत, विगतसंशय, मुरारी ॥१॥
असुर-सुर, नाग-नर, यक्ष-गंधर्व-खग, रजनिचर, सिद्ध, ये चापि अन्ने।
संत-संसर्ग त्रैवर्गपर परमपद, प्राप्य निःप्राप्यगति त्वयि प्रसन्ने ॥२॥

वृत्र,बलि,बाण,प्रहलाद,मय,व्याध,गज,गृध्र,द्विजबन्धु निजधर्मत्यागी।
साधुपद-सलिल निर्धूत-कल्मष सकल,श्वपच-यवनादि कैवल्य-भागी॥
शांत, निरपेक्ष, निर्मम, निरामय, अगुण, शब्दब्रह्मैकपर, ब्रह्मज्ञानी।
दक्ष,समदृक,स्वदृक,विगतअति स्वपरमति,परमरति विरति तव चक्रपानी
विश्व-उपकारहित व्यग्रचित सर्वदा, त्यक्तमदमन्यु, कृत पुण्यरासी।
यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छन्ति क्षीराब्धिवासी ॥५॥
वेद-पयसिंधु, सुविचार मंदरमहा, अखिल-मुनिवृंद निर्मथनकर्ता।
सार सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं वदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्ता ॥६॥
शोक-संदेह, भय-हर्ष, तम-तर्षगण साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी।
यथा रघुनाथ-सायकनिशाचर-चमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग भारी ॥७॥
यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश भ्रमत जगजोनि संकट अनेकं।
तत्र त्वद्भक्ति-सज्जन, समागम, सदा भवतु मे राम विश्राममेकं ॥८॥
प्रबल भव-जनित त्रैव्याधि-भैषज भगति, भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।
संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं, किमपि मति मलिन कह दासतुलसी॥

भावार्थ–हे रमापते ! मुझे सत्संग दीजिये, क्योंकि वह आपकी प्राप्तिका एक प्रधान साधन है, संसारके आवागमनका नाश करनेवाला है और शरणमें आये हुए जीवोंके शोकका हरनेवाला है। हे मुरारी ! जो लोग सदा आपके चरण-पल्लवके आश्रित और आपकी भक्तिमें लगे रहते हैं, उनका अविद्याजनित सन्देह नष्ट हो जाता है ॥१॥ दैत्य, देवता, नाग, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध तथा और भी दूसरे जितने जीव हैं, वे सभी (आपकी भक्तिमें लगे हुए) सन्तोंके संसर्गसे

अर्थ, धर्म, कामसे परे आपके उस नित्य परमपदको प्राप्त कर लेते हैं, जो अन्य साधनोंसे नहीं मिल सकता, परन्तु केवल आपके प्रसन्न होनेसे ही मिलता है ॥२॥ वृत्रासुर, बलि, बाणासुर, प्रह्लाद, मय, व्याध (वाल्मीकि), गजेन्द्र, गिद्ध जटायु और ब्राह्मणोचित कर्मसे पतित अजामिल ब्राह्मण तथा चाण्डाल, यवनादि भी सन्तोंके चरणोदकसे अपने सारे पापोंको धोकर कल्याण-पदके भागी हो गये ॥३॥ (वे साधु कैसे हैं) चित्तसे सारी कामनाएँ निकल जानेके कारण शान्त, किसी भी वस्तु या स्थितिकी आकांक्षा न रहनेसे निरपेक्ष, ममतासे रहित, उपाधिरहित, तीनों गुणोंसे अतीत, शब्दब्रह्म अर्थात् वेदके जाननेवालोंमें मुख्य और ब्रह्मवेत्ता हैं। जिस कार्यके लिये मनुष्य-देह मिला है उसे पूरा करनेमें कुशल, सम-द्रष्टा, अपने आत्मस्वरूपको जाननेवाले, अपनी-परायी बुद्धि अर्थात् भेदबुद्धिसे रहित, सब कुछ अपने श्रीरामका समझनेवाले, और हे चक्रपाणे ! वे संसारके भोगोंसे विरक्त और आप परमात्माके अनन्य प्रेमी हैं ॥४॥ संसारके उपकारके लिये उनका चित्त सदा व्याकुल रहता है, मद और क्रोधको उन्होंने त्याग दिया है और पुण्योंकी बड़ी पूँजी कमायी है। ऐसे सन्त जहाँ रहते हैं, वहाँ ब्रह्मा और शिवजीको साथ लेकर क्षीर-समुद्र-निवासी श्रीहरि भगवान् आप-से-आप दौड़े जाते हैं ॥५॥ (सत्संग कैसा है) वेद क्षीर-समुद्र है, उसका भलीभाँति विचार ही मन्दराचल है, समस्त मुनियोंके समूह उसे मथनेवाले हैं। मथनेपर सत्संगरूपी सार-अमृत निकला। यह सिद्धान्त रुक्मिणीपति भगवान् श्रीकृष्ण बतलाते हैं ॥६॥ सन्त-महात्माओंकी सत्-युक्ति शोक, सन्देह, भय, हर्ष, अज्ञान और वासनाओंके समूहको इस प्रकार नष्ट कर डालती है, जैसे श्रीरघुनाथजीके बाण राक्षसोंकी सेनाके समुदायको कौशल और

बड़े वेगसे नष्ट कर देते हैं ॥७॥ हे रामजी! अपने कर्मवश जहाँ कहीं मेरा जन्म हो, जिस-जिस भी योनिमें अनेक संकट भोगता हुआ भटकूँ, वहाँ ही मुझे आपकी भक्ति और सन्तोंका संग सदा मिलता रहे, हे राम! बस, मेरा एकमात्र यही आश्रय हो ॥८॥ संसार-जनित (भौतिक, दैहिक और दैविक) तीन प्रकारकी प्रबल पीड़ाका नाश करनेके लिये आपकी भक्ति ही एकमात्र ओषधि है और अद्वैतदर्शी (चराचरमें एक आपको ही देखनेवाले) भक्त ही वैद्य हैं। वास्तवमें सन्त और भगवान्‌में कभी किञ्चित् भी अन्तर नहीं है। मलिन-बुद्धि तुलसी-दास तो यही कहता है ॥९॥

[५८]

देव—

देहि अवलंब करकमल, कमलारमन, दमन-दुख, शमन-संताप भारी।
अज्ञान-राकेश-ग्रासन विधुंतुद, गर्व-काम-करिमत्त-हरि, दूषणारी ॥१॥
वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका-दुर्ग, रचित मन दनुज मय-रूपधारी।
विविध कोशौघ, अति रुचिर मंदिर-निकर, सत्वगुण प्रमुख त्रैकटककारी
कुणप-अभिमान सागर भयंकर घोर, विपुल अवगाह, दुस्तर अपारं।
नक्र-रागादि-संकुल मनोरथ सकल, संग-संकल्प वीची-विकारं ॥३॥
मोह दशमौलि, तद्भ्रात अहँकार, पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट विबुधांतकारी ॥४॥
द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट, दर्प मनुजाद मद-शूलपानी।
अमितबल परम दुर्जय निशाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी॥५

जीव भवदंघ्रि-सेवक विभीषण बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसितचिंता ।
नियम-यम सकल सुरलोक-लोकेश लंकेश-वश नाथ ! अत्यंत भीता ॥६॥
ज्ञान-अवधेश-गृह गेहिनी भक्ति शुभ, तत्र अवतार भूभार-हर्ता ।
भक्त-संकष्ट अवलोकि पितु-वाक्य कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्ता ।७।
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विपुल ज्ञान-सुग्रीवकृत जलधिसेतू ।
प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन-तनय, विषम वन भवनमिव धूमकेतू ॥८॥
दुष्ट दनुजेश निर्वंशकृत दासहित, विश्वदुख-हरण बोधैकरासी ।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी हृदय कमलवासी।९।

भावार्थ—हे लक्ष्मी-रमण ! इस संसार-सागरमें डूबते हुए मुझको अपने कर-कमलका सहारा दीजिये । क्योंकि आप दुःखोंके दूर करनेवाले और बड़े-बड़े सन्तापोंके नाश करनेवाले हैं । हे दूषणनाशक ! आप अज्ञानरूपी चन्द्रमाको ग्रसनेके लिये राहु और गर्व तथा कामरूपी मतवाले हाथियोंके मर्दन करनेके लिये सिंह हैं ॥१॥ शरीररूपी ब्रह्माण्ड-में प्रवृत्ति ही लंकाका किला है । मनरूपी मयदानवने इसे बनाया है । इसमें जो अनेक कोश (शरीरमें पाँच कोश हैं–अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) हैं, वे इसके अत्यन्त सुन्दर महल हैं, सत्त्वगुण आदि तीनों गुण इसके सेनापति हैं ॥२॥ देहाभिमान अत्यन्त भयङ्कर, अथाह, अपार, दुस्तर समुद्र है, जिसमें राग-द्वेष और कामना आदि अनेक घड़ियाल भरे हैं और आसक्ति तथा संकल्पोंकी लहरें उठ रही हैं ॥३॥ इस लंकामें मोहरूपी रावण, अहंकाररूपी उसका भाई कुम्भकर्ण और शान्ति नष्ट करनेवाला कामरूपी मेघनाद है । यहाँ

लोभरूपी अतिकाय, मत्सररूपी दुष्ट महोदर, क्रोधरूपी महापापी देवान्तक, द्वेषरूपी दुर्मुख, दम्भरूपी खर, कपटरूपी अकम्पन, दर्परूपी मनुजाद और मदरूपी शूलपाणि राक्षस हैं, यह (दुष्ट राज-परिवार और उसके सेनापतिरूपी) राक्षसोंका समूह अत्यन्त पराक्रमी और जीतनेमें बड़ा कठिन है। इन मोह आदि छः राक्षसोंके साथ इन्द्रियरूपी राक्षसियाँ भी हैं ॥४-५॥ हे नाथ! आपके चरणकमलोंका सेवक जीव विभीषण है, जो इन दुष्टोंसे भरे हुए वनमें सर्वथा चिन्ताग्रस्त हुआ निवास कर रहा है। यम-नियमरूपी दसों दिक्पाल और इन्द्र इस रावणके अधीन होकर अत्यन्त भयभीत रहते हैं ॥६॥ इसलिये जैसे आपने महाराज दशरथ और कौशल्याके यहाँ पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार लिया था, वैसे ही हे जानकीवल्लभ! ज्ञानरूपी दशरथके घर, शुभ भक्तिरूपी कौशल्याजीके द्वारा (इन मोहादि राक्षसोंका नाश करनेके लिये प्रकट होइये।) और जैसे भक्तोंका कष्ट देखकर पिताकी आज्ञासे आप उस समय वन पधारे थे, (वैसे ही मेरे हृदयरूपी वनमें पधारिये) ॥७॥ मोक्षके जो सब साधन हैं, उन अनेक रीछ-बन्दरोंके द्वारा ज्ञान-रूपी सुग्रीवसे (संसार) सागरपर पुल बँधा दीजिये। फिर प्रबल वैराग्यरूपी महा बलवान् पवनकुमार हनुमान्‌जी विषयरूपी वन और महलोंको अग्निके समान भस्म कर देंगे ॥८॥ तदनन्तर हे केवल ज्ञानघन! हे सारे विश्वका दुःख हरनेवाले श्रीरामजी! जीवरूपी दासके लिये मोहरूपी दुष्ट दानवका वंश-सहित नाश कर दीजिये और तुलसीदासके हृदयकमलमें सदा-सर्वदा छोटे भाई लक्ष्मण और श्रीजानकीजीसहित निवास कीजिये ॥९॥

[५९]

देव—

दीन-उद्धरण रघुवर्य करुणाभवन, शमन-संताप, पापौघहारी।
विमल विज्ञान-विग्रह, अनुग्रहरूप, भूपवर, विबुध, नर्मद, खरारी ॥१॥
संसार-कांतार अति घोर, गंभीर, घन, गहन तरुकर्म-संकुल, मुरारी।
वासना वल्लि खर-कंटकाकुल विपुल, निबिड़ विटपाटवी कठिन भारी॥२॥
विविध चितवृत्ति-खग निकर श्येनोलूक, काक बक गृध्र आमिष-अहारी।
अखिल खल, निपुण छल, छिद्र निरखत सदा, जीवजनपथिकमन-खेदकारी
क्रोध करिमत्त, मृगराज कंदर्प, मद-दर्प वृक-भालु अति उग्रकर्मा।
महिष मत्सर क्रूर, लोभ शूकररूप, फेरु छल, दंभ मार्जारधर्मा ॥४॥
कपट मर्कट विकट, व्याघ्र पाखण्डमुख, दुखद मृगव्रात, उत्पातकर्ता।
हृदय अवलोकि यह शोक शरणागतं, पाहि मां पाहि, भो विश्वभर्त्ता ॥५॥
प्रबल अहँकार दुरघट महीधर, महामोह गिरि-गुहा निबिड़ांधकारं।
चित्त वेताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगौघ वृश्चिक-विकारं ॥६॥
विषय-सुख-लालसा दंश-मशकादि, खल झिल्लि रूपादि सब सर्प, स्वामी।
तत्र आक्षिप्त तव विषम माया नाथ, अंध मैं मंद, व्यालादगामी ॥७॥
घोर, अवगाह भव आपगा पापजलपूर, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर, अपारा।
मकर षड्वर्ग, गो नक्र चक्राकुला, कूल शुभ-अशुभ, दुख तीव्र धारा ॥८॥
सकल संघट पोच शोचवश सर्वदा दासतुलसी विषम गहन ग्रस्तं।
त्राहि रघुवंशभूषण कृपाकर, कठिन काल विकराल-कलित्रास-त्रस्तं ॥९॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आप दीनोंका उद्धार करनेवाले, रघुकुलमें श्रेष्ठ, करुणाके स्थान, सन्तापका नाश करनेवाले और पापोंके समूहके

हरनेवाले हैं। आप निर्विकार, विज्ञान-स्वरूप, कृपा-मूर्त्ति, राजाओंमें शिरोमणि, देवताओंको सुख देनेवाले तथा खर नामक दैत्यके शत्रु हैं ॥१॥ हे मुरारे ! यह संसाररूपी वन बड़ा ही भयानक और गहरा है, इसमें कर्मरूपी वृक्ष बड़ी ही सघनतासे लगे हैं, वासनारूपी लताएँ लिपट रही हैं और व्याकुलतारूपी अनेक पैने काँटे बिछ रहे हैं। इस प्रकार यह सघन वृक्ष-समूहोंका महाघोर वन है ॥२॥ इस वनमें, चित्तकी जो अनेक प्रकारकी वृत्तियाँ हैं, सो मांसाहारी बाज, उल्लू, काक, बगुले और गिद्ध आदि पक्षियोंका समूह है। ये सभी बड़े दुष्ट और छल करनेमें निपुण हैं। कोई छिद्र देखते ही यह जीवरूपी यात्रियोंके मनको सदा दुःख दिया करते हैं ॥३॥ इस संसार-वनमें क्रोधरूपी मतवाला हाथी, कामरूपी सिंह, मदरूपी भेड़िया और गर्वरूपी रीछ है, ये सभी बड़े निर्दय हैं। इनके सिवा यहाँ मत्सररूपी क्रूर भैंसा, लोभ-रूपी शूकर, छलरूपी गीदड़ और दम्भरूपी बिलाव भी हैं ॥४॥ यहाँ कपटरूपी विकट बन्दर और पाखण्डरूपी बाघ हैं, जो सन्तरूपी मृगोंको सदा दुःख दिया करते और उपद्रव मचाया करते हैं। हे विश्वम्भर ! हृदयमें यह शोक देखकर मैं आपकी शरण आया हूँ, हे नाथ ! आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥५॥ इस संसार-वनमें (इन जीव-जन्तुओंसे बच जानेपर भी आगे और विपद् है) अहंकाररूपी बड़ा विशाल पर्वत है, जो सहजमें लाँघा नहीं जा सकता। इस पर्वतमें महामोहरूपी गुफा है जिसके अन्दर घना अन्धकार है। यहाँ चित्तरूपी वेताल, मनरूपी मनुष्य-भक्षक राक्षस, रोगरूपी भूत-प्रेतगण और भोग-विलासरूपी बिच्छुओंका जहर फैला हुआ है ॥६॥ यहाँ विषय-सुखकी लालसारूपी

मक्खियाँ और मच्छर हैं, दुष्ट मनुष्यरूपी झिल्ली है, और हे स्वामी ! रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श विषयरूपी सर्प हैं। हे नाथ ! आपकी कठिन मायाने मुझ मूर्खको यहाँ लाकर पटक दिया है। हे गरुड़गामी ! मैं तो अन्धा हूँ, अर्थात् ज्ञाननेत्र-विहीन हूँ ॥७॥ इस संसार-वनमें बहनेवाली वासनारूपी भव-नदी बड़ी ही भयङ्कर और अथाह है, जिसमें पापरूपी जल भरा हुआ है, जिसकी ओर देखना सहज नहीं, इसका पार करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि यह अपार है। इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सररूपी छः मगर हैं, इन्द्रियरूपी घड़ियाल और भँवर भरे पड़े हैं। शुभ-अशुभ कर्मरूपी इसके दो तीर हैं, इसमें दुःखोंकी तीव्र धारा बह रही है ॥८॥ हे रघुवंशभूषण ! इन सब नीचोंके दलने मुझे पकड़ रक्खा है, यह आपका दास तुलसी सदा चिन्ताके वश रहता है। इस कराल कलिकालके भयसे डरे हुए मुझको आप कृपा करके बचाइये ॥९॥

[६०]

देव—

नौमि नारायणं, नरं करुणायनं, ध्यान-पारायणं, ज्ञान-मूलं।
अखिल संसार-उपकार-कारण, सदयहृदय, तपनिरत, प्रणतानुकूलं ॥१॥
श्याम नव तामरस-दामद्युति वपुष, छवि कोटि मदनार्क अगणित प्रकाशं।
तरुण रमणीय राजीव-लोचन ललित, वदन राकेश, कर-निकर हासं ॥२॥
सकल सौंदर्य-निधि, विपुल गुणधाम, विधि-वेद-बुध-शंभु-सेवित, अमानं।
अरुण पदकंज-मकरंद मंदाकिनी मधुप-मुनिवृंद कुर्वन्ति पानं ॥३॥
शक्र-प्रेरित घोर मदन मद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी।
मारकंडेय मुनिवर्यहित कौतुकी बिनहि कल्पांत प्रभु प्रलयकारी ॥४॥

पुण्य वन शैलसरि बद्रिकाश्रम सदासीन पद्मासनं, एक रूपं ।
सिद्ध-योगींद्र-वृंदारकानंदप्रद, भद्रदायक दरस अति अनूपं ॥५॥
मान मनभंग, चितभंग मद, क्रोध लोभादि पर्वतदुर्ग, भुवन-भर्त्ता ।
द्वेष-मत्सर-राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर कर्म कर्त्ता ॥६॥
विकटतर वक्र क्षुरधार प्रमदा, तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्गधारा ।
धीर-गंभीर-मन-पीर-कारक, तत्र के वराका वयं विगतसारा ॥७॥
परम दुर्घट पथं,खल-असंगत साथ, नाथ ! नहिं हाथ वर विरति-यष्टी ।
दर्शनारत दास,त्रसित माया-पाश,त्राहि हरि,त्राहि हरि,दास कष्टी ॥८॥
दासतुलसी दीन धर्म-संबलहीन,श्रमित अति खेद, मति मोह नाशी ।
देहि अवलंब न विलंब अंभोज-कर, चक्रधर-तेजबल शर्मराशी ॥९॥

भावार्थ—मैं उन श्रीनर-नारायणको नमस्कार करता हूँ, जो करुणाके स्थान, ध्यानके परायण और ज्ञानके कारण हैं। जो समस्त संसारका उपकार करनेवाले, दयापूर्ण हृदयवाले, तपस्यामें लगे हुए और शरणागत भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं ॥१॥ जिनके शरीरकी कान्ति नवीन-नील कमलोंकी मालाके समान है। जिनका सौन्दर्य करोड़ों कामदेवोंके सदृश और प्रकाश अगणित सूर्योंके समान है। नव-विकसित सुन्दर कमलोंके समान जिनके मनोहर नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है और चन्द्रमाकी किरणोंके समान जिनकी मन्द मुसकान है ॥२॥ जो समस्त सुन्दरताके भण्डार, अनेक दिव्य गुणोंके स्थान और ब्रह्मा, वेद, विद्वान् और शिवजीके द्वारा सेवित होनेपर भी मानरहित हैं। जिनके लाल-लाल चरण-कमलोंसे प्रकट हुए मन्दाकिनी (गंगाजी) रूपी मकरन्दका मुनिरूपी भौंरे सदा पान करते हैं ॥३॥ जो इन्द्रसे भेजे गये भीषण कामदेवके मद-

का मर्दन करनेवाले, क्रोधरहित, शुद्ध बोधस्वरूप और ब्रह्मचारी हैं। जिन्होंने अपने सामर्थ्यसे बिना ही कल्पान्तके मार्कण्डेय मुनिको दिखानेके लिये प्रलयकालकी लीला की थी ॥४॥ जो पवित्र वन, पर्वत और नदियोंसे पूर्ण बदरिकाश्रममें सदा पद्मासन लगाये एकरूपसे (अटल) विराजमान रहते हैं। जिनका अत्यन्त अनुपम दर्शन सिद्ध, योगीन्द्र और देवताओंको भी आनन्द और कल्याणका देनेवाला है ॥५॥ हे विश्वम्भर! वहाँ आपके बदरिकाश्रमके मार्गमें 'मनभंग' नामक पर्वत है, (जिसे देखकर लोग आगे बढ़नेसे हिचकते हैं) और यहाँ मेरे हृदयमें अभिमानरूपी मनभंग है; (जिससे साधनका उत्साह भंग हो जाता है) वहाँ 'चित्त-भंग' पर्वत है, तो यहाँ मद ही चित्तभंगका काम करता है; वहाँ जैसे कठिन-कठिन पर्वत हैं तो यहाँ काम-लोभादि कठिन पर्वत हैं। वहाँ (जैसे हिंसक पशु आदि बड़े विघ्न हैं) तो यहाँ राग-द्वेष-मत्सर आदि अनेक बड़े भारी विघ्न हैं, जो सब बड़े ही निर्दय और दुष्ट हैं ॥६॥ यहाँ कामिनीकी बड़ी टेढ़ी नजर ही छुरेकी भयङ्कर धार और कामका विष ही तलवारकी तेज धार है, जो बड़े-बड़े धीर और गम्भीर पुरुषोंके मनको भी पीड़ा पहुँचा रहा है, फिर हम-सरीखे निर्बलोंकी तो गिनती ही क्या है? ॥७॥ हे नाथ! प्रथम तो यह आपके दर्शनका मार्ग ही बड़ा कठिन है, फिर दुष्ट और नीचोंका (मेरा) साथ हो गया है, सहारेके लिये हाथमें वैराग्यरूपी लकड़ी नहीं है। यह दास आपके दर्शनके लिये घबरा रहा है, परन्तु मायाके फन्देमें फँसकर दुखी हो रहा है। हे नाथ! दासके कष्टको दूरकर इसकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥८॥ मुझ दीन तुलसीदासके पास धर्मरूपी मार्ग-व्यय (कलेवा) भी नहीं है, मैं थककर बड़ा दुखी हो रहा

हूँ, मोहने मेरी बुद्धिका भी नाश कर दिया है; अतएव हे चक्रधारी ! आप तेज, बल और सुखकी राशि हैं, मुझे बिना विलम्ब अपने करकमलका सहारा दीजिये ॥९॥

[६१]

देव—

सकल सुखकंद, आनंदवन पुण्यकृत, बिंदुमाधव द्वंद्व-विपतिहारी।
यस्यांघ्रिपाथोज अज-शंभु-सनकादि, शुक-शेष, मुनिवृंद अलि निलयकारी
अमल मरकत श्याम, काम शतकोटि छवि, पीतपट तड़ित इव जलदनीलं
अरुण शतपत्र लोचन, विलोकनि चारु, प्रणतजन-सुखद, करुणार्द्रशीलं ॥
काल-गजराज-मृगराज, दनुजेश-वन-दहन पावक, मोह-निशि-दिनेशं।
चारिभुज चक्र-कौमोदकी-जलज-दर, सरसिजोपरि यथा राजहंसं ॥३॥
मुकुट, कुंडल, तिलक, अलकअलिव्रातइव, भृकुटि, द्विज, अधरवर, चारुनासा
रुचिर सुकपोल, दर ग्रीव सुखसीव, हरि, इंदुकर-कुंदमिव मधुरहासा ।४।
उरसि वनमाल सुविशाल नवमञ्जरी, भ्राज श्रीवत्स-लांछन उदारं।
परम ब्रह्मन्य, अतिधन्य, गतमन्यु, अज, अमितबल, विपुल महिमा अपारं
हार-केयूर, कर कनक कंकन रतन-जटित मणि-मेखला कटि प्रदेशं।
युगल पद नूपुरामुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग सौंदर्य वेशं ॥६॥
सकल सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्य श्री दक्षि दिशि रुचिर वारीश-कन्या ।*
बसत विबुधापगा निकट तट सदनवर, नयन निरखंति नर तेऽति धन्या

---

* वर्तमान विन्दुमाधवजीकी बायीं ओर लक्ष्मीजी विराजती हैं। परन्तु यह मूर्ति मसजिद बननेके बादकी स्थापित की हुई है। तुलसीदासजीके समयमें लक्ष्मीजी दाहिनी ओर थीं। वह मूर्ति पड़ोसके एक ब्राह्मणके यहाँ है। उसके पूर्वजने जब देखा

अखिल मंगल-भवन, निबिड़ संशय-शमन, दमन-वृजिनाटवी, कष्टहर्त्ता।
विश्वधृत, विश्वहित, अजित, गोतीत, शिव, विश्वपालन-हरण, विश्वकर्त्ता
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरिदानं।
ग्रसित-भव-व्याल अतित्रास तुलसीदास, त्राहि श्रीराम उरगारि-यानं॥

भावार्थ—हे विन्दुमाधव! आप सब सुखोंकी वर्षा करनेवाले मेघ हैं, आनन्दवन काशीको पवित्र करनेवाले हैं, रागद्वेषादि द्वन्द्वजनित विपत्तिको हरनेवाले हैं; आपके चरणकमलोंमें ब्रह्मा, शिव और सनक-सनन्दनादि तथा शेष और मुनिरूपी भ्रमर सदा निवास किया करते हैं ॥१॥ आप निर्मल नीलमणिके समान श्यामरूप हैं, सौ करोड़ कामदेवोंके समान आपकी सुन्दरता है, पीताम्बर धारण किये हैं। वह पीताम्बर नीले बादलमें बिजलीके समान शोभित हो रहा है। आपके नेत्र लाल कमलके समान हैं, सुन्दर चितवन है, भक्तोंको सुख देनेवाले हैं और करुणा-रससे स्वाभाविक ही भीगे रहते हैं ॥२॥ आप कालरूपी हाथीको मारनेके लिये सिंह, राक्षसरूपी वनके जलानेके लिये अग्नि और मोहरूपी रात्रिके नाश करनेके लिये सूर्यरूप हैं। चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं। आपके हाथमें श्वेत शंख, कमलके ऊपर

कि मुसलमान मन्दिर तोड़नेवाले हैं तो मूर्तियाँ अपने घरमें उठा ले गया। उस समय शैवकाशीके विश्वनाथजीका और वैष्णवकाशीके विन्दुमाधवजीका मन्दिर तोड़ा गया और उसीकी जगह मसजिद बनायी गयी। एक धवरहरा मन्दिरका ही है। दूसरा उसी मेलमें बनाया गया। तुलसीदासजी जहाँगीरके समयमें वैकुण्ठवासी हुए और मन्दिर औरंगजेबके राज्यकालमें तोड़े गये।

बैठे हुए राजहंसके समान शोभित हो रहा है ॥३॥ मस्तकपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल, भालपर तिलक, भ्रमरसमूहके समान काली अलकें, टेढ़ी भ्रकुटी, सुन्दर दाँत, होठ और नासिका बड़ी ही सुन्दर हैं। सुन्दर कपोल और शंखके समान ग्रीवा मानो सब सुखकी सीमा है। हे हरे! आपको मधुर मुसकान चन्द्रकिरण और कुन्दकुसुमके समान है ॥४॥ आपके हृदयपर नयी मंजरियोंसहित विशाल वनमाला और सुन्दर श्रीवत्सका चिह्न शोभायमान हो रहा है। आप ब्राह्मणोंका बहुत आदर करनेवाले हैं, क्रोधरहित, अजन्मा, अपरिमित पराक्रमी, महा महिमावाले और अनन्त हैं। आपको धन्य है, धन्य है ॥५॥ आप हृदयपर हार, भुजाओंपर सोनेके बाजूबन्द, हाथोंमें रत्नजडित कंकण और कटिदेशमें मणियोंकी तागड़ी धारण किये हैं। दोनों चरणोंमें हंसके समान सुन्दर शब्द करनेवाले नूपुर पहिने हैं। आपके समस्त अंग सुन्दर और आपका सारा ही वेश सुन्दरतामय है ॥६॥ समस्त सौभाग्यमयी तीनों लोकोंकी शोभा समुद्र-कन्या श्रीलक्ष्मीजी आपके दक्षिणभागमें विराजमान हैं। आप गंगाजीके समीप सुन्दर मन्दिरमें निवास करते हैं; जो मनुष्य नेत्रोंसे आपका दर्शन करते हैं, वे अत्यन्त धन्य हैं ॥७॥ आप सब कल्याणोंके स्थान, कठिन-कठिन सन्देहोंके नाश करनेवाले, पापरूपी वनको भस्म करनेवाले और कष्टोंके हरनेवाले हैं। आप विश्वको धारण करनेवाले, विश्वके हितकारी, अजेय, मन-इन्द्रियोंसे परे, कल्याणरूप और विश्वका सृजन, पालन तथा संहार करनेवाले हैं ॥८॥ आप ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यके भण्डार हैं, अणिमादि महान् सिद्धियोंके देनेवाले बड़े दानी हैं। मुझ तुलसीदासको संसाररूपी सर्प निगले जा रहा है, इससे मैं

अत्यन्त भयभीत हूँ, अतएव हे सर्पोंके नाशक गरुड़की सवारी करनेवाले श्रीरामजी ! कृपा करके मुझे बचा लीजिये ॥९॥

राग आसावरी

[६२]

इहै परम फलु, परम बड़ाई ।
नखसिख रुचिर बिन्दुमाधव छबि निरखहिं नयन अघाई ॥ १ ॥
बिसद किसोर पीन सुंदर बपु, स्याम सुरुचि अधिकाई ।
नीलकंज, बारिद, तमाल, मनि, इन्ह तनुते दुति पाई ॥ २ ॥
मृदुल चरन सुभ चिन्ह, पदज नख, अति अभूत उपमाई ।
अरुन नील पाथोज प्रसव जनु, मनिजुत दल-समुदाई ॥ ३ ॥
जातरूप मनि-जटित मनोहर, नूपुर जन-सुखदाई ।
जनु हर-उर हरि बिबिध रूप धरि, रहे बर भवन बनाई ॥ ४ ॥
कटितट रटति चारु किंकिनि-रव, अनुपम, बरनि न जाई ।
हेम जलज कल कलित मध्य जनु, मधुकर मुखर सुहाई ॥ ५ ॥
उर बिसाल भृगुचरन चारु अति, सूचत कोमलताई ।
कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि, रचि निज कर मन लाई ॥ ६ ॥
गज-मनिमाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदक निकाई ।
जनु उडुगन-मंडल बारिदपर, नवग्रह रची अथाई ॥ ७ ॥

भुजगभोग-भुजदंड कंज दर चक्र गदा बनि आई।
सोभासीव ग्रीव, चिबुकाधर, बदन अमित छबि छाई॥ ८॥
कुलिस, कुंद-कुडमल, दामिनि-दुति, दसनन देखि लजाई।
नासा-नयन-कपोल, ललित श्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई॥ ९॥
कुंचित कच सिर मुकुट, भाल पर, तिलक कहौं समुझाई।
अलप तड़ित जुग रेख इंदु महँ, रहि तजि चंचलताई॥१०॥
निरमल पीत दुकूल अनूपम, उपमा हिय न समाई।
बहु मनिजुत गिरि नील सिखरपर, कनक-बसन रुचिराई॥११॥
दच्छ भाग अनुराग-सहित इंदिरा अधिक ललिताई।
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग, नील निचोल ओढ़ाई॥१२॥
सत सारदा सेष श्रुति मिलिकै, सोभा कहि न सिराई।
तुलसिदास मतिमंद द्वंदरत कहै कौन बिधि गाई॥१३॥

भावार्थ—इस शरीरका यही बड़ा भारी फल और इतनी ही महिमा है कि नेत्र तृप्त होकर श्रीविन्दुमाधवकी नखसे शिखतक शोभा देखें॥१॥ जो निर्मल, सोलह वर्षके किशोर, पुष्ट हैं और जिनके सुन्दर श्याम शरीरकी शोभा असीम है। ऐसा जान पड़ता है मानों नील कमल, (श्याम) मेघ, तमाल और नीलम मणिने इन्हींके शरीरसे शोभा प्राप्त की है॥२॥ जिनके कोमल चरणोंमें सुन्दर (वज्र अंकुशादि) शुभ-चिह्न हैं, अंगुलियों और नखोंकी ऐसी अति अभूत उपमा है मानों लाल और नीले कमलोंसे रत्नयुक्त पत्तोंका समूह निकला हो॥३॥ सोनेके रत्न-

जड़ित नूपुर मनको मोहनेवाले और भक्तोंको सुख देनेवाले हैं, मानों शिवजीके हृदयमें अनेक रूप धारण करके भगवान् विष्णु सुन्दर मन्दिर बनाकर वास कर रहे हों ॥४॥ कमरमें जो तागड़ीका सुन्दर शब्द हो रहा है, वह अनुपम है, उसका वर्णन नहीं हो सकता, (फिर भी ऐसा कहा जा सकता है) मानों सोनेके कमलकी सुन्दर कलियोंमें भ्रमरोंका सुहावना शब्द (गुञ्जार) हो रहा हो ॥५॥ विशाल वक्षःस्थलमें भृगुमुनिके चरण-का चिह्न अंकित होकर आपके वक्षःस्थलकी कोमलता बतला रहा है। कंकण आदि नाना प्रकारके गहने ऐसे सुन्दर हैं, मानों ब्रह्माजीने मन लगाकर स्वयं अपने हाथोंसे बनाये हैं ॥६॥ गजमुक्ताओंकी मालाके बीचमें रत्नोंकी चौकी ऐसी शोभा पा रही है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता (पर समझानेके लिये कहा जाता है कि) मानों (नीले) मेघपर तारागणोंके मण्डलके बीचमें नवग्रहोंने बैठनेका स्थान बनाया हो। (भाव यह है कि नीले मेघके समान भगवान्‌का शरीर है, तारागणोंका मण्डल गजमुक्ताओंकी माला है और उसके बीचमें स्थान-स्थानपर पिरोये हुए रंग-बिरंगे रत्न नवग्रहोंके बैठनेका स्थान है) ॥७॥ सर्पके शरीर-सदृश भुजदण्डोंमें कमल, शंख, चक्र और गदा शोभित हो रहे हैं; ग्रीवा सुन्दरता-की सीमा है और ठोड़ी तथा होठोंसहित मुखकी असीम छबि छा रही है ॥८॥ दाँतोंकी ओर देखकर हीरे, कुन्दकलियाँ और बिजलीकी चमक लजाती है। नासिका, नेत्र, कपोल, सुन्दर कानोंमें कुण्डल और भौंहें मुझे बहुत प्यारी लगती हैं ॥९॥ सिरपर घुँघुरवाले बाल हैं, उनपर मुकुट पहने हैं, भालपर तिलककी बड़ी शोभा हो रही है, उसे समझाकर कहता हूँ, मानों बिजलीकी दो छोटी-छोटी रेखाएँ अपनी चञ्चलता

छोड़कर चन्द्रमाके मण्डलमें निवास कर रही हैं ॥१०॥ शरीरपर निर्मल अनुपम पीताम्बर धारण किये हैं, जिसकी उपमा हृदयमें समाती नहीं। (फिर भी कल्पना की जाती है) मानों अनेक मणियोंसे युक्त नीले पर्वतके शिखरपर सोनेके समान वस्त्र शोभित हो रहा हो ॥११॥ दक्षिणभागमें प्रेमसहित लक्ष्मीजी विराजमान हैं। वह ऐसी शोभा पा रही हैं मानों तमालवृक्षके समीप नीला वस्त्र ओढ़े सोनेकी लता बैठी हो ॥१२॥ सैकड़ों सरस्वती, शेषनाग और वेद सब मिलकर इस शोभाका वर्णन करें तो भी पार नहीं पा सकते। फिर भला यह रागद्वेषादि द्वन्द्वोंमें फँसा हुआ मन्दबुद्धि तुलसीदास किस प्रकार गाकर इस शोभाका वर्णन कर सकता है ॥१३॥

राग जैतश्री

[६३]

मन इतनोई या तनुको परम फलु।

*सब अँग सुभग बिन्दुमाधव-छबि, तजि सुभाव, अवलोकु एक पलु ॥१॥

तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु, नख-दुति हृदय-तिमिर-हारी।

कुलिस-केतु-जव-जलज रेख बर, अंकुस मन-गज-बसकारी ॥२॥

कनक-जटित मनि नूपुर, मेखल, कटि-तट रटति मधुर बानी।

त्रिबली उदर, गँभीर नाभि सर, जहँ उपजे बिरंचि ग्यानी ॥३॥

उर बनमाल, पदिक अति सोभित, बिप्र-चरन चित कहँ करषै।

स्याम तामरस-दाम-बरन बपु, पीत बसन सोभा बरषै ॥४॥

* "सब अँग" और "नखसिख" दोनों पाठ मिलते हैं।

कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी।
गदा कंज दर चारु चक्रधर, नाग-सुंड-सम भुज चारी ॥५॥
कंबुग्रीव, छबिसीव चिबुक द्विज, अधर अरुन, उन्नत नासा।
नव राजीव नयन, ससि आनन, सेवक-सुखद बिसद हासा ॥६॥
रुचिर कपोल, श्रवन कुंडल, सिर मुकुट, सुतिलक भाल भ्राजै।
ललित भृकुटि, सुंदर चितवनि, कच निरखि मधुप-अवली लाजै ॥७॥
रूप-सील-गुन-खानि दच्छ दिसि, सिंधु-सुता रत-पद-सेवा।
जाकी कृपा-कटाच्छ चहत सिव, बिधि, मुनि, मनुज, दनुज, देवा ॥८॥
तुलसिदास भव-त्रास मिटै तब, जब मति येहि सरूप अटकै।
नाहिंत दीन मलीन हीनसुख, कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥९॥

भावार्थ—हे मन! इस शरीरका परम फल केवल इतना ही है कि नख-से शिखतक सुन्दर अंगोंवाले श्रीबिन्दुमाधवजीकी छबिका पलभरके लिये अपने चञ्चल स्वभावको छोड़कर स्थिरताके साथ प्रेमसे दर्शन कर ॥१॥ जिनके कोमल चरण नये खिले हुए लाल कमलके समान हैं, नखोंकी ज्योति हृदयके अज्ञानरूप अन्धकारको हरनेवाली है। जिन चरणोंमें वज्र, ध्वजा, जौ और कमल आदिकी सुन्दर रेखाएँ हैं और अंकुशका चिह्न मनरूपी हाथीको वशमें करनेवाला है ॥२॥ पैरोंमें सोनेके रत्नजड़ित नूपुर और कमरमें तागड़ी मधुरस्वरसे बज रही है। पेटपर तीन रेखाएँ पड़ी हैं, नाभि सरोवरके समान गहरी है, जहाँसे ब्रह्माजी-सरीखे ज्ञानी उत्पन्न हुए हैं ॥३॥ हृदयपर वनमाला और उसके बीचमें

मणियोंकी चौकी अत्यन्त शोभायमान है, भृगुजीके चरणका चिह्न तो चित्तको खींचे लेता है। नीले कमलके फूलोंकी मालाके समान जिनके शरीरका वर्ण है, उसपर पीताम्बर मानों शोभाकी वर्षा ही कर रहा है ॥४॥ हाथोंमें मनोहर कंकण और बाजूबन्द हैं, अंगूठी निराला ही आनन्द दे रही है। हाथीकी सूँड़सदृश विशाल चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं ॥५॥ शंखके समान ग्रीवा सुन्दरताकी सीमा है। सुन्दर ठोड़ी, दाँत, लाल होठ और नुकीली नासिका है, नवीन कमलके सदृश नेत्र, चन्द्रमाके समान मुखमण्डल और मृदु मुसकान भक्तों-को सुख देनेवाली है ॥६॥ सुन्दर कपोल, कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट और भालपर सुन्दर तिलक शोभित हो रहा है। सुन्दर कटीली भौंहें और मनोहर चितवन है और जिनके काले केशोंको देखकर भौंरोंकी पंक्ति भी लज्जित हो रही है ॥७॥ रूप, शील और गुणोंकी खानि सिन्धु-सुता श्रीलक्ष्मीजी दक्षिणभागमें विराजित होकर चरणसेवा कर रही हैं, जिनकी कृपादृष्टि शिव, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, दैत्य और देवता भी चाहते हैं ॥८॥ तुलसीदासका संसारजनित भय तभी मिट सकता है, जब उसकी बुद्धि इस सुन्दर छविमें अटक जाय; नहीं तो वह दीन, मलीन और सुखहीन होकर करोड़ों जन्मोंतक व्यर्थ ही भटकता फिरेगा ॥९॥

राग बसन्त

[६४]

बंदौं रघुपति करुना-निधान। जाते छूटै भव-भेद-ग्यान ॥ १ ॥
रघुबंस-कुमुद-सुखप्रद निसेस। सेवत पद-पंकज अज-महेस ॥ २ ॥
निज भक्त-हृदय-पाथोज-भृंग। लावन्य बपुष अगनित अनंग ॥ ३ ॥

अति प्रबल मोह-तम-मारतंड । अग्यान-गहन-पावक प्रचंड ॥ ४ ॥
अभिमान-सिंधु-कुंभज उदार । सुररंजन, भंजन भूमिभार ॥ ५ ॥
रागादि-सर्पगन-पन्नगारि । कंदर्प-नाग-मृगपति, मुरारि ॥ ६ ॥
भव-जलधि-पोत चरनारबिंद । जानकी-रवन आनंद-कंद ॥ ७ ॥
हनुमंत-प्रेम-बापी-मराल । निष्काम कामधुक गो दयाल ॥ ८ ॥
त्रैलोक-तिलक, गुनगहन राम । कह तुलसिदास बिश्राम-धाम ॥ ९ ॥

भावार्थ—मैं करुणानिधान श्रीरघुनाथजीकी वन्दना करता हूँ, जिससे मेरा सांसारिक भेद-ज्ञान छूट जाय ॥१॥ श्रीरामजी रघुवंशरूपी कुमुदको चन्द्रमाके समान प्रफुल्लित करनेवाले हैं। ब्रह्मा और शिव जिनके चरण-कमलोंकी सेवा किया करते हैं ॥२॥ जो अपने भक्तोंके हृदय-कमलमें भ्रमरकी भाँति निवास करते हैं। जिनके शरीरका लावण्य असंख्य कामदेवोंके समान है ॥३॥ जो बड़े प्रबल मोहरूपी अन्धकारके नाश करनेके लिये सूर्य और अज्ञानरूपी गहन वनके भस्म करनेके लिये अग्निरूप हैं ॥४॥ जो अभिमानरूपी समुद्रके सोखनेके लिये उदार अगस्त्य हैं और देवताओंको सुख देनेवाले तथा (दैत्योंका दलनकर) पृथ्वीका भार उतारनेवाले हैं ॥५॥ जो राग-द्वेषादि सर्पोंके भक्षण करनेके लिये गरुड़ और कामरूपी हाथीको मारनेके लिये सिंह हैं तथा मुर नामक दैत्यके मारनेवाले हैं ॥६॥ जिनके चरणकमल संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये जहाज हैं। ऐसे श्रीजानकीरमण रामजी आनन्दकी वर्षा करनेवाले हैं ॥७॥ जो हनुमान्‌जीके प्रेमरूपी बावड़ीमें हंसके समान सदा विहार करनेवाले और निष्काम भक्तोंके लिये कामधेनुके समान परम दयालु

हैं ॥८॥ तुलसीदास यही कहता है कि तीनों लोकोंके शिरोमणि, गुणों-के वन श्रीरामचन्द्रजी ही केवल शान्तिके स्थान हैं ॥९॥

राग भैरव

[६५]

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
रामनाम-नवनेह-मेहको, मन ! हठि होहि पपीहा ॥१॥
सब साधन-फल कूप-सरित-सर, सागर-सलिल-निरासा ।
रामनाम-रति-स्वाति-सुधा-सुभ सीकर प्रेमपियासा ॥२॥
गरजि, तरजि, पाषान बरषि पवि, प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ॥३॥
रामनाम-गति, रामनाम-मति, रामनाम-अनुरागी ।
ह्वै गये हैं, जे होहिंगे, तेइ त्रिभुवन गनियत बड़भागी ॥४॥
एक अंग मग अगमु गवन कर, बिलमु न छिन छिन छाहैं ।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि, निरुपधि नेम निबाहैं ॥५॥

भावार्थ—हे जीभ ! तू सदा राम राममें रमा कर, राम राम रटा कर और राम रामका जाप किया कर। हे मन ! तू भी रामनाममें प्रेमरूपी नित्य-नवीन मेघके लिये हठ करके पपीहा बन जा ॥१॥ जैसे पपीहा कुआँ, नदी, तालाब और समुद्रतकके जलकी जरा-सी भी आशा न कर केवल स्वाती-नक्षत्र-के जलकी एक प्रेम-बूँदके लिये प्यासा रहता है, ऐसे ही तू भी और सारे साधनों तथा उनके फलोंकीआशा न कर केवल श्रीरामनामके प्रेमरूपी

अमृतकी बूँदमें ही प्रीति कर ॥२॥ पपीहेपर उसका प्रेमी मेघ गरजता है, डाँट बतलाता है, ओले बरसाता है, वज्रपात करता है, इस प्रकार कठिन-से-कठिन परीक्षा करके पपीहेके अनन्य प्रेमको पूर्णरूपसे परखकर जब वह इस बातको जान लेता है कि ज्यों-ज्यों परीक्षा लेता हूँ त्यों-त्यों इस पपीहेका प्रेम अधिकाधिक बढ़ता है, तब उसे स्वातीकी बूँद मिलती है ॥३॥ इसी प्रकार (भगवान्‌की दयासे परीक्षाके लिये कैसे ही संकट आकर तुझे विचलित करनेकी चेष्टा क्यों न करें) तू तो (अनन्य मनसे) श्रीरामनामकी ही शरण ग्रहण कर, राम-नाममें ही बुद्धि लगा, राम-नामका ही प्रेमी बन। ऐसे रामनामके आश्रित जितने भक्त हो गये हैं, अभी हैं और जो आगे होंगे, त्रिलोकीमें उन्हींको बड़ा भाग्यवान् समझना चाहिये ॥४॥ यह (रामनाममें अनन्य प्रेम करनेका) एकांगी मार्ग बड़ा ही कठिन है, यदि तू इस मार्गपर चला जाय तो क्षण-क्षणमें (सांसारिक सुखोंकी) छाया लेनेके लिये ठहरकर देर न करना। हे तुलसीदास! तेरा भला तो अपनी ओरसे श्रीरामनाममें निरुपधि अर्थात् निष्कपट प्रेमके निबाहनेसे ही होगा ॥५॥

[६६]

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥ १ ॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे ॥ २ ॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे।
राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे ॥ ३ ॥

जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥ ४॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥ ५॥

भावार्थ—अरे पागल! राम जप, राम जप, राम जप। इस भयानक संसाररूपी समुद्रसे पार उतरनेके लिये श्रीरामनाम ही अपनी नाव है। अर्थात् इस रामनामरूपी नावमें बैठकर मनुष्य जब चाहे तभी पार उतर सकता है, क्योंकि यह मनुष्यके अधिकारमें है॥१॥ इसी एक साधनके बलसे सब ऋद्धि-सिद्धियोंको साध ले, क्योंकि योग, संयम और समाधि आदि साधनोंको कलिकालरूपी रोगने ग्रस लिया है॥२॥ भला हो, बुरा हो, उलटा हो, सीधा हो, अन्तमें सबको एक रामनामसे ही काम पड़ेगा॥३॥ यह जगत् भ्रमसे आकाशमें फले-फूले दीखनेवाले बगीचेके समान सर्वथा मिथ्या है, धूएँके महलोंकी भाँति क्षण-क्षणमें दीखने और मिटनेवाले इन सांसारिक पदार्थोंको देखकर तू भूल मत॥४॥ जो रामनामको छोड़कर दूसरेका भरोसा करता है, हे तुलसीदास! वह उस मूर्खके समान है जो सामने परोसे हुए भोजनको छोड़कर एक-एक कौरके लिये कुत्तेकी तरह घर-घर माँगता फिरता है॥५॥

[६७]

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे।
कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे॥ १॥

राम सुमिरत सब बिधि हीको राज रे।
रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥ २॥
राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे।
मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे॥ ३॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥ ४॥
राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे।
राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥ ५॥

भावार्थ—हे जीव ! सदा अनन्य प्रेमसे श्रीरामनाम जपा कर, इस कलिकालमें रामनामके सिवा वैराग्य, योग, यज्ञ, तप और दानसे कुछ भी नहीं हो सकता॥ १॥ शास्त्रोंमें विधिनिषेधरूपसे कर्म बतलाये हैं, मेरी सम्मतिमें श्रीराम-नामका स्मरण करना ही सारी विधियोंमें राज-विधि है और श्रीरामनामको भूल जाना ही सबसे बढ़कर निषिद्ध कर्म है॥२॥ राम-नाम महामणि है और यह जगत्‌का जाल साँप है। जैसे मणि ले लेनेसे साँप व्याकुल होकर मर-सा जाता है, इसी प्रकार रामनामरूपी मणि ले लेनेसे दुःखरूप जगत्-जाल आप ही नष्टप्राय हो जायगा॥३॥ अरे ! यह राम-नाम कल्पवृक्ष है, जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलोंका देनेवाला है; इस बातको वेद, पुराण, पण्डित और शिवजी महाराज भी कहते हैं॥४॥ श्रीराम-नाम प्रेम और परमार्थ अर्थात् भक्ति-मुक्ति दोनोंका सार है और यह रामनाम इस तुलसीदासके तो जीवनका आधार ही है॥५॥

[६८]

राम राम राम जीह जौलौं तू न जपिहै।
तौलौं, तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तपिहै॥ १॥
सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै।
सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहै॥ २॥
जागत, बागत, सपने न सुख सोइहै।
जनम जनम, जुग जुग जग रोइहै॥ ३॥
छूटिबेके जतन बिसेष बाँधो जायगो।
ह्वैहै बिष भोजन जो सुधा-सानि खायगो॥ ४॥
तुलसी तिलोक, तिहूँ काल तोसे दीनको।
रामनाम ही की गति जैसे जल मीनको॥ ५॥

भावार्थ—हे जीव! जबतक तू जीभसे राम-नाम नहीं जपेगा, तबतक तू कहीं भी जा,—तीनों तापोंसे जलता ही रहेगा॥१॥ गंगाजीके तीरपर जानेपर भी तू पानी बिना तरसकर दुखी होगा, कल्पवृक्षके नीचे भी तुझे दरिद्रता सताती रहेगी॥२॥ जागते, सोते और सपनेमें तुझे कहीं भी सुख नहीं मिलेगा, इस संसारमें जन्म-जन्म और युग-युगमें तुझे रोना ही पड़ेगा॥३॥ जितने ही छूटनेके (दूसरे) उपाय करेगा (राम-नाम-विमुख होनेके कारण) उतना ही और कसकर बँधता जायगा; अमृतमय भोजन भी तेरे लिये विषके समान हो जायगा॥४॥ हे तुलसी! तुझ-से दीनको तीनों लोकों और तीनों कालोंमें एक श्रीरामनामका वैसे ही भरोसा है जैसे मछलीको जलका॥५॥

[६९]

सुमिरु सनेहसों तू नाम रामरायको ।
संबल निसंबलको, सखा असहायको ॥ १ ॥
भाग है अभागेहूको, गुन गुनहीनको ।
गाहक गरीबको, दयालु दानि दीनको ॥ २ ॥
कुल अकुलीनको, सुन्यो है बेद साखि है ।
पाँगुरेको हाथ-पाँय, आँधरेको आँखि है ॥ ३ ॥
माय-बाप भूखेको, अधार निराधारको ।
सेतु भव-सागरको, हेतु सुखसारको ॥ ४ ॥
पतितपावन राम-नाम सो न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू प्रेमपूर्वक राजराजेश्वर श्रीरामके नामका स्मरण कर, उनका नाम पाथेयहीन पथिकोंके लिये मार्गव्यय (कलेवा) है, जिसका कोई सहाय नहीं है उसका सहायक है ॥१॥ यह रामनाम भाग्यहीनका भाग्य और गुणहीनका गुण है, (राम-नाम जपनेवाले भाग्यहीन और गुणहीन भी परम भाग्यवान् और सर्वगुण-सम्पन्न हो जाते हैं)। यह गरीबोंका सम्मान करनेवाला ग्राहक और दीनोंके लिये दयालु दानी है ॥२॥ यह राम-नाम कुलहीनोंका उच्च कुल (रामनाम जपनेवाले चाण्डाल भी सबसे ऊँचे समझे जाते हैं) और लँगड़े-लूलोंके हाथ-पैर तथा अन्धोंकी आँखें है (रामनाम जपनेवाले संसार-मार्गको सहजहीमें

लाँघ जाते हैं) इस सिद्धान्तका वेद साक्षी है ॥३॥ यह राम-नाम मूर्खों-का मा-बाप और निराधारका आधार है। संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह पुल है और सब सुखोंके सार भगवत्-प्राप्तिका प्रधान कारण है ॥४॥ राम-नामके समान पतित-पावन दूसरा कौन है, जिसके स्मरण करनेसे तुलसीके समान ऊसर भी सुन्दर (भक्ति-प्रेमरूपी प्रचुर धानकी) उपजाऊ भूमि बन गया ॥५॥

[७०]

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै।
मन राम-नामसों सुभाय अनुरागिहै ॥ १ ॥
राम-नामको प्रभाउ जानि जूड़ी आगिहै।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै ॥ २ ॥
राम-नामसों बिराग, जोग, जप जागिहै।
बाम बिधि भाल हू न करम दाग दागिहै ॥ ३ ॥
राम-नाम मोदक सनेह सुधा पागिहै।
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥ ४ ॥
राम-नाम काम-तरु जोइ जोइ माँगिहै।
तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मन! यदि मेरे कहेपर चलकर, स्वभावसे ही श्रीराम-नामसे प्रेम करेगा तो तेरा सब प्रकारसे भला होगा ॥१॥ रामनामका प्रभाव कँपा देनेवाली सर्दीका नाश करनेके लिये अग्निके समान है,

मनुष्यकी बुद्धिको विचलित कर देनेवाला कलिकाल अपने (काम-क्रोधादि) सहायकों समेत रामनामके डरसे तुरन्त भाग जायगा ॥२॥ राम-नामके प्रभावसे वैराग्य, योग, जप, तप आदि आप ही जागृत हो उठेंगे;फिर वाम विधाता भी तेरे मस्तकपर बुरे कर्म-फल अंकित नहीं कर सकेगा, अर्थात् तेरे सारे कर्म क्षीण हो जायँगे ॥३॥ यदि तू राम-नामरूपी लड्डूको प्रेमरूपी अमृतमें पागकर खायगा तो तुझे सदाके लिये परम सन्तोष प्राप्त हो जायगा, फिर सुखके लिये घर-घर भटकना नहीं पड़ेगा ॥४॥ राम-नाम कल्पवृक्ष है, इससे हे तुलसीदास ! तू उससे स्वार्थ-परमार्थ जो कुछ भी माँगेगा, सो सभी मिल जायगा, किसी बातकी कमी नहीं रहेगी ॥५॥

[७१]

ऐसेहू साहबकी सेवा सों होत चोरु रे।
आपनी न बूझ, न कहै को राँडरोरु रे॥ १ ॥
मुनि-मन-अगम, सुगम माइ-बापु सों।
कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आपु सों॥ २ ॥
लोक-बेद-बिदित बड़ो न रघुनाथ सों।
सब दिन सब देस, सबहिके साथ सों॥ ३ ॥
स्वामी सरबग्यसों चलै न चोरी चारकी।
प्रीति पहिचानि यह रीति दरबारकी॥ ४ ॥
काय न कलेस-लेस, लेत मान मनकी।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जनकी॥ ५ ॥

रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे।
फलत सकल फल कामतरु-नाम रे॥ ६॥
बेंचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम रे।
सोऊ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजाराम रे॥ ७॥

भावार्थ—अरे! तू ऐसे स्वामीकी सेवासे भी अपना जी चुराता है। तुझमें न तो अपनी समझ है और न तुझे दूसरेके कहेका ही कुछ खयाल है, तू तो किसी भी कामका नहीं, पत्थरका रोड़ा है॥१॥ जो भगवान् श्रीराम मुनियोंके मनको भी अगम हैं, वही भक्तोंके लिये माता-पिताके समान सुगम हैं, वे कृपाके समुद्र हैं, स्वभावसे ही मित्र और अपने आप ही प्रेम करनेवाले हैं॥२॥ यह बात लोक और वेदमें प्रसिद्ध है कि श्रीरघुनाथजीसे बड़ा कोई भी नहीं है, वे सर्वदा, सर्वत्र और सभीके साथ रहते हैं॥३॥ (सच्चे मनसे श्रीरामसे प्रेमकर, क्योंकि) वे स्वामी सर्वज्ञ हैं, उनसे सेवककी चोरी छिपी नहीं रह सकती। वहाँ प्रेमकी ही पहचान होती है, यही उनके दरबारकी नीति है॥४॥ उनकी सेवामें शरीरको ज़रा-सा भी कष्ट नहीं पहुँचता, वे स्वामी मनके प्रेम और सेवाको ही मान लेते हैं। प्रेमसे स्मरण करते ही वे संकोचमें पड़ जाते हैं और सेवककी रुचि देखने लगते हैं, अर्थात् भक्तोंको मनमानी वस्तु देकर भी इसी संकोचमें रहते हैं कि हमने कुछ भी नहीं दिया॥५॥ वह जिसपर प्रसन्न होते हैं, उसके वशमें हो जाते हैं और जिसपर नाराज होते हैं उसे (देहके बन्धनसे छुड़ाकर) अपने परम धाममें भेज देते हैं। उनका नाम कल्पवृक्षके समान है, जिसमें सब प्रकारके फल फलते हैं॥६॥ जिसके

बेचनेपर एक खोटा पैसा नहीं मिलता और रखनेसे कुछ काम नहीं निकलता, ऐसे तुलसीदासको भी जिन्होंने निहाल कर दिया, ऐसे राजाधिराज श्रीरामजीका क्या कहना है ? ॥७॥

[७२]

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।
हौं तो साईं-द्रोही पै सेवक-हित साईं ॥ १ ॥
रामसों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ।
राम सो खरो है कौन, मोसो कौन खोटो ॥ २ ॥
लोक कहै रामको गुलाम हौं कहावौं ।
एतो बड़ो अपराध भौ न मन बावौं ॥ ३ ॥
पाथ माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचो ।
बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो ॥ ४ ॥

भावार्थ—श्रीरामजीने अपने भलेपनसे ही मेरा भला कर दिया। (मेरे कर्त्तव्यसे भला होनेकी क्या आशा थी ?) क्योंकि मैं तो स्वामीके साथ बुराई करनेवाला हूँ; परन्तु मेरे स्वामी श्रीराम सेवकके हितकारी हैं ॥१॥ श्रीरामजीसे तो बड़ा कौन है और मुझसे छोटा कौन है ? उनके समान खरा कौन है और मेरे समान खोटा कौन है ? ॥२॥ संसार कहता है कि मैं (तुलसीदास) रामजीका गुलाम हूँ, और मैं भी यह कहलवाता हूँ। (वास्तवमें रामका सेवक न होकर भी मैं इस पदवीको स्वीकार कर लेता हूँ) यह मेरा बड़ा भारी अपराध है, तो भी श्रीरामका मन मेरी तरफसे तनिक भी नहीं फिरा ॥३॥ हे तुलसी ! जैसे तिनका

बहुत नीच होनेपर भी जलके मस्तकपर चढ़ जाता है, (ऊपर उतराने लगता है) परन्तु जल उसे अपने द्वारा ही सींचकर पालापोसा हुआ समझकर डुबोता नहीं। (इसी प्रकार भगवान् श्रीरामजी समझते हैं) ॥४॥

[७३]

जागु, जागु, जीव जड़ ! जोहै जग-जामिनी ।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥ १ ॥
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति-संताप रे ।
बूड़्यो मृग-बारि खायो जेवरीको साँप रे ॥ २ ॥
कहैं बेद-बुध, तू तो बूझि मनमाहिं रे ।
दोष-दुख सपनेके जागे ही पै जाहिं रे ॥ ३ ॥
तुलसी जागेते जाय ताप तिहूँ ताय रे ।
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥ ४ ॥

भावार्थ—अरे मूर्ख जीव ! जाग जाग ! इस संसाररूपी रात्रिको देख ! शरीर और घर-कुटुम्बके प्रेमको ऐसा क्षणभंगुर समझ जैसे बादलोंके बीचकी बिजली, जो क्षणभर चमककर ही छिप जाती है ॥१॥ (जागनेके समय ही नहीं) तू सोते समय सपनेमें भी संसारके कष्ट ही सह रहा है, अरे ! तू भ्रमसे मृग-तृष्णाके जलमें डूबा जा रहा है और तुझे रस्सीका सर्प डस रहा है ॥२॥ वेद और विद्वान् पुकार-पुकारकर कह रहे हैं, तू अपने मनमें विचार कर समझ ले कि स्वप्नके सारे दुःख और दोष वास्तवमें जागनेपर ही नष्ट होते हैं ॥३॥ हे तुलसी ! संसारके तीनों ताप

अज्ञानरूपी निद्रासे जागनेपर ही नष्ट होते हैं और तभी श्रीराम-नाममें अहैतुकी स्वाभाविक विशुद्ध प्रीति उत्पन्न होती है ॥४॥

राग विभास

[७४]

जानकीसकी कृपा जगावती सुजान जीव,
जागि त्यागि मूढ़ताऽनुरागु श्रीहरे ।
करि बिचार, तजि बिकार, भजु उदार रामचंद्र,
भद्रसिंधु, दीनबंधु, बेद बदत रे ॥ १ ॥
मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो,
खोयो सो अनूप रूप सुपन जू परे ।
अब प्रभात प्रगट ग्यान-भानुके प्रकास,बास-
ना, सराग मोह-द्वेष निबिड़ तम टरे ॥ २ ॥
भागे मद-मान चोर भोर जानि जातुधान
काम-कोह-लोभ-छोभ-निकर अपडरे ।
देखत रघुबर-प्रताप, बीते संताप-पाप,
ताप त्रिबिध प्रेम-आप दूर ही करे ॥ ३ ॥
श्रवन सुनि गिरा गँभीर, जागे अति धीर बीर,
बर बिराग-तोष सकल संत आदरे ।
तुलसिदास प्रभु कृपालु, निरखि जीवजन बिहालु,
भंज्यो भव-जाल परम मंगलाचरे ॥ ४ ॥

भावार्थ–(श्रीरामनामके आश्रित) चतुर जीवोंको श्रीरामजीकी कृपा ही (अज्ञानरूपी निद्रासे) जगाती है, (अतएव रामनामके प्रभावसे) मूर्खताको त्यागकर जाग और श्रीहरिके साथ प्रेम कर। नित्यानित्य वस्तुका विचार करके, काम-क्रोधादि समस्त विकारोंको छोड़कर कल्याणके समुद्र, दीनबन्धु, उदार श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर, यही वेदकी आज्ञा है ॥१॥ मोहमयी अमावस्याकी लम्बी रात्रिमें सोते हुए तुझे बहुत समय बीत गया और माया-स्वप्नमें पड़कर तू अपने अनुपम आत्मस्वरूपको भूल गया। देख! अब सवेरा हो गया है और ज्ञानरूपी सूर्यका प्रकाश होते ही वासना, राग, मोह और द्वेषरूपी घोर अन्धकार दूर हो गया है ॥२॥ प्रातःकाल हुआ समझकर गर्व और मानरूपी चोर भागने लगे तथा काम, क्रोध, लोभ और क्षोभरूपी राक्षसोंके समूह अपने आप डर गये। श्रीरघुनाथजीके प्रचण्ड प्रतापको देखते ही पाप-सन्ताप नष्ट हो गये और तीन प्रकारके ताप श्रीरामजीके प्रेमरूपी जलने शान्त कर दिये ॥३॥ इस गम्भीर वाणीको कानोंसे सुनकर धीर-वीर सन्त मोह-निद्रासे जाग उठे और उन्होंने सुन्दर वैराग्य, सन्तोष आदिको आदरसे अपना लिया। हे तुलसीदास! कृपामय श्रीरामचन्द्रजीने भक्त-जीवोंको व्याकुल देखकर संसार-रूपी जाल तोड़ डाला और उन्हें परमानन्द प्रदान करने लगे ॥४॥

राग ललित

[७९]

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं, रावरेसों झूठ क्यों कहौंगो,

जानौ सब ही के मनकी।

करम-बचन-हिये, कहौं न कपट किये, ऐसी हठ जैसी गाँठि
पानी परे सनकी ॥ १ ॥

दूसरो, भरोसो नाहिं, बासना उपासनाकी, बासव, बिरंचि
सुर-नर-मुनिगनकी ।

स्वारथके साथी मेरे, हाथी स्वान लेवा देई, काहू तो न पीर
रघुबीर! दीन जनकी ॥ २ ॥

साँप-सभा साबर लबार भये, देव दिब्य, दुसह साँसति कीजै
आगे ही या तनकी ।

साँचे परौं, पाऊँ पान, पंचमें पन प्रमान, तुलसी चातक आस
राम स्यामघनकी ॥ ३ ॥

भावार्थ—बुरा-भला जो कुछ भी हूँ सो आपका हूँ । आपकी सौंह, मैं आपसे झूठ क्यों कहूँगा? आप तो सभीके मनकी बात जानते हैं। मैं कपटसे नहीं, परन्तु कर्म, वचन और हृदयसे कहता हूँ कि 'मैं आपका हूँ।' यह आपकी गुलामीका हठ इतना पक्का है जैसे पानीसे भीगे हुए सनकी गाँठ! ॥१॥ हे रामजी! न तो मुझे दूसरेका भरोसा है और न मुझे इन्द्र, ब्रह्मा अथवा अन्य देवता, मनुष्य और मुनियोंकी उपासना करनेकी ही इच्छा है आपके सिवा सभी स्वार्थके साथी हैं, जन्मभर हाथीकी तरह सेवा करनेपर कहीं कुत्ते-जैसा तुच्छ फल देते हैं। इनमेंसे किसीको भी दीनोंके दुःखमें ऐसी सहानुभूति नहीं है, जैसी आपको है ॥२॥ हे दिव्यदेव, 'मैं आपका गुलाम हूँ' यह बात यदि मैं झूठ कहता हूँ तो मेरे इस शरीरको अपने ही आगे

ऐसा असह्य कष्ट दीजिये जैसा साँपोंकी सभामें (साँपको वश करनेका मन्त्र नहीं जाननेवाले) झूठे सँपेरेको मिलता है अर्थात् उस पाखण्डीको साँप काट खाते हैं। और यदि मैं सच्चा (रामका गुलाम) सिद्ध हो जाऊँ तो हे नाथ! मुझे पंचोंके बीचमें सचाईका एक बीड़ा मिल जाय। क्योंकि मुझ तुलसीरूपी चातकको एक रामरूपी श्याम मेघकी ही आशा है ॥३॥

[७६]

रामको गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम,
काम यहै, नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी-लूगा नीके राखै, आगेहूकी बेद भाखै,
भलो ह्वैहै तेरो, ताते आनँद लहत हौं ॥ १ ॥
बाँध्यौ हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़,
सुनत दुसह हौं तौ साँसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-नाथ, कौसलपाल, कृपाल,
लीन्हों छीन दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥ २ ॥
बूझ्यौ ज्योंही, कह्यो, मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरो जू
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।
मींजो गुरु पीठ, अपनाइ गहि बाँह, बोलि
सेवक-सुखद, सदा बिरद बहत हौं ॥ ३ ॥
लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे
ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं।

तुलसी अकाज-काज राम ही के रीझे-खीझे,
प्रीतिकी प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मैं श्रीरामजीका गुलाम हूँ। लोग मुझे 'रामबोला' कहने लगे हैं। काम यही करता हूँ कि कभी-कभी दो चार बार राम-नाम कह लेता हूँ। इसीसे राम मुझे रोटी-कपड़ोंसे अच्छी तरह रखते हैं। यह तो इस लोककी बात हुई, आगे परलोकके लिये तो वेद पुकार ही रहे हैं कि राम-नामके प्रतापसे तेरा कल्याण हो जायगा। बस, इसीसे मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ ॥१॥ पहले मुझे जड़ कर्मोंने अहंकाररूपी कठिन बेड़ियोंसे बाँध लिया था। वह ऐसा भयानक कष्ट था, जो सुननेमें भी बड़ा असह्य है। मैंने दुखी हो पुकारकर कहा, 'हे आर्त्त और हे अनाथोंके नाथ! हे कोसलेश! हे कृपासिन्धु! मैं बड़ा कष्ट सह रहा हूँ।' (यह सुनते ही) श्रीरामने मुझ दीनको पापोंसे जलता हुआ देखकर तुरन्त कर्म-बन्धनसे छुड़ा लिया ॥२॥ ज्यों ही उन्होंने मुझसे पूछा 'तू कौन है?' त्यों ही मैंने कहा, 'हे नाथ! मैं आपका दास बनना चाहता हूँ। मेरे कहीं भी और कोई नहीं है, आपके चरणोंमें पड़ा हूँ।' इसपर भक्तसुखकारी परम गुरु श्रीरामजीने मेरी पीठ ठोंकी, बाँह पकड़कर मुझे अपनाया और आश्वासन दिया। तबसे मैं यह (कण्ठी, तिलक, माला, रामनाम-जप, अहिंसा, अभेद, नम्रता आदि) भगवान्‌का वैष्णवी बाना सदा धारण किये रहता हूँ ॥३॥ रामका गुलाम बना देखकर लोग मुझे नीच कहते हैं; परन्तु मुझे इसके लिये कुछ भी चिन्ता या सङ्कोच नहीं है, क्योंकि न तो मुझे किसीके साथ विवाह-सगाई करनी है और न मुझे जाति-पाँतिसे ही कुछ मतलब

है। तुलसीका बनना-बिगड़ना तो श्रीरामजीके रीझने-खीझनेमें ही है। परन्तु मुझे आपके प्रेमपर विश्वास है, इसीसे मैं मनमें सदा सानन्द रहता हूँ ॥४॥

[७७]

जानकी-जीवन, जग-जीवन, जगत-हित,
जगदीस, रघुनाथ, राजीवलोचन राम।
सरद-बिधु-बदन, सुखसील, श्रीसदन,
सहज सुंदर तनु, सोभा अगनित काम ॥ १ ॥
जग-सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित, सुमीत,
सबको दाहिनो, दीनबन्धु, काहूको न बाम।
आरतिहरन, सरनद, अतुलित दानि,
प्रनतपालु, कृपालु, पतित-पावन नाम ॥ २ ॥
सकल बिस्व-बंदित, सकल सुर-सेवित,
आगम-निगम कहैं रावरेई गुनग्राम।
इहै जानि तुलसी तिहारो जन भयो,
न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी, आप श्रीजानकीजीके जीवन, विश्वके प्राण, जगत्‌के हितकारी, जगत्‌के स्वामी, रघुकुलके नाथ और कमलके समान नेत्रवाले हैं। आपका मुखमण्डल शरद्-पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है, सुख प्रदान करना आपका स्वभाव है। लक्ष्मीजी सदा आपमें रमती हैं।

आपका शरीर स्वाभाविक ही परम सुन्दर है, जिसकी शोभा असंख्य कामदेवोंके समान है ॥१॥ आप जगत्‌के सुखकारी पिता, माता, गुरु, हितकारी, मित्र और सबके अनुकूल हैं। आप दीनोंके बन्धु हैं, परन्तु बुरा किसीका भी नहीं करते। आप विपत्तिके हरनेवाले, शरण देनेवाले, अतुलनीय दानी, शरणागत-रक्षक और कृपालु हैं। आपका राम-नाम पतितोंको पावन कर देता है ॥२॥ सारा विश्व आपकी वन्दना करता है, समस्त देवता आपकी सेवा करते हैं और सभी वेद-शास्त्र आपके ही गुण-समूहोंका गान करते हैं। यह सब जानकर तुलसीदास आपका गुलाम बना है, अब बतलाइये आप इसे अलग समझेंगे या गरीब गुलामोंकी नामावलीमें गिनेंगे ॥३॥

राग टोड़ी

[७८]

देव—

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जाहि दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥ १ ॥
सुर, नर, मुनि, असुर, नाग साहिब तौ घनेरे।
(पै) तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥ २ ॥
त्रिभुवन, तिहुँ काल बिदित, बेद बदति चारी।
आदि-अंत-मध्य राम ! साहबी तिहारी ॥ ३ ॥
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाव-सील-सुजसु जाचन जन आयो ॥ ४ ॥

पाहन-पसु, बिटप-बिहँग अपने करि लीन्हे।
महाराज दसरथके ! रंक राय कीन्हे ॥ ५ ॥
तू गरीबको निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु ! तुलसिदास मेरो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! दीनोंपर दया करनेवाला और उन्हें (परम-सुख) देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। मैं जिसको अपनी दीनता सुनाता हूँ, उसीको दीन पाता हूँ। (जो स्वयं दीन है वह दूसरेको क्या दे सकता है?) ॥१॥ देवता, मनुष्य, मुनि, राक्षस, नाग आदि मालिक तो बहुतेरे हैं, पर वहींतक हैं जबतक आपकी नजर तनिक भी टेढ़ी नहीं होती। आपकी नजर फिरते ही वे सब भी छोड़ देते हैं ॥२॥ तीनों लोकोंमें तीनों काल सर्वत्र यही प्रसिद्ध है और यही चारों वेद कह रहे हैं कि आदि, मध्य और अन्तमें, हे रामजी, सदा आपकी ही एक-सी प्रभुता है ॥३॥ जिस भिखमंगेने आपसे माँग लिया, वह फिर कभी भिखारी नहीं कहलाया। (वह तो परम नित्य सुखको प्राप्तकर सदाके लिये तृप्त और अकाम हो गया) आपके इसी स्वभाव-शीलका सुन्दर यश सुनकर यह दास आपसे भीख माँगने आया है ॥४॥ आपने पाषाण (अहल्या), पशु (बन्दर भालू), वृक्ष (यमलार्जुन) और पक्षी (जटायु, काकभुशुण्डि) तकको अपना लिया है। हे महाराज दशरथके पुत्र ! आपने नीच रंकोंको राजा बना दिया है ॥५॥ आप गरीबोंको निहाल करनेवाले हैं और मैं आपका गरीब गुलाम हूँ। हे कृपालु ! (इसी नाते) एक बार यही कह दीजिये कि 'तुलसीदास मेरा है' ॥६॥

[७९]

देव—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो ॥ २ ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मात, गुरु-सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥ ३ ॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! तू दीनोंपर दया करनेवाला है, तो मैं दीन हूँ। तू अतुल दानी है, तो मैं भिखमंगा हूँ। मैं प्रसिद्ध पापी हूँ तो तू पाप-पुञ्जों-का नाश करनेवाला है ॥१॥ तू अनाथोंका नाथ है, तो मुझ-जैसा अनाथ भी और कौन है ? मेरे समान कोई दुखी नहीं है और तेरे समान कोई दुःखोंको हरनेवाला नहीं है ॥२॥ तू ब्रह्म है, मैं जीव हूँ। तू स्वामी है, मैं सेवक हूँ। अधिक क्या, मेरा तो माता, पिता, गुरु, मित्र और सब प्रकारसे हितकारी तू ही है ॥३॥ मेरे तेरे अनेक नाते हैं; नाता तुझे जो अच्छा लगे, वही मान ले। परन्तु बात यह है कि हे कृपालु ! किसी भी तरह यह तुलसीदास तेरे चरणोंकी शरण पा जावे ॥४॥

[८०]

देव—

और काहि माँगिये, को माँगिबो निवारै।
अभिमतदातार कौन, दुख-दरिद्र दारै ॥ १ ॥

धरमधाम राम काम-कोटि-रूप रूरो ।
साहब सब बिधि सुजान, दान-खडग-सूरो ॥ २ ॥

सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै ।
कुसमय दसरथके ! दानि तैं गरीब निवाजै ॥ ३ ॥

सेवा बिनु गुनबिहीन दीनता सुनाये ।
जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये ॥ ४ ॥

तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै ।
रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! अब और किसके आगे हाथ फैलाऊँ ? ऐसा दूसरा कौन है जो सदाके लिये मेरा माँगना मिटा दे ? दूसरा ऐसा कौन मनोवाञ्छित फलोंका देनेवाला है जो मेरे दुःख-दारिद्र्यका नाश कर दे ? ॥१॥ हे श्रीराम ! तू धर्मका स्थान और करोड़ों कामदेवोंके सौन्दर्यसे भी सुन्दर है । सब प्रकारसे मेरा स्वामी है, मनकी अच्छी तरह जानता है और दानरूपी तलवारके चलानेमें बड़ा शूर है ॥२॥ अच्छे समयमें तो दो दिन सभीके दरवाजेपर नगारे बजते हैं, परन्तु हे दशरथ-नन्दन ! तू ऐसा दानी है कि बुरे समयमें भी तू गरीबोंको निहाल कर देता है ॥३॥ कुछ भी सेवा न करनेवाले, अच्छे गुणोंसे सर्वथा हीन जिन मनुष्योंने तेरे सामने अपना दुखड़ा सुनाया, उन सबको तैंने निहाल कर दिया, इसीसे वे आनन्दसे फूले फिरते हैं ॥४॥ अब तुलसी-दास भिखारीके मनकी जानकर (अर्थात् वह और कुछ भी नहीं चाहता,

केवल तेरा प्रेम चाहता है ऐसा जानकर) दान दे और वह यही कि हे श्रीरामचन्द्र ! तू चन्द्रमा है ही, मुझे बस, चकोर बना ले ॥५॥

[८१]

दीनबंधु, सुखसिंधु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध जुर, करत फिरत बौराई ॥ १ ॥
कबहुँ जोगरत, भोग-निरत सठ हठ बियोग-बस होई ।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥ २ ॥
कबहुँ दीन, मतिहीन, रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी ।
कबहुँ मूढ, पंडित बिडंबरत, कबहुँ धर्मरत ग्यानी ॥ ३ ॥
कबहुँ देव ! जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै ।
संसृति-संनिपात दारुन दुख बिनु हरि-कृपा न नासै ॥ ४ ॥
संजम, जप, तप, नेम, धरम, ब्रत, बहु भेषज-समुदाई ।
तुलसिदास भव-रोग रामपद-प्रेम-हीन नहिं जाई ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे परम दयालु श्रीरघुनाथजी ! आप दीनोंके बन्धु, सुखके समुद्र और कृपाकी खानि हैं। हे नाथ ! सुनिये, मेरा मन संसारके त्रिविध तापोंसे जल रहा है अथवा उसे (काम-क्रोध-लोभरूपी) त्रिदोष ज्वर हो गया है और इसीसे वह पागलकी तरह बकता फिरता है ॥१॥ कभी वह योगाभ्यास करता है तो कभी वह दुष्ट भोगोंमें फँस जाता है। कभी हठपूर्वक वियोगके वश हो जाता है तो कभी मोहके वश होकर नाना प्रकारके द्रोह करता है और कभी बड़ा दयालु बन जाता है ॥२॥

कभी दीन, बुद्धिहीन, बड़ा ही कंगाल बन जाता है, तो कभी घमण्डी राजा बन जाता है। कभी मूर्ख बनता है, तो कभी पण्डित बन जाता है। कभी पाखण्डी बनता है और कभी धर्मपरायण ज्ञानी बन जाता है ॥३॥ हे देव! कभी उसे सारा जगत् धनमय दीखता है, कभी शत्रुमय और कभी स्त्रीमय दीखता है अर्थात् वह कभी लोभमें, कभी क्रोधमें और कभी काममें फँसा रहता है। यह संसाररूपी सन्निपात-ज्वरका दारुण दुःख बिना भगवत्-कृपाके कभी नष्ट नहीं हो सकता ॥४॥ यद्यपि संयम, जप, तप, नियम, धर्म, व्रत आदि अनेक ओषधियाँ हैं; परन्तु तुलसीदासका संसार-रूपी रोग श्रीरामजीके चरणोंके प्रेम बिना दूर नहीं हो सकता ॥५॥

[८२]

मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ॥ १ ॥
नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन बिषय सँग लागे।
हृदय मलिन बासना-मान-मद, जीव सहज सुख त्यागे ॥ २ ॥
परनिंदा सुनि श्रवन मलिन भे, बचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराये ॥ ३ ॥
तुलसिदास ब्रत-दान, ग्यान-तप, सुद्धिहेतु श्रुति गावै।
राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥ ४ ॥

भावार्थ—मोहसे उत्पन्न जो अनेक प्रकारका (पापरूपी) मल लगा हुआ है, वह करोड़ों उपायोंसे भी नहीं छूटता। अनेक जन्मोंसे यह मन

पापमें लगे रहनेका अभ्यासी हो रहा है, इसलिये यह मल अधिकाधिक लिपटता ही चला जाता है ॥१॥ पर-स्त्रियोंकी ओर देखनेसे नेत्र मलिन हो गये हैं, विषयोंका संग करनेसे मन मलिन हो गया है और वासना, अहंकार तथा गर्वसे हृदय मलिन हो गया है तथा सुखरूप स्वस्वरूपके त्यागसे जीव मलिन हो गया है ॥२॥ परनिन्दा सुनते-सुनते कान और दूसरोंका दोष कहते-कहते वचन मलिन हो गये हैं। अपने नाथ श्रीराम-जीके चरणोंको भूल जानेसे ही यह मलका भार सब प्रकारसे मेरे पीछे लगा फिरता है ॥३॥ इस पापके धुलनेके लिये वेद तो व्रत, दान, ज्ञान, तप आदि अनेक उपाय बतलाता है; परन्तु हे तुलसीदास! श्रीरामके चरणोंके प्रेमरूपी जल बिना इस पापरूपी मलका समूल नाश नहीं हो सकता ॥४॥

राग जैतश्री

[८३]

कछु ह्वै न आई गयो जनम जाय ।
अति दुरलभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन-बचन-काय ॥ १ ॥
लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुने चाय ।
जोबन-जुर जुबती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥ २ ॥
मध्य बयस धन हेतु गँवाई, कृषी बनिज नाना उपाय ।
राम-बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसिबासर तयौ तिहूँ ताय ॥ ३ ॥
सेये नहिं सीतापति-सेवक, साधु सुमति भलि भगति भाय ।
सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किये जे चरित रघुबंसराय ॥ ४ ॥

अब सोचत मनि बिनु भुअंग ज्यों, बिकल अंग दले जरा घाय।
सिर धुनि-धुनि पछितात मींजि कर,कोउ न मीत हित दुसह दाय॥५॥
जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयौ, ते लजात होत ठाढ़े ठाँय।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं, तरयौ गयँद जाके एक नाँय॥६॥

भावार्थ–हाय ! मुझसे कुछ भी नहीं बन पड़ा और जन्म यों ही बीता जा रहा है। बड़े दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर निष्कपट-भावसे तन-मन-वचनसे कभी श्रीरामका भजन नहीं किया॥१॥ लड़कपन तो अज्ञानमें बीता, उस समय चित्तमें चौगुनी चञ्चलता और (खेलने-खानेकी) प्रसन्नता थी। जवानीरूपी ज्वर चढ़नेपर स्त्रीरूपी कुपथ्य कर लिया, जिससे सारे शरीरमें कामरूपी वायु भरकर सन्निपात हो गया॥२॥ (जवानी ढलनेपर) बीचकी अवस्था खेती, व्यापार और अनेक उपायोंसे धन कमानेमें खोयी; परन्तु श्रीरामसे विमुख होनेके कारण कभी स्वप्नमें भी सुख नहीं मिला, दिन-रात संसारके तीनों तापोंसे जलता ही रहा॥३॥ न तो कभी श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंकी और शुद्ध बुद्धिवाले सन्तोंकी ही भक्तिभावसे भलीभाँति सेवा की, न श्रीरघुनाथजीकी सुन्दर लीला-कथाओंको रोमांच होकर कभी सुना और न कभी प्रसन्न मनसे कहा॥४॥ अब जब कि बुढ़ापेने आकर सारे अंगोंको व्याकुल कर तोड़ दिया है, तब मणिहीन साँपके समान चिन्ता करता हूँ, सिर धुन-धुनकर और हाथ मल-मलकर पछताता हूँ, पर इस समय इस दुःसह दावानलको बुझानेके लिये कोई भी हितकारी मित्र दृष्टि नहीं पड़ता॥५॥ जिनके लिये (अनेक पाप कमाकर) लोक-परलोक बिगाड़ दिया था, वे आज पास खड़े होने-

मैं भी शर्माते हैं। हे तुलसी ! तू अब भी उन श्रीरघुनाथजीका स्मरण कर, जिनका एक बार नाम लेनेसे ही गजराज (संसारसागरसे) तर गया था ॥६॥

[८४]

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ।
भयो है सुगम तोको अमर-अगम तन, समुझिधौं कत खोवत अकाथ ॥१॥
सुख-साधन हरि-बिमुख बृथा जैसे श्रम फल घृतहित मथे पाथ।
यह बिचारि, तजि कुपथ-कुसंगति, चलि सुपंथ मिलि भले साथ ॥२॥
देखु राम-सेवक, सुनि कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ।
हृदय आनु धनुबान-पानि प्रभु, लसे मुनिपट, कटि कसे भाथ ॥३॥
तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब, नाउ रामपद-कमल माथ।
जनि डरपहि तोसे अनेक खल, अपनाये जानकीनाथ ॥४॥

भावार्थ—हे मन ! तुझे हाथ मल-मलकर पछताना पड़ेगा, क्योंकि जो मनुष्य-शरीर देवताओंको दुर्लभ है, वही तुझको सहजमें मिल गया है, पर उसे तू व्यर्थ खो रहा है। तनिक विचार तो कर ॥१॥ हरिसे विमुख होने-पर सुखका साधन वैसे ही व्यर्थ होता है जैसे घी निकालनेके लिये पानीके मथनेका परिश्रम व्यर्थ जाता है। (सुख हरिमें है, उसको भूलकर सुख-रहित विषयोंकी सेवासे सुख कभी नहीं मिल सकता) यह विचारकर बुरा मार्ग और बुरोंकी संगति छोड़ दे तथा सन्मार्गपर चलता हुआ सज्जनोंका संग कर ॥२॥ श्रीराम-भक्तोंके दर्शन कर, उनसे हरि-कथा सुन,

रामनामकी रट और रामकी गुण-गाथाओंका गान कर और हाथमें धनुष-बाण लिये, मुनियोंके वस्त्र पहने और कमरमें तरकस कसे हुए प्रभु श्रीरामजीका हृदयमें ध्यान कर ॥३॥ हे तुलसीदास ! संसारके सारे प्रपञ्चोंको छोड़कर श्रीरामजीके चरण-कमलोंमें मस्तक नवा। डर मत, तेरे-जैसे अनेक नीचोंको श्रीजानकीनाथ रामजीने अपना लिया है ॥४॥

राग धनाश्री

[८५]

मन ! माधवको नेकु निहारहि ।
सुनु सठ, सदा रंकके धन ज्यों, छिन छिन प्रभुहिं सँभारहि ॥१॥
सोभा-सील-ग्यान-गुन-मंदिर, सुंदर परम उदारहि ।
रंजन संत, अखिल अघ-गंजन, भंजन बिषय-बिकारहि ॥२॥
जो बिनु जोग-जग्य-ब्रत-संजम गयो चहै भव-पारहि ।
तौ जनि तुलसिदास निसि-बासर हरि-पद-कमल बिसारहि ॥३॥

भावार्थ—हे मन ! माधवकी ओर तनिक तो देख ! अरे दुष्ट ! सुन, जैसे कंगाल क्षण-क्षणमें अपना धन सँभालता है, वैसे ही तू अपने स्वामी श्रीरामजीका स्मरण किया कर ॥१॥ वे श्रीराम शोभा, शील, ज्ञान और सद्गुणोंके स्थान हैं। वे सुन्दर और बड़े दानी हैं। सन्तोंको प्रसन्न करनेवाले, समस्त पापोंके नाश करनेवाले और विषयोंके विकारको मिटानेवाले हैं ॥२॥ यदि तू बिना ही योग, यज्ञ, व्रत और संयमके संसार-सागरसे पार जाना चाहता है तो हे तुलसीदास ! रात-दिनमें श्रीहरिके चरणकमलोंको कभी मत भूल ॥३॥

[८६]

इहै कह्यो सुत ! बेद चहूँ ।
श्रीरघुबीर-चरन-चिंतन तजि नाहिंन ठौर कहूँ ॥१॥
जाके चरन बिरंचि सेइ सिधि पाई संकरहूँ ।
सुक-सनकादि मुकुत बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ ॥२॥
जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ ।
हरि-पद-पंकज पाइ अचल भइ, करम-बचन-मनहूँ ॥३॥
करुनासिंधु, भगत-चिंतामनि, सोभा सेवतहूँ ।
और सकल सुर, असुर-ईस सब खाये उरग छहूँ ॥४॥
सुरुचि कह्यो सोइ सत्य तात अति परुष बचन जबहूँ ।
तुलसिदास रघुनाथ-बिमुख नहिं मिटइ बिपति कबहूँ ॥५॥

भावार्थ—भक्त ध्रुवजीकी माता सुनीतिने पुत्रसे कहा था—हे पुत्र ! चारों वेदोंने यही कहा है कि श्रीरघुनाथजीके चरणोंके चिन्तनको छोड़कर जीवको और कहीं भी ठिकाना नहीं है ॥१॥ जिनके चरणोंका चिन्तन करके ब्रह्मा और शिवजीने भी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, (जिनकी सेवासे) आज शुक-सनकादि जीवन्मुक्त हुए बिचर रहे और अब भी जिनका स्मरण कर रहे हैं ॥२॥ यद्यपि लक्ष्मीजी बड़ी ही चञ्चला हैं, कहीं भी निरन्तर स्थिर नहीं रहतीं, परन्तु वे भी भगवान्‌के चरण-कमलोंको पाकर मन, वचन, कर्मसे अचल हो गयी हैं अर्थात् निरन्तर मन, वाणी, शरीरसे सेवामें ही लगी रहती हैं ॥३॥ वे करुणाके समुद्र और भक्तों-

के लिये चिन्तामणिस्वरूप हैं, उनकी सेवा करनेसे ही सारी शोभा है। और जितने देवता, दैत्योंके स्वामी हैं, सो सभी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य—इन छः सर्पोंसे डसे हुए हैं ॥४॥ हे पुत्र ! (तेरी विमाता) सुरुचिने जो कुछ कहा है सो सुननेमें अत्यन्त कठोर होनेपर भी सत्य है। हे तुलसीदास ! श्रीरघुनाथजीसे विमुख रहनेसे विपत्तियोंका नाश कभी नहीं होता ॥५॥

[८७]

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ ! यह समुझ सबेरो ॥१॥
बिछुरे ससि-रबि मन-नैननितें, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥२॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥३॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति संदेहु निबेरो ।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहु रामको चेरो ॥४॥

भावार्थ—हे मूर्ख मन ! मेरी सीख सुन, हरिके चरणोंसे विमुख होकर किसीने भी सुख नहीं पाया। हे दुष्ट ! इस बातको खूब समझ ले, अभी तो सवेरा ही है (अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, शरण जानेसे काम बन सकता है) ॥१॥ देख ! यह सूर्य और चन्द्रमा जबसे भगवान्के नेत्र और मनसे अलग हुए तभीसे बड़ा दुःख भोग रहे हैं। रात-दिन आकाशमें चक्कर

लगाते बिताने पड़ते हैं, वहाँ भी बलवान् शत्रु राहु पीछा किये रहता है ॥२॥ यद्यपि गंगाजी देवनदी कहाती हैं और बड़ी पवित्र हैं, तीनों लोकोंमें उनका बड़ा यश भी फैल रहा है, परन्तु भगवच्चरणोंसे अलग होनेपर तबसे आजतक उनका भी नित्य बहना कभी बन्द नहीं होता ॥३॥ श्रीरघुनाथजीके भजन विना विपत्तियोंका नाश नहीं होता। इस सिद्धान्तका सन्देह वेदोंने नाश कर दिया है। इसलिये हे तुलसीदास ! सब प्रकारकी आशा छोड़कर श्रीरामका दास बन जा ॥४॥

[८८]

कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो ।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो ॥ १ ॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो ।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो ॥ २ ॥
जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो ।
होइ न बिमल बिबेक-नीर-बिनु, बेद पुरान बखान्यो ॥ ३ ॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरषि हृदै नहिं आन्यो ।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो ॥ ४ ॥

भावार्थ—अरे मन ! तूने कभी विश्राम नहीं लिया। अपना सहज सुख-स्वरूप भूलकर दिन-रात इन्द्रियोंका खैंचा हुआ जहाँ-तहाँ विषयोंमें भटक रहा है ॥१॥ यद्यपि विषयोंके संगसे तूने असह्य संकट सहे हैं और तू कठिन जालमें फँस गया है तो भी हे मूर्ख ! तू उन्हें छोड़ता नहीं।

ममतावश सब कुछ समझकर भी बेसमझ हो रहा है ॥२॥ अनेक जन्मोंमें नाना प्रकारके कर्म करके तू उन्हींके कीचड़में सन गया है, हे चित्त ! विवेकरूपी जल प्राप्त किये बिना यह कीचड़ कभी साफ नहीं हो सकता। ऐसा वेद-पुराण कहते हैं ॥३॥ अपना कल्याण तो परम प्रभु, परम पिता और परम गुरुरूप हरिसे है, पर तूने उनको हुलसकर हृदयमें कभी धारण नहीं किया, (दिन-रात विषयोंके बटोरनेमें ही लगा रहा) हे तुलसीदास ! ऐसे तालाबसे कब प्यास मिट सकती है, जिसके खोदनेमें ही सारा जीवन बीत गया ॥४॥

[८६]

मेरो मन हरिजू ! हठ न तजै ।
निसिदिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाउ निजै ॥ १ ॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ॥ २ ॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यौं जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ॥ ३ ॥
हौं हार्यौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै ।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे श्रीहरि ! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता। हे नाथ ! मैं दिन-रात इसे अनेक प्रकारसे समझाता हूँ, पर यह अपने ही मनकी करता है ॥१॥ जैसे युवती स्त्री सन्तान जननेके समय अत्यन्त असह्य कष्टका

अनुभव करती है (उस समय सोचती है कि अब पतिके पास नहीं जाऊँगी) परन्तु वह मूर्खा सारी वेदनाको भूलकर पुनः उसी दुःख देने-वाले पतिका सेवन करती है ॥२॥ जैसे लालची कुत्ता जहाँ जाता है वहीं उसके सिर जूते पड़ते हैं तो भी वह नीच फिर उसी रास्ते भटकता है, मूर्खको जरा भी लज्जा नहीं आती ॥३॥ (ऐसी ही दशा मेरे इस मनकी है, विषयोंमें कष्ट पानेपर भी यह उन्हींकी ओर दौड़ा जाता है) मैं नाना प्रकार उपाय करते-करते थक गया। परन्तु यह मन अत्यन्त बलवान् और अजेय है। हे तुलसीदास! यह तो तभी वश हो सकता है, जब कि प्रेरणा करनेवाले भगवान् स्वयं ही इसे रोकें ॥४॥

[९०]

ऐसी मूढ़ता या मनकी।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकनकी ॥ १ ॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घनकी।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचनकी ॥ २ ॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आननकी ॥ ३ ॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि! जानत हौ गति जनकी।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मनकी ऐसी मूर्खता है कि यह श्रीराम-भक्तिरूपी गंगा-जीको छोड़कर ओसकी बूँदोंसे तृप्त होनेकी आशा करता है ॥१॥ जैसे

प्यासा पपीहा धुएँका गोट देखकर उसे मेघ समझ लेता है, परन्तु वहाँ (जानेपर) न तो उसे शीतलता मिलती है, और न जल मिलता है, धुएँसे आँखें और फूट जाती हैं। (यही दशा इस मनकी है) ॥२॥ जैसे मूर्ख बाज काँचकी फर्शमें अपने ही शरीरकी परछाईं देखकर उसपर चोंच मारनेसे वह टूट जायगी इस बातको भूखके मारे भूलकर जल्दीसे उसपर टूट पड़ता है (वैसे ही यह मेरा मन भी विषयोंपर टूटा पड़ता है) ॥३॥ हे कृपाके भण्डार ! इस कुचालका मैं कहाँतक वर्णन करूँ ? आप तो दासोंकी दशा जानते ही हैं। हे स्वामिन् ! तुलसी-दासका दारुण दुःख हर लीजिये और अपने (शरणागत-वत्सलतारूपी) प्रणकी रक्षा कीजिये ॥४॥

[९१]

नाचत ही निसि-दिवस मरयो ।
तब ही ते न भयो हरि थिर जबतें जिव नाम धरयो ॥ १ ॥
बहु बासना बिबिध कंचुकि भूषन लोभादि भरयो ।
चर अरु अचर गगन जल थलमें, कौन न स्वाँग करयो ॥ २ ॥
देव-दनुज, मुनि, नाग, मनुज नहिं जाँचत कोउ उबरयो ।
मेरो दुसह दरिद्र, दोष, दुख काहू तौ न हरयो ॥ ३ ॥
थके नयन, पद, पानि, सुमति, बल, संग सकल बिछुरयो ।
अब रघुनाथ सरन आयो जन, भव-भय बिकल डरयो ॥ ४ ॥

जेहि गुनतें बस होहु रीझि करि, सो मोहि सब बिसरयो।
तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीजै रहन परयो॥५॥

भावार्थ—रात-दिन नाचते-नाचते ही मरा! हे हरे! जबसे आपने 'जीव' नाम रक्खा, तबसे यह कभी स्थिर नहीं हुआ॥१॥ (इस माया-रूपी नाचमें) नाना प्रकारकी वासनारूपी चोलियाँ तथा लोभ(मोह)आदि अनेक गहने पहनकर, जड़-चेतन और जल-स्थल-आकाशमें ऐसा कौन-सा स्वाँग है जो मैंने धारण नहीं किया!॥२॥ देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुष्य आदि ऐसा कोई भी नहीं बचा जिसके आगे मैंने हाथ न फैलाया हो? परन्तु इनमेंसे किसीने मेरे दारुण दारिद्र्य, दोष और दुःखोंको दूर नहीं किया॥३॥ मेरे नेत्र, पैर, हाथ, सुन्दर बुद्धि और बल सभी थक गये हैं। सारा संग मुझसे बिछुड़ गया है। अब तो हे रघुनाथजी! यह संसारके भयसे व्याकुल और भीत दास आपकी शरण आया है॥४॥ हे नाथ! जिन गुणोंपर रीझकर आप प्रसन्न होते हैं, वह सब तो मैं भूल चुका हूँ। अब हे प्रभो! इस तुलसीदासको अपने दरवाजेपर पड़ा रहने दीजिये॥५॥

[९२]

माधवजू, मोसम मंद न कोऊ।
जद्यपि मीन-पतंग हीनमति, मोहि नहिं पूजैं ओऊ॥१॥
रुचिर रूप-आहार-बस्य उन्ह, पावक लोह न जान्यो।
देखत बिपति बिषय न तजत हौं, ताते अधिक अयान्यो॥२॥

महामोह-सरिता अपार महँ, संतत फिरत बह्यो।
श्रीहरि-चरन-कमल-नौका तजि, फिरि फिरि फेन गह्यो ॥३॥
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यौं भरि मुख पकरै।
निज तालूगत रुधिर पान करि, मन संतोष धरै ॥४॥
परम कठिन भव-ब्याल-ग्रसित हौं त्रसित भयो अति भारी।
चाहत अभय भेक सरनागत, खगपति-नाथ बिसारी ॥५॥
जलचर-बृंद जाल-अंतरगत होत सिमिटि इक पासा।
एकहि एक खात लालच-बस, नहिं देखत निज नासा ॥६॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग, गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै ॥७॥

भावार्थ—हे माधव! मेरे समान मूर्ख कोई भी नहीं है। यद्यपि मछली और पतंग हीनबुद्धि हैं, परन्तु वे भी मेरी बराबरी नहीं कर सकते ॥१॥ पतंगने सुन्दर रूपके वश हो दीपकको अग्नि नहीं समझा और मछलीने आहारके वश हो लोहेको काँटा नहीं जाना, परन्तु मैं तो विषयोंको प्रत्यक्ष विपत्तिरूप देखकर भी नहीं छोड़ता हूँ, अतएव मैं उनसे अधिक मूर्ख हूँ ॥२॥ महामोहरूपी अपार नदीमें निरन्तर बहता फिरता हूँ। (इससे पार होनेके लिये) श्रीहरिके चरण-कमलरूपी नौकाको तजकर बार-बार फेनोंको (अर्थात् क्षणभंगुर भोगोंको) पकड़ता हूँ ॥३॥ जैसे बहुत भूखा कुत्ता पुरानी सूखी हड्डीको मुँहमें भरकर पकड़ता है और अपने तालूमें रगड़ लगनेसे जो खून निकलता

है, उसे चाटकर बड़ा सन्तुष्ट होता है (यह नहीं समझता कि यह रक्त तो मेरे ही शरीरका है। यही हाल मेरा है) ॥४॥ मैं संसाररूपी परम कठिन सर्पके डसनेसे अत्यन्त ही भयभीत हो रहा हूँ, परन्तु (मूर्खता यह है कि उससे बचनेके लिये) गरुड़गामी भगवान्‌की शरणागत न होकर (विषयरूपी) मेंढककी शरणसे अभय चाहता हूँ ॥५॥ जैसे जलमें रहनेवाले जीवोंके समूह सिमट-सिमटकर जालमें इकट्ठे हो जाते हैं और लोभवश एक दूसरेको खाते हैं, अपना भावी नाश नहीं देखते (वैसी ही दशा मेरी है) ॥६॥ यदि सरस्वतीजी अनेक युगोंतक मेरे पापोंको गिनती रहें, तब भी उनका अन्त नहीं पा सकतीं। मेरे मनमें तो यही भरोसा है कि मेरे नाथ पतित-पावन हैं (मुझ पतितको भी अवश्य अपनावेंगे) ॥७॥

[९३]

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम।
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख, धावत हौ तजि धाम ॥१॥
नागराज निज बल बिचारि हिय, हारि चरन चित दीन्हों।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि, चलत बिलंब न कीन्हों ॥२॥
दितिसुत-त्रास-त्रसित निसिदिन प्रहलाद-प्रतिग्या राखी।
अतुलित बल मृगराज-मनुज-तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी ॥३॥
भूप-सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु, राखु कह्यो नर-नारी।
बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि, भूरि कृपा दनुजारी ॥४॥

एक एक रिपुते त्रासित जन, तुम राखे रघुबीर।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भव-पीर ॥५॥
लोभ-ग्राह, दनुजेस-क्रोध कुरुराज-बंधु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार ॥६॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! आपने उस कृपाको कहाँ भुला दिया, जिसके कारण दीनोंके दुःखकी करुण-ध्वनि कानोंमें पड़ते ही आप अपना धाम छोड़कर दौड़ा करते हैं? ॥१॥ जब गजेन्द्रने अपने बलकी ओर देखकर और हृदयमें हार मानकर आपके चरणोंमें चित्त लगाया, तब आप उसकी आर्त्तपुकार सुनते ही गरुड़को छोड़कर तुरन्त वहाँ पहुँचे, तनिक-सी भी देर नहीं की ॥२॥ हिरण्यकशिपुसे रात-दिन भयभीत रहनेवाले प्रह्लादकी प्रतिज्ञा आपने रक्खी, महान् बलवान् सिंह और मनुष्यका-सा (नृसिंह) शरीर धारणकर उस दैत्यको मार डाला, वेद इस बातका साक्षी है ॥३॥ 'नर' के अवतार अर्जुनकी पत्नी द्रौपदीने जब राजसभामें (अपनी लज्जा जाते देखकर) सब राजाओंके सामने पुकारकर कहा कि 'हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिये' तब हे दैत्यशत्रु! आपने वहाँ (द्रौपदीकी लाज बचानेको) वस्त्रोंके ढेर लगाकर तथा शत्रुओंका सारा घमण्ड चूर्ण कर बड़ी कृपा की ॥४॥ हे रघुनाथजी! आपने इन सब भक्तोंको एक-एक शत्रुके द्वारा सताये जानेपर ही बचा लिया था। पर यहाँ मुझे तो बहुत-से शत्रु असह्य कष्ट दे रहे हैं। मेरी यह भव-पीड़ा आप क्यों नहीं दूर करते? ॥५॥ लोभरूपी मगर, क्रोधरूपी दैत्यराज हिरण्यकशिपु दुष्ट कामदेवरूपी दुर्योधनका भाई दुःशासन, ये सभी मुझ तुलसी-

दासको दारुण दुःख दे रहे हैं। हे उदार रामचन्द्रजी! मेरे इन शत्रुओंका नाश कीजिये ॥६॥

[९४]

काहे ते हरि मोहिं बिसारो।
जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो ॥१॥
पतित-पुनीत, दीनहित, असरन-सरन कहत श्रुति चारो।
हौं नहिं अधम, सभीत, दीन? किधौं बेदन मृषा पुकारो? ॥२॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ, तहँ हौंहूँ बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान! परसत पनवारो फारो ॥३॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो, तुव निदेस तें न्यारो।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुन तेहि भजते तजि गारो ॥४॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम, करहु प्रभाउ तुम्हारो।
यह सामरथ अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो ॥५॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु, नामहु पाप न जारो ॥६॥

भावार्थ—हे हरे! आपने मुझे क्यों भुला दिया? हे नाथ! आप अपनी महिमा और मेरे पाप, इन दोनोंको ही जानते हैं, तो भी मुझे क्यों नहीं सँभालते ॥१॥ आप पतितोंको पवित्र करनेवाले, दीनोंके हितकारी और अशरणको शरण देनेवाले हैं, चारों वेद ऐसा कहते हैं। तो क्या मैं नीच, भयभीत या दीन नहीं हूँ? अथवा क्या वेदोंकी यह घोषणा ही झूठी

है ? ॥२॥ (पहले तो) मुझे आपने पक्षी (जटायु गृध्र), गणिका (जीवन्ती), हाथी और व्याध (वाल्मीकि) की पंक्तिमें बैठा लिया। यानी पापी स्वीकार कर लिया। अब हे कृपानिधान! आप किसकी शर्म करके मेरी परसी हुई पत्तल फाड़ रहे हैं ॥३॥ यदि कलिकाल आपसे अधिक बलवान् होता और आपकी आज्ञा न मानता होता, तो हे हरे! हम आपका भरोसा और गुणगान छोड़कर तथा उसपर क्रोध करने और दोष लगानेका झंझट त्यागकर उसीका भजन करते ॥४॥ (परन्तु) आप तो मामूली मच्छरको ब्रह्मा और ब्रह्माको मच्छरके समान बना सकते हैं, ऐसा आपका प्रताप है। यह सामर्थ्य होते हुए भी आप मुझे त्याग रहे हैं, तब हे नाथ! मेरा फिर वश ही क्या है ? ॥५॥ यद्यपि मैं सब प्रकारसे हार चुका हूँ और मुझे नरकमें गिरनेका भी भय नहीं है, परन्तु मुझ तुलसीदासको यही सबसे बड़ा दुःख है कि प्रभुके नामने भी मेरे पापोंको भस्म नहीं किया ॥६॥

[९५]

तऊ न मेरे अघ-अवगुन गनिहैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि, इहै ख्याल उर अनिहैं ॥१॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिनके, असमंजस जिय जनिहैं।
देखि खलल अधिकार प्रभूसों (मेरी) भूरि भलाई भनिहैं ॥२॥
हँसि करिहैं परतीति भगतकी, भगत-सिरोमनि मनिहैं।
ज्यों त्यों तुलसिदास कोसलपति अपनायेहि पर बनिहैं ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! यदि यमराज सब कामकाज छोड़कर केवल मेरे ही पापों और दोषोंके हिसाब-किताबका खयाल करने लगेंगे, तब भी उनको गिन नहीं सकेंगे (क्योंकि मेरे पापोंकी कोई सीमा नहीं है)॥१॥ (और जब वह मेरे हिसाबमें ही लग जायँगे, तब उन्हें इधर उलझे हुए समझकर) पापियोंके दल-के-दल छूटकर भाग जायँगे इससे उनके मनमें बड़ी चिन्ता होगी। (मेरे कारणसे) अपने अधिकारमें बाधा पहुँचते देखकर (भगवान्‌के दरबारमें अपनेको निर्दोष साबित करनेके लिये) वह आपके सामने मेरी बहुत बड़ाई कर देंगे (कहेंगे कि तुलसीदास आपका भक्त है, इसने कोई पाप नहीं किया, आपके भजनके प्रतापसे इसने दूसरे पापियोंको भी पापके बन्धनसे छुड़ा दिया) ॥२॥ तब आप हँसकर मुझ भक्तपर विश्वास कर लेंगे और मुझे भक्तोंमें शिरोमणि मान लेंगे। बात यह है कि हे कोसलेश! जैसे-तैसे आपको मुझे अपनाना ही पड़ेगा ॥३॥

[९६]

जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जनके।
तौ क्यों कटत सुकृत-नखते मो पै, बिपुल बृंद अघ-बनके ॥१॥
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत, करम बचन अरु मनके।
हारहिं अमित सेष सारद श्रुति, गिनत एक-एक छनके ॥२॥
जो चित चढ़ै नाम-महिमा निज, गुनगन पावन पनके।
तो तुलसिहिं तारिहौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जमगनके ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ! यदि आप इस दासके दोषोंपर ध्यान देंगे, तब तो पुण्यरूपी नखसे पापरूपी बड़े-बड़े वनोंके समूह मुझसे कैसे कटेंगे?

(मेरे जरा-से पुण्यसे भारी-भारी पाप कैसे दूर होंगे ?) ॥१॥ मन, वचन और शरीरसे किये हुए मेरे पापोंका वर्णन भी कौन कर सकता है ? एक-एक क्षणके पापोंका हिसाब जोड़नेमें अनेक शेष, सरस्वती और वेद हार जायँगे ॥२॥ (मेरे पुण्योंके भरोसे तो पापोंसे छूटकर उद्धार होना असम्भव है) यदि आपके मनमें अपने नामकी महिमा और पतितोंको पावन करनेवाले अपने गुणोंका स्मरण आ जाय तो आप इस तुलसीदासको यमदूतोंके दाँत तोड़कर संसार-सागरसे अवश्य वैसे ही तार देंगे, जैसे अजामिल ब्राह्मणको तार दिया था ॥३॥

[९७]

जौ पै हरि जनके औगुन गहते ।
तौ सुरपति कुरुराज बालिसों, कत हठि बैर बिसहते ॥१॥
जौ जप जाग जोग ब्रत बरजित, केवल प्रेम न चहते ।
तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज, गोप-गेह बसि रहते ॥२॥
जौ जहँ-तहँ प्रन राखि भगतको, भजन-प्रभाउ न कहते ।
तौ कलि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते ॥३॥
जौ सुतहित लिये नाम अजामिलके अघ अमित न दहते ।
तौ जमभट साँसति-हर हमसे बृषभ खोजि खोजि नहते ॥४॥
जो जगबिदित पतितपावन, अति बाँकुर बिरद न बहते ।
तौ बहुकलप कुटिल तुलसीसे, सपनेहुँ सुगति न लहते ॥५॥

भावार्थ—(आप दासोंके दोषोंपर ध्यान नहीं देते) हे रामजी ! यदि आप दासोंका दोष मनमें लाते तो इन्द्र, दुर्योधन और बालिसे हठ करके

क्यों शत्रुता मोल लेते ? ॥१॥ यदि आप जप, यज्ञ, योग, व्रत आदि छोड़कर केवल प्रेम ही न चाहते तो देवता और श्रेष्ठ मुनियोंको त्यागकर व्रजमें गोपोंके घर किसलिये निवास करते ? ॥२॥ यदि आप जहाँ-तहाँ भक्तोंका प्रण रखकर भजनका प्रभाव न बखानते तो, हम-सरीखे मूर्खोंका कलियुगके कठिन कर्म-मार्गमें किस प्रकार निर्वाह होता ?॥३॥ हे संकटहारी ! यदि आपने पुत्रके सङ्केतसे नारायणका नाम लेनेवाले अजामिलके अनन्त पापोंको भस्म न किया होता, तो यमदूत हम-सरीखे बैलोंको खोज-खोजकर हलमें ही जोतते ॥४॥ और यदि आपने जगत्प्रसिद्ध पतितपावन रूपका बाना नहीं धारण किया होता तो तुलसी-सरीखे दुष्ट तो अनेक कल्पोंतक स्वप्नमें भी मुक्तिके भागी नहीं होते ॥५॥

[९८]

ऐसी हरि करत दासपर प्रीति ।
निज प्रभुता बिसारि जनके बस, होत सदा यह रीति ॥१॥
जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी ।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी ॥२॥
जाकी मायाबस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो ।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ॥३॥
बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद-बिदित यह लीख ।
बलिसों कछु न चली प्रभुता बरु है द्विज माँगी भीख ॥४॥

जाको नाम लिये छूटत भव-जनम-मरन दुख-भार ।
अंबरीष-हित लागि कृपानिधि, सोइ जनमे दस बार ॥५॥
जोग-बिराग, ध्यान-जप-तप करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी ।
बानर-भालु चपल पसु पामर, नाथ तहाँ रति मानी ॥६॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब आग्याकारी ।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेनके द्वार बेंत कर धारी ॥७॥

भावार्थ—श्रीहरि अपने दासपर इतना प्रेम करते हैं कि अपनी सारी प्रभुता भूलकर उस भक्तके ही अधीन हो जाते हैं। उनकी यह रीति सनातन है ॥१॥ जिस परमात्माने देवता, दैत्य, नाग और मनुष्योंको कर्मोंकी बड़ी मजबूत डोरीमें बाँध रक्खा है, उसी अखण्ड परब्रह्मको यशोदाजीने प्रेमवश जबरदस्ती (ऊखलसे) ऐसा बाँध दिया कि जिसे आप खोल भी नहीं सके ॥२॥ जिसकी मायाके वश होकर ब्रह्मा और शिवजीने नाचते-नाचते उसका पार नहीं पाया, उसीको गोप-रमणियोंने ताल बजा-बजाकर (आँगनमें) नचाया ॥३॥ वेदका यह सिद्धान्त प्रसिद्ध है कि भगवान् सारे विश्वका भरण-पोषण करनेवाले, लक्ष्मीजीके स्वामी और तीनों लोकोंके अधीश्वर हैं, ऐसे प्रभुकी भी भक्त राजा बलिके आगे कुछ भी प्रभुता नहीं चल सकी, वरन् प्रेमवश ब्राह्मण बनकर उससे भीख माँगनी पड़ी ॥४॥ जिसके नाम-स्मरणमात्रसे संसारके जन्म-मरणरूपी दुःखोंके भारसे जीव छूट जाते हैं, उसी कृपानिधिने भक्त अम्बरीषके लिये स्वयं दस बार अवतार धारण किया ॥५॥ जिस-

को संयमी मुनिगण योग, वैराग्य, ध्यान, जप और तप करके खोजते रहते हैं, उसी नाथने बन्दर, रीछ आदि नीच चञ्चल पशुओंसे प्रीति की ॥६॥ लोकपाल, यमराज, काल, वायु, सूर्य और चन्द्रमा आदि सब जिसके आज्ञाकारी हैं, वही प्रभु प्रेमवश उग्रसेनके द्वारपर हाथमें लकड़ी लिये दरवानकी तरह खड़ा रहता है ॥७॥

[९९]

बिरद गरीबनिवाज रामको ।
गावत बेद-पुरान, संभु-सुक, प्रगट प्रभाउ नामको ॥१॥
ध्रुव, प्रहलाद, बिभीषन, कपिपति, जड़, पतंग, पांडव, सुदामको ।
लोक सुजस, परलोक सुगति, इन्हमें को है राम कामको ॥२॥
गनिका, कोल, किरात, आदिकबि, इन्हते अधिक बाम को ।
बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब सामको ॥३॥
छली, मलीन, हीन सब ही अँग, तुलसी सो छीन छामको ।
नाम-नरेस-प्रताप प्रबल जग, जुग-जुग चालत चामको ॥४॥

भावार्थ—श्रीरामजीका बाना ही गरीबोंको निहाल कर देना है । वेद, पुराण, शिवजी, शुकदेवजी आदि यही गाते हैं । उनके श्रीरामनामका प्रभाव तो प्रत्यक्ष ही है ॥१॥ ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, जड़ (अहल्या), पक्षी (जटायु, काकभुशुण्डि), पाँचों पाण्डव और सुदामा—इन सबको भगवान्‌ने इस लोकमें सुन्दर यश और परलोकमें सद्गति दी । इनमेंसे रामके कामका भला कौन था ? ॥२॥ गणिका (जीवन्ती),

कोल-किरात (गुह, निषाद आदि) तथा आदिकवि वाल्मीकि, इनसे बुरा कौन था ? अजामिलने कब अश्वमेध-यज्ञ किया था, गजराजने कब सामवेदका गान किया था ? ॥३॥ तुलसीके समान कपटी, मलिन, सब साधनोंसे हीन, दुबला-पतला और कौन है ? पर श्रीरामके नामरूपी राजाके राज्यमें उसके प्रबल प्रतापसे युग-युगसे चमड़ेका सिक्का भी चलता आ रहा है अर्थात् नामके प्रतापसे अत्यन्त नीच भी परमात्माको प्राप्त करते रहे हैं, ऐसे ही मैं भी प्राप्त करूँगा ॥४॥

[१००]

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ ॥१॥
सिसुपनतें पितु, मातु, बन्धु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसौंहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥२॥
खेलत संग अनुज बालक नित, जोगवत अनट अपाउ ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ॥३॥
सिला साप-संताप-बिगत भइ, परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुएको पछिताउ ॥४॥
भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।
छमि अपराध, छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ ॥५॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ ।
ता कुमातुको मन जोगवत ज्यौं निज तनु मरम कुघाउ ॥६॥

कपि-सेवा-बस भये कनौड़े, कह्यौ पवनसुत आउ।
देबेको न कछू रिनियाँ हौं धनिक तूँ पत्र लिखाउ॥ ७॥
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ॥ ८॥
निज करुना करतूति भगतपर, चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ॥ ९॥
समुझि समुझि गुनग्राम रामके, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ॥१०॥

भावार्थ—श्रीसीतानाथ रामजीका शील-स्वभाव सुनकर जिसके मनमें आनन्द नहीं होता, जिसका शरीर पुलकायमान नहीं होता, जिसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू नहीं भर आते, वह दुष्ट धूल फाँकता फिरे तो ही ठीक है॥१॥ बचपनसे ही पिता, माता, भाई, गुरु, नौकर, मन्त्री और मित्र यही कहते हैं कि हममेंसे किसीने स्वप्नमें भी श्रीरामचन्द्रजीके चन्द्र-मुखपर कभी क्रोध नहीं देखा॥२॥ उनके साथ जो उनके तीनों भाई और नगरके दूसरे बालक खेलते थे, उनकी अनीति और हानिको वे सदा देखते रहते थे और अपनी जीतमें भी (उनको प्रसन्न करनेके लिये) हार मान लेते थे तथा उन लोगोंको पुचकार-पुचकारकर प्रेमसे अपना दाँव देते और दूसरोंसे दिलाते थे॥३॥ चरणका स्पर्श होते ही पत्थरकी शिला अहल्या शापके सन्तापसे छूट गयी, उसे सद्गति दे दी; पर इस बातका तो उनके मनमें कुछ भी हर्ष नहीं हुआ, उलटे इस बात-

का पश्चात्ताप अवश्य हुआ कि ऋषिपत्नीके मेरे चरण क्यों लग गये ? ॥४॥ शिवजीका धनुष तोड़कर राजाओंका मान हर लिया, इससे जब परशुरामजीने आकर क्रोध किया, तब उनका अपराध क्षमा करके उलटे श्रीलक्ष्मणजीसे माफी मँगवायी और स्वयं उनके चरणोंपर गिर पड़े, इतनी सहिष्णुता और कहीं नहीं है ! ॥५॥ राजा दशरथने राज्य देनेको कहकर, कैकेयीके वशमें होनेके कारण वनवास दे दिया और इसी ग्लानिके मारे वे मर भी गये, ऐसी बुरी माता कैकेयीका मन भी आप ऐसे सँभाले रहे, जैसे कोई अपने शरीरके मर्मस्थानके घावको देखता रहता है, अर्थात् आप सदा उसके मनके अनुसार ही चलते रहे ॥६॥ जब आप हनुमान्‌जीकी सेवाके वश होकर उनके उपकृत हो गये, तब उनसे कहा कि 'हे पवनसुत ! यहाँ आ, तुझे देनेको तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं तेरा ऋणी हूँ, तू मेरा महाजन है, तू चाहे तो मुझसे लिखा-पढ़ी करवा ले' ॥७॥ सुग्रीव और विभीषणने अपना कपट-भाव नहीं छोड़ा, परन्तु आपने तो उन्हें अपना ही लिया। भरतजीका तो सदा भरी सभामें आप सम्मान करते रहते हैं, उनकी प्रशंसा करते-करते तो आपके हृदयमें तृप्ति ही नहीं होती ॥८॥ भक्तोंपर आपने जो-जो दया और उपकार किये हैं, उनकी तो चर्चा चलते ही आप लज्जासे मानो गड़ जाते हैं (अपनी प्रशंसा आपको सुहाती ही नहीं); पर जो एक बार भी आपको प्रणाम करता है और शरणमें आ जाता है, आप सदा उसका यश वर्णन करते हैं, सुनते हैं और कह-कहकर दूसरोंसे गान करवाते हैं॥९॥ ऐसे कोमलहृदय श्रीरामजीके गुणसमूहोंको समझ-समझकर मेरे हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी है,

हे तुलसीदास ! इस प्रेमानन्दके कारण तू अनायास ही श्रीरामके चरण-कमलोंको प्राप्त करेगा ॥१०॥

[१०१]

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥
कौने देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे ।
खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥ २ ॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया-बिबस बिचारे ।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! आपके चरणोंको छोड़कर और कहाँ जाऊँ ? संसारमें 'पतित-पावन' नाम और किसका है ? (आपकी भाँति) दीन-दुखियारे किसे बहुत प्यारे हैं ? ॥१॥ आजतक किस देवताने अपने बानेको रखनेके लिये हठपूर्वक चुन-चुनकर नीचोंका उद्धार किया है ? किस देवताने पक्षी (जटायु), पशु (ऋक्ष-वानर आदि), व्याध (वाल्मीकि), पत्थर (अहल्या), जड़ वृक्ष (यमलार्जुन) और यवनोंका उद्धार किया है ? ॥२॥ देवता, दैत्य, मुनि, नाग, मनुष्य आदि सभी बेचारे मायाके वश हैं। (स्वयं बँधा हुआ दूसरोंके बन्धनको कैसे खोल सकता है इसलिये) हे प्रभो ! यह तुलसीदास अपनेको उन लोगोंके हाथोंमें सौंप-कर क्या करे ? ॥३॥

[१०२]

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम बिबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥ १ ॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभुके, एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥ २ ॥
बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥ ३ ॥
कृपा-डोरि बनसी पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो ।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥ ४ ॥
हैं श्रुति-बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै ।
तुलसिदास येहि जीव मोह-रजु, जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! आपने बड़ी दया की, जो मुझे देवताओंके लिये भी दुर्लभ, साधनोंके स्थान मनुष्य-शरीरको कृपापूर्वक दे दिया ॥१॥ यद्यपि आपका एक-एक उपकार करोड़ों मुखोंसे नहीं कहा जा सकता, तथापि हे नाथ ! मैं कुछ और माँगता हूँ, आप बड़े उदार हैं, मुझे कृपा करके दीजिये ॥२॥ मेरा मनरूपी मच्छ विषयरूपी जलसे एक पलके लिये भी अलग नहीं होता, इससे मैं अत्यन्त दारुण दुःख सह रहा हूँ—बार-बार अनेक योनियोंमें मुझे जन्म लेना पड़ता है ॥३॥ (इस मनरूपी मच्छको पकड़नेके लिये) हे रामजी ! आप अपनी कृपाकी डोरी बनाइये और अपने चरणके चिह्न अंकुशको वंशीका काँटा बनाइये, उसमें परम

प्रेमरूपी कोमल चारा चिपका दीजिये। इस प्रकार मेरे मनरूपी मच्छको बेधकर अर्थात् विषयरूपी जलसे बाहर निकालकर मेरा दुःख दूर कर दीजिये। आपके लिये तो यह एक खेल ही होगा ॥४॥ यों तो वेदमें अनेक उपाय भरे पड़े हैं, देवता भी बहुत-से हैं, पर यह दीन किस-किसका निहोरा करता फिरे ? हे तुलसीदास ! जिसने इस जीवको मोहकी डोरीमें बाँधा है, वही इसे छुड़ावेगा ॥५॥

[१०३]

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरौ जीव-जड़ताई ॥ १ ॥
चहौं न सुगति,सुमति,संपति कछु,रिधि-सिधि,बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं ॥ ३ ॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे श्रीरघुनाथजी ! हे नाथ ! मेरी यही विनती है कि इस जीवको दूसरे साधन,देवता या कर्मोंपर जो आशा, विश्वास और भरोसा है, उस मूर्खताको आप हर लीजिये ॥१॥ हे राम ! मैं मुक्ति, सद्बुद्धि, धन-सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धि और बड़ी भारी बड़ाई आदि कुछ भी नहीं चाहता। बस, मेरा तो आपके चरणकमलोंमें दिनों दिन अधिक-से-अधिक

अनन्य और विशुद्ध प्रेम बढ़ता रहे, यही चाहता हूँ ॥२॥ मुझे अपने बुरे कर्म जबरदस्ती जिस-जिस योनिमें ले जायँ, उस-उस योनिमें ही हे नाथ! जैसे कछुआ अपने अण्डोंको नहीं छोड़ता, वैसे ही आप पल-भरके लिये भी अपनी कृपा न छोड़ना ॥३॥ हे नाथ! इस संसारमें जहाँ-तक इस शरीरका (स्त्री-पुत्र-परिवारादिसे) प्रेम, विश्वास और सम्बन्ध है, सो सब एक ही स्थानपर सिमटकर केवल आपसे ही हो जाय! ॥४॥

[१०४]

जानकी-जीवनकी बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ॥ १ ॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तनके बासिन्ह, इहै सिखावन दैहौं ॥ २ ॥
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं ॥ ३ ॥
नातो-नेह नाथसों करि सब नातो-नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मैं तो श्रीजानकी-जीवन रघुनाथजीपर अपनेको न्योछावर कर दूँगा। मेरा मन यही कहता है कि अब मैं श्रीसीता-रामजीके चरणों-को छोड़कर दूसरी जगह कहीं भी नहीं जाऊँगा ॥१॥ मेरे हृदयमें ऐसा विश्वास उत्पन्न हो गया है कि अपने स्वामी श्रीरामजीके चरणोंसे विमुख होकर मैं स्वप्नमें भी कहीं सुख नहीं पा सकूँगा। इससे मैं मनको

तथा इस शरीरमें रहनेवाले (इन्द्रियादि) सभीको यही उपदेश दूँगा ॥२॥ कानोंसे दूसरी बात नहीं सुनूँगा, जीभसे दूसरेकी चर्चा नहीं करूँगा, नेत्रोंको दूसरी ओर ताकनेसे रोक लूँगा और यह मस्तक केवल आपके (चरणोंमें ही) झुकाऊँगा ॥३॥ आपके साथ नाता और प्रेम करके दूसरे सबसे नाता और प्रेम तोड़ दूँगा। इस संसारमें मैं तुलसीदास जिसका दास कहाऊँगा फिर अपने सारे कर्मोंका बोझा भी उसी स्वामीपर रहेगा ॥४॥

[१०५]

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ॥ १ ॥
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ॥ २ ॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥ ३ ॥

भावार्थ—अबतक (की आयु तो व्यर्थ ही) नष्ट हो गयी, परन्तु अब (व्यर्थ) नष्ट नहीं होने दूँगा। श्रीरामकी कृपासे संसाररूपी रात्रि बीत गयी है, (मैं संसारकी माया-रात्रिसे जग गया हूँ) अब जागनेपर फिर (माया-का) बिछौना नहीं बिछाऊँगा (अब फिर मायाके फन्देमें नहीं फँसूँगा) ॥१॥ मुझे रामनामरूपी सुन्दर चिन्तामणि मिल गयी है। उसे हृदयरूपी हाथ-से कभी नहीं गिरने दूँगा। अथवा हृदयसे रामनामका स्मरण करता

रहूँगा और हाथसे रामनामकी माला जपा करूँगा । श्रीरघुनाथजीका जो पवित्र श्यामसुन्दर रूप है उसकी कसौटी बनाकर अपने चित्तरूपी सोनेको कसूँगा । अर्थात् यह देखूँगा कि श्रीरामके ध्यानमें मेरा मन सदा-सर्वदा लगता है कि नहीं ॥२॥ जबतक मैं इन्द्रियोंके वशमें था, तबतक उन्होंने (मुझे मनमाना नाच नचाकर) मेरी बड़ी हँसी उड़ाई, परन्तु अब स्वतन्त्र होनेपर यानी मन-इन्द्रियोंको जीत लेनेपर उनसे अपनी हँसी नहीं कराऊँगा । अब तो अपने मनरूपी भ्रमरको प्रण करके श्रीरामजीके चरणकमलोंमें लगा दूँगा । अर्थात् श्रीरामजीके चरणोंको छोड़कर दूसरी जगह मनको जाने ही नहीं दूँगा ॥३॥

राग रामकली

[१०६]

महाराज रामादरयो धन्य सोई ।

गरुअ,गुनरासि,सरबग्य,सुकृती,सूर,सील-निधि,साधु तेहि सम न कोई ॥

उपल-केवट-कीस-भालु-निसिचर-सबरि-गीध सम-दम-दया-दान-हीने।

नाम लिये राम किये परम पावन सकल, नर तरत तिनके गुनगान कीने२

ब्याध अपराधकी साध राखी कहा, पिंगलै कौन मति भगति भेई ।

कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम, कौन गजराज धौं बाजपेयी ।।३।।

पांडु-सुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी, सबरि, सुद्ध किये सुद्धता लेस कैसो ।

प्रेम लखि कृस्न किये आपने तिनहुँको, सुजस संसार हरिहरको जैसो ।।

कोल, खस, भील, जवनादि खल राम कहि, नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो ।
दीन-दुख-दवन श्रीरवन करुना-भवन, पतित-पावन बिरद बेद गायो ॥ ५ ॥
मंदमति, कुटिल, खल-तिलक तुलसी सरिस, भो न तिहुँ लोक
तिहुँ काल कोऊ ।
नामकी कानि पहिचानि पन आपनो, ग्रसित कलि-ब्याल
राख्यो सरन सोऊ ॥ ६ ॥

भावार्थ—महाराज श्रीरामचन्द्रजीने जिसका आदर किया वही धन्य है। वही भारी यानी महिमान्वित, गुणोंका भण्डार, सर्वज्ञ, पुण्यवान्, वीर, सुशील और साधु है, उसके समान कोई भी नहीं है ॥१॥ पाषाणकी अहल्या, निषाद, बन्दर, रीछ, राक्षस, शबरी, जटायु ये सब शम, दम, दया और दान आदि गुणोंसे बिल्कुल हीन थे; परन्तु श्रीराम-नाम स्मरण करनेसे श्रीरामजीने इन सबको ऐसा परम पवित्र बना दिया कि (आज) उनके गुणोंका गान करनेसे मनुष्य संसार-सागरसे पार हो जाते हैं ॥२॥ वाल्मीकि व्याधने कौन-से पापकी इच्छा बाकी रक्खी थी? पिंगला वेश्याने अपनी बुद्धि भक्तिमें कब लगायी थी? अजामिल पापीने कौन-सा सोमयज्ञ किया था? और गजराज कहाँका अश्वमेध करनेवाला था? ॥३॥ पाण्डवों, गोपियों, विदुर और कुब्जामें पवित्रताका लेश भी कहाँ था; परन्तु आपने इन सबको पवित्र कर लिया, प्रेम देखकर श्रीकृष्णरूप आपने इनको अपना लिया, जिससे इनका सुन्दर यश (आज) संसारमें विष्णु और शिवके यशके समान छा रहा है ॥४॥ कोल, खस, भील और यवनादि दुष्टोंमें ऐसा कौन है जिसने रामनाम उच्चारण

करनेपर नीच होकर भी ऊँचे-से-ऊँचा पद न पाया हो ? दीनोंके दुःखका नाश करनेवाले, लक्ष्मीजीके पति, करुणाके मन्दिर, पतितोंको पावन करनेवाले श्रीरामजीका यश वेदोंने गाया है ॥५॥ (औरोंकी बात जाने दीजिये) तीनों लोकों और तीनों कालोंमें तुलसी-सरीखा मन्दबुद्धि, कुटिल और दुष्ट-शिरोमणि कोई नहीं हुआ; परन्तु अपने नामकी मर्यादा रखनेके लिये अपने (पतितपावन) प्रणको स्मरण करके इस कलिकालरूपी सर्पसे डसे हुएको भी श्रीरामने अपनी शरणमें ले लिया ॥६॥

राग बिहाग / बिलावल

[१०७]

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम ।

सुभग सरोरुह लोचन, सुठि सुंदर स्याम ॥ १ ॥

सिय-समेत सोहत सदा छबि अमित अनंग ।

भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग ॥ २ ॥

बलि-पूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति ।

सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति ॥ ३ ॥

देहि सकल सुख, दुख दहै, आरत-जन-बंधु ।

गुन गहि, अघ-औगुन हरै, अस करुनासिंधु ॥ ४ ॥

देस-काल-पूरन सदा बद बेद पुरान ।

सबको प्रभु, सबमें बसै, सबकी गति जान ॥ ५ ॥

को करि कोटिक कामना, पूजै बहु देव ।
तुलसिदास तेहि सेइये, संकर जेहि सेव ॥ ६ ॥

भावार्थ--कोसलपति श्रीरामचन्द्रजी मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, उनके कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं और उनका शरीर परम सुन्दर श्यामवर्ण है ॥१॥ श्रीसीताजीके साथ सदा शोभायमान रहते हैं, असंख्य कामदेवोंके समान उनका सौन्दर्य है। विशाल भुजाओंमें धनुष-बाण और कमरमें सुन्दर तरकस धारण किये हुए हैं ॥२॥ वे बलि या पूजा कुछ भी नहीं चाहते, केवल एक 'प्रेम' चाहते हैं। स्मरण करते ही प्रसन्न हो जाते हैं, और सब तरहसे पवित्र कर देते हैं ॥३॥ सब सुख दे देते हैं और दुःखोंको भस्म कर डालते हैं। वे दुखीजनोंके बन्धु हैं, गुणोंको ग्रहण करते और अवगुणोंको हर लेते हैं, ऐसे करुणा-सागर हैं ॥४॥ सब देश और सब समय सदा पूर्ण रहते हैं, ऐसा वेद-पुराण कहते हैं। वे सबके स्वामी हैं, सबमें रमते हैं और सबके मनकी बात जानते हैं ॥५॥ (ऐसे स्वामीको छोड़कर) करोड़ों प्रकारकी कामना करके दूसरे अनेक देवताओंको कौन पूजे ? हे तुलसीदास, (अपने तो) उसीकी सेवा करनी चाहिये, जिसकी सेवा देवदेव महादेवजी करते हैं ॥६॥

[१०८]

बीर महा अवराधिये, साधे सिधि होय ।
सकल काम पूरन करै, जानै सब कोय ॥ १ ॥
बेगि, बिलंब न कीजिये लीजै उपदेस ।
बीज/महा मंत्र जपिये सोई, जो जपत महेस ॥ २ ॥

प्रेम-बारि-तरपन भलो, घृत सहज सनेहु ।
संसय-समिध, अगिनि छमा, ममता-बलि देहु ॥ ३ ॥
अघ-उचाटि, मन बस करै, मारै मद-मार ।
आकरषै सुख-संपदा-संतोष-बिचार ॥ ४ ॥
जिन्ह यहि भाँति भजन कियो, मिले रघुपति ताहि ।
तुलसिदास प्रभुपथ चढ्यौ, जौ लेहु निबाहि ॥ ५ ॥

भावार्थ—महान् वीर श्रीरघुनाथजीकी आराधना करनी चाहिये, जिन्हें साधनेसे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। वे सब इच्छाएँ पूर्ण कर देते हैं, इस बातको सब जानते हैं ॥१॥ इस कामको जल्दी ही करना चाहिये, देर करना उचित नहीं है। (सद्गुरुसे) उपदेश लेकर उसी बीजमन्त्र (राम) का जप करना चाहिये, जिसे श्रीशिवजी जपा करते हैं ॥२॥ (मन्त्र-जपके बाद हवनादिकी विधि इस प्रकार है) प्रेमरूपी जलसे तर्पण करना चाहिये, सहज स्वाभाविक स्नेहका घी बनाना चाहिये और सन्देहरूपी समिधका क्षमारूपी अग्निमें हवन करना चाहिये तथा ममताका बलिदान करना चाहिये ॥३॥ पापोंका उच्चाटन, मनका वशीकरण, अहंकार और कामका मारण तथा सन्तोष और ज्ञानरूपी सुख-सम्पत्तिका आकर्षण करना चाहिये ॥४॥ जिसने इस प्रकारसे भजन किया, उसे श्रीरघुनाथजी मिले हैं। तुलसीदास भी इसी मार्गपर चढ़ा है, जिसे प्रभु निबाह लेंगे ॥५॥

[१०९]

कस न करहु करुना हरे ! दुखहरन मुरारि !
त्रिबिधताप-संदेह-सोक-संसय-भय-हारि ॥१॥
इक कलिकाल-जनित मल, मतिमंद, मलिन-मन ।
तेहिपर प्रभु नहिं कर सँभार, केहि भाँति जियै जन ॥२॥
सब प्रकार समरथ प्रभो, मैं सब बिधि दीन ।
यह जिय जानि द्रवौ नहीं, मैं करम-बिहीन ॥३॥
भ्रमत अनेक जोनि, रघुपति, पति आन न मोरे ।
दुख-सुख सहौं, रहौं सदा सरनागत तोरे ॥४॥
तो सम देव न कोउ कृपालु, समुझौं मनमाँहीं ।
तुलसिदास हरि तोषिये, सो साधन नाहीं ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! हे मुरारे ! आप दुःखोंके हरण करनेवाले हैं, फिर मुझपर दया क्यों नहीं करते ? आप दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकारके तापोंके और सन्देह, शोक, अज्ञान तथा भयके नाश करनेवाले हैं। (मेरे भी दुःख, ताप और अज्ञान आदिका नाश कीजिये)॥१॥ एक तो कलिकालसे उत्पन्न होनेवाले पापोंसे मेरी बुद्धि मन्द पड़ गयी है और मन मलिन हो गया है, तिसपर फिर हे स्वामी ! आप भी मेरी सँभाल नहीं करते ? तब इस दासका जीवन कैसे निभेगा ? ॥२॥ हे प्रभो ! आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं और मैं सब प्रकारसे दीन हूँ। यह जानकर भी आप मुझपर कृपा नहीं करते, इससे मालूम होता है कि मैं भाग्यहीन ही हूँ ॥३॥ हे रघुनाथजी ! मैं अनेक योनियोंमें भटक आया हूँ; परन्तु आपके

सिवा मेरे दूसरा कोई स्वामी नहीं है। दुःख-सुख सहता हुआ भी मैं सदा आपकी ही शरण हूँ ॥४॥ मैं अपने मनमें तो इस बातको खूब समझता हूँ कि आपके समान दूसरा कोई भी दयालु देव नहीं है, परन्तु हे हरे ! आपको प्रसन्न करनेवाले साधन इस तुलसीदासके पास नहीं हैं। (बिना ही साधन केवल शरणागतिसे ही आपको प्रसन्न होना पड़ेगा) ॥५॥

[११०]

कहु केहि कहिय कृपानिधे ! भव-जनित बिपति अति ।
इंद्रिय सकल बिकल सदा, निज निज सुभाउ रति ॥१॥
जे सुख-संपति, सरग-नरक संतत सँग लागी ।
हरि ! परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥२॥
मैं अति दीन, दयालु देव सुनि मन अनुरागे ।
जो न द्रवहु रघुबीर धीर, दुख काहे न लागे ॥३॥
जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुख-समन मुरारे ।
तुलसिदास कहँ आस यहै बहु पतित उधारे ॥४॥

भावार्थ—हे कृपानिधान ! इस संसार-जनित भारी विपत्तिका दुखड़ा आपको छोड़कर और किसके सामने रोऊँ ? इन्द्रियाँ तो सब अपने-अपने विषयोंमें आसक्त होकर उनके लिये व्याकुल हो रही हैं ॥१॥ ये तो सदा सुख-सम्पत्ति और स्वर्ग-नरककी उलझनमें ही फँसी रहती ही हैं; पर हे हरे ! मेरा यह अभागा मन भी आपको छोड़कर इन इन्द्रियोंका ही साथ दे रहा है ॥२॥ हे देव ! मैं अत्यन्त दीन-दुखी हूँ-

आपका दयालु नाम सुनकर मैंने आपमें मन लगाया है; इतनेपर भी हे रघुवीर! हे धीर! यदि आप मुझपर दया नहीं करते तो मुझे कैसे दुःख नहीं होगा? ॥३॥ अवश्य ही मैं अपराधोंका घर हूँ; परन्तु हे मुरारे! आप तो (अपराधका विचार न करके) दुःखोंका नाश ही करनेवाले हैं। मुझ तुलसीदासको आपसे सदा यही आशा है, क्योंकि आप अबतक अनेक पतितों (अपराधियों) का उद्धार कर चुके हैं (इसलिये अब मेरा भी अवश्य करेंगे) ॥४॥

[१११]

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये ॥१॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ॥२॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥३॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥४॥

भावार्थ—हे केशव! क्या कहूँ? कुछ कहा नहीं जाता! हे हरे! आपकी यह विचित्र रचना देखकर मन-ही-मन (आपकी लीला) समझकर रह जाता हूँ ॥१॥ कैसी अद्भुत लीला है कि, इस (संसाररूपी) चित्रको निराकार (अव्यक्त) चित्रकार (सृष्टिकर्ता परमात्मा) ने शून्य (मायाकी)

दीवारपर बिना ही रंगके (संकल्पसे ही) बना दिया। (साधारण स्थूल चित्र तो धोनेसे मिट जाते हैं, परन्तु यह (महा-मायावी-रचित माया-चित्र) किसी प्रकार धोनेसे नहीं मिटता। (साधारण चित्र जड़ है, उसे मृत्युका डर नहीं लगता परन्तु) इसको मरणका भय बना हुआ है। (साधारण चित्र देखनेसे सुख मिलता है परन्तु) इस संसाररूपी भयानक चित्रकी ओर देखनेसे दुःख होता है ॥२॥ सूर्यकी किरणोंमें (भ्रमसे) जो जल दिखायी देता है उस जलमें एक भयानक मगर रहता है; उस मगरके मुँह नहीं है, तो भी वहाँ जो भी जल पीने जाता है, चाहे वह जड़ हो या चेतन, यह मगर उसे ग्रस लेता है। भाव यह कि यह संसार सूर्यकी किरणोंमें जलके समान भ्रमजनित है। जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल समझकर उनके पीछे दौड़नेवाला मृग जल न पाकर प्यासा ही मर जाता है, उसी प्रकार इस भ्रमात्मक संसारमें सुख समझ-कर उसके पीछे दौड़नेवालोंको भी बिना मुखका मगर यानी निराकार काल खा जाता है ॥३॥ इस संसारको कोई सत्य कहता है, कोई मिथ्या बतलाता है और कोई सत्य-मिथ्यासे मिला हुआ मानता है; तुलसीदासके मतसे तो (ये तीनों ही भ्रम हैं) जो इन तीनों भ्रमोंसे निवृत्त हो जाता है (अर्थात् सब कुछ परमात्माकी लीला ही समझता है) वही अपने असली स्वरूपको पहचान सकता है ॥४॥

[११२]

केसव ! कारन कौन गुसाईं।

जेहि अपराध असाध जानि मोहिं तजेउ अग्यकी नाईं ॥१॥

परम पुनीत संत कोमल-चित, तिनहिं तुमहिं बनि आई।
तौ कत बिप्र, ब्याध, गनिकहि तारेहु, कछु रही सगाई ? ॥२॥
काल, करम, गति अगति जीवकी, सब हरि ! हाथ तुम्हारे।
सोइ कछु करहु, हरहु ममता प्रभु ! फिरउँ न तुमहिं बिसारे ॥३॥
जौ तुम तजहु, भजौं न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे।
मन-बच-करम नरक-सुरपुर जहँ तहँ रघुबीर निहोरे ॥४॥
जद्यपि नाथ उचित न होत अस, प्रभु सों करौं ढिठाई।
तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई ॥५॥

भावार्थ—हे केशव ! हे स्वामी ! ऐसा क्या कारण (अपराध) है जिस अपराधसे आपने मुझे दुष्ट समझकर एक अनजानकी तरह छोड़ दिया ? ॥१॥ (यदि आप मुझे तो दुष्ट समझते हैं, और) जिनके आचरण बड़े ही पवित्र हैं, जो कोमलहृदय सन्त हैं, उन्हींको अपनाते हैं, तो फिर अजामिल, वाल्मीकि और गणिकाका उद्धार क्यों किया था ? क्या उनसे आपकी कोई खास रिश्तेदारी थी ? ॥२॥ हे हरे ! इस जीवका काल, कर्म, सुगति, दुर्गति सब कुछ आपहीके हाथ है; अतः हे प्रभो ! मेरी ममताका नाश कर कुछ ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मैं आपको भूलकर इधर-उधर भटकता न फिरूँ ॥३॥ यदि आप मुझे छोड़ भी देंगे, तो भी मैं तो आप-हीको भजूँगा, दूसरे किसीको अपना प्रभु कभी नहीं मानूँगा, यह मेरा अटल प्रण है; आप नरक या स्वर्गमें जहाँ कहीं भी भेजेंगे, वहीं हे रघुनाथजी ! मन, वचन और कर्मसे मैं आपहीकी विनय करता रहूँगा ॥४॥ हे नाथ ! यद्यपि यह उचित नहीं है कि मैं प्रभुके साथ ऐसी ढिठाई

करूँ, परन्तु रात-दिन आपकी निष्ठुरता देखकर यह तुलसीदास बड़ा दुखी हो रहा है, (इसीसे बाध्य होकर) ऐसा कहना पड़ा ॥५॥

[११३]

माधव ! अब न द्रवहु केहि लेखे ।
प्रनतपाल पन तोर, मोर पन जिअहुँ कमलपद देखे ॥ १ ॥
जब लगि मैं न दीन, दयालु तैं, मैं न दास, तैं स्वामी ।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरजामी ॥ २ ॥
तैं उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत, श्रुति गावै ।
बहुत नात रघुनाथ ! तोहि मोहि, अब न तजे बनि आवै ॥ ३ ॥
जनक-जननि, गुरु-बंधु, सुहृद-पति, सब प्रकार हितकारी ।
द्वैतरूप तम-कूप परौं नहिं, अस कछु जतन बिचारी ॥ ४ ॥
सुनु अदभ्र करुना बारिजलोचन मोचन भय भारी ।
तुलसिदास प्रभु ! तव प्रकास बिनु, संसय टरै न टारी ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे माधव ! अब तुम किस कारण कृपा नहीं करते ? तुम्हारा प्रण तो शरणागतका पालन करना है और मेरा प्रण तुम्हारे चरणारविन्दों-को देख-देखकर ही जीना है । भाव यह कि जब मैं तुम्हारे चरण देखे बिना जीवन धारण ही नहीं कर सकता तब तुम प्रणतपाल होकर भी मुझपर कृपा क्यों नहीं करते ॥१॥ जबतक मैं दीन और तुम दयालु, मैं सेवक और तुम स्वामी नहीं बने थे, तबतक तो मैंने जो दुःख सहे सो मैंने तुमसे नहीं कहे, यद्यपि तुम अन्तर्यामीरूपसे सब जानते थे ॥२॥ किन्तु अब तो मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध हो गया है । तुम दानी हो और मैं

कंगाल हूँ, तुम पतितपावन हो और मैं पतित हूँ, वेद इस बातको गा रहे हैं। हे रघुनाथजी ! इस प्रकार मेरे-तुम्हारे अनेक सम्बन्ध हैं; फिर भला, तुम मुझे कैसे त्याग सकते हो ? ॥३॥ मेरे पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र, स्वामी और हर तरहसे हितू तुम्हीं हो। अतएव कुछ ऐसा उपाय सोचो, जिससे मैं द्वैतरूपी अँधेरे कुएँमें न गिरूँ, अर्थात् सर्वत्र केवल एक तुम्हें ही देखकर परमानन्दमें मग्न रहूँ ॥४॥ हे कमलनयन ! सुनो, तुम्हारी अपार करुणा भवसागरके भारी भयसे (आवागमनसे) छुड़ा देनेवाली है। हे नाथ ! तुलसीदासका अज्ञान (रूपी अन्धकार) बिना तुम्हारे ज्ञानरूप प्रकाशके, बिना तुम्हारे दर्शनके, किसी प्रकार भी नहीं टल सकता (अतएव इसको तुम ही दूर करो) ॥५॥

[११४]

माधव ! मो समान जग माहीं।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन-बिषय कोउ नाहीं ॥१॥
तुम सम हेतुरहित कृपालु आरत-हित ईस न त्यागी।
मैं दुख-सोक-बिकल कृपालु ! केहि कारन दया न लागी ॥२॥
नाहिंन कछु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
ग्यान-भवन तनु दियेहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥३॥
बेनु करील, श्रीखंड बसंतहि दूषन मृषा लगावै।
सार-रहित हत-भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु किमि पावै ॥४॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-सृंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥५॥

भावार्थ—हे माधव ! संसारमें मेरे समान, सब प्रकारसे साधनहीन, पापी, अति दीन और विषय-भोगोंमें डूबा हुआ दूसरा कोई नहीं है ॥१॥ और तुम्हारे समान, बिना ही कारण कृपा करनेवाला, दीन-दुखियोंके हितार्थ सब कुछ त्याग करनेवाला स्वामी कोई दूसरा नहीं है। भाव यह है कि दीनोंके दुःख दूर करनेके लिये ही तुम वैकुण्ठ या सच्चिदानन्दघनरूप छोड़कर धराधाममें मानवरूपमें अवतीर्ण होते हो, इससे अधिक त्याग और क्या होगा ? इतनेपर भी मैं दुःख और शोकसे व्याकुल हो रहा हूँ। हे कृपालो ! किस कारण तुमको मुझपर दया नहीं आती ?॥२॥ मैं यह मानता हूँ कि इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, सब मेरा ही अपराध है। क्योंकि तुमने मुझे जो ज्ञानका भण्डार यह मनुष्य-शरीर दिया, उसे पाकर भी मैंने तुम-सरीखे प्रभुको आजतक नहीं पहचाना॥३॥ बाँस चन्दनको और करील वसन्तको वृथा ही दोष देते हैं। असलमें दोनों हतभाग्य हैं। बाँसमें सार ही नहीं है, तब बेचारा चन्दन उसमें सुगन्ध कहाँसे भर दे ? इसी प्रकार करीलमें पत्ते नहीं होते फिर वसन्त उसे कैसे हरा-भरा कर देगा ? (वैसे ही मैं विवेकहीन और भक्तिशून्य कैसे तुमपर दोष लगा सकता हूँ ?) ॥४॥ हे हरे ! मैं सब प्रकार कठोर हूँ, पर तुम तो कोमल स्वभाववाले हो; मैंने अपने मनमें यह निश्चयरूपसे विचार कर लिया है कि हे प्रभो ! इस तुलसीदासकी मोहरूपी बेड़ी तुम्हारे ही छुड़ानेसे छूट सकेगी, अन्यथा नहीं ॥५॥

[११५]

माधव ! मोह-फाँस क्यों टूटै।
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥ १ ॥

घृतपूरन कराह अंतरगत ससि-प्रतिबिंब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कलपसत, औटत नास न पावै॥२॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय बिचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे॥३॥
अंतर मलिन बिषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधि मारे॥४॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु बिमल बिवेक न होई।
बिनु बिवेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई॥५॥

भावार्थ—हे माधव! मेरी यह मोहकी फाँसी कैसे टूटेगी? बाहरसे चाहे करोड़ों साधन क्यों न किये जायँ, उनसे भीतरकी (अज्ञानकी) गाँठ नहीं छूट सकती॥१॥ घीसे भरे हुए कड़ाहमें जो चन्द्रमाकी परछाईं दिखायी देती है, वह (जबतक घी रहेगा तबतक) सौ कल्पतक ईंधन और आग लगाकर औटानेसे भी नाश नहीं हो सकती। (इसी प्रकार जबतक मोह रहेगा तबतक यह आवागमनकी फाँसी भी रहेगी)॥२॥ जैसे किसी पेड़के कोटरमें कोई पक्षी रहता हो, वह उस पेड़के काट डालनेसे नहीं मर सकता, उसी प्रकार बाहरसे कितने ही साधन क्यों न किये जायँ, पर बिना विवेकके यह मन कभी शुद्ध होकर एकाग्र नहीं हो सकता॥३॥ जैसे साँपके बिलपर अनेक प्रकारसे मारनेपर और बाहरसे अन्य उपायोंके करनेपर भी उसमें रहनेवाला साँप नहीं मरता, वैसे ही शरीरको खूब मल-मलकर धोनेसे विषयोंके कारण मलिन हुआ मन भीतरसे कभी पवित्र नहीं हो सकता॥४॥ हे तुलसीदास! भगवान् और

गुरुकी दयाके बिना संशयशून्य विवेक नहीं होता और विवेक हुए बिना इस घोर संसारसागरसे कोई पार नहीं जा सकता ॥५॥

[११६]

माधव ! असि तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया ॥१॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दसा हृदय नहिं आवै ।
जेहि अनुभव बिनु मोहजनित भव दारुन बिपति सतावै ॥२॥
ब्रह्म-पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल-रूप बिषय कारन निसि-बासर धावै ॥३॥
जेहिके भवन बिमल चिंतामनि, सो कत काँच बटोरै ।
सपने परबस परै, जागि देखत केहि जाइ निहोरै ॥४॥
ग्यान-भगति साधन अनेक, सब सत्य, झूँठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मनमाहीं ॥५॥

भावार्थ—हे माधव ! तुम्हारी यह माया ऐसी (दुस्तर) है कि कितने ही उपाय करके पच मरो, पर जबतक तुम दया नहीं करते तबतक इससे पार पा जाना असम्भव ही है ॥१॥ सुनता हूँ, विचारता हूँ, समझता हूँ तथा दूसरोंको समझाता हूँ, पर तुम्हारी इस मायाका यथार्थ रहस्य समझमें नहीं आता और जबतक इसके वास्तविक रहस्यका अनुभव नहीं होता, तबतक मोहजनित संसारकी महान् विपत्तियाँ दुःख देती ही रहेंगी ॥२॥ ब्रह्मामृत बड़ा ही मधुर और शान्तिकर है, यदि मनको वह अमृतरस

कहीं चखनेको मिल जाय, तो फिर यह विषयरूपी झूठे मृगजलके लिये क्यों रात-दिन भटकता फिरे ॥३॥ जिसके घरमें ही निर्मल चिन्तामणि विद्यमान है, वह काँच क्यों बटोरेगा? भाव यह कि जिसे ब्रह्मानन्द प्राप्त हो गया, वह मायिक विषयानन्दकी ओर क्यों ताकने लगा? जैसे कोई सपनेमें किसीके पराधीन हो जाय और (छूटनेके लिये उससे) विनय करे, पर जब जाग जाय तब वह किससे क्यों निहोरा करेगा? ॥४॥ ज्ञान, भक्ति आदि अनेक साधन हैं और सभी सच्चे हैं, इनमें झूठ एक भी नहीं। परन्तु तुलसीदासके मनमें तो इसी बातका भरोसा है कि अज्ञानका नाश केवल श्रीहरि-कृपासे ही हो सकता है। अर्थात् भगवत्कृपा ही परम साधन है और वह सब जीवों-पर है ही, केवल उसपर भरोसा या परम विश्वास करना चाहिये ॥५॥

[११७]

हे हरि! कवन दोष तोहिं दीजै।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति, सोइ निसि-बासर कीजै ॥१॥
जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे।
तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों, फिरत बिषय अनुरागे ॥२॥
भूत-द्रोह कृत मोह-बस्य हित आपन मैं न बिचारो।
मद-मत्सर-अभिमान ग्यान-रिपु, इन महँ रहनि अपारो ॥३॥
बेद-पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जगब्यापी।
बेधत नहिं श्रीखंड बेनु इव, सारहीन मन पापी ॥४॥
मैं अपराध-सिंधु करुनाकर! जानत अंतरजामी।
तुलसिदास भव-ब्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु-गामी ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! तुम्हें क्या दोष दूँ ? (क्योंकि दोष तो सब मेरा ही है) जिन उपायोंसे स्वप्नमें भी मोक्ष मिलना दुर्लभ है, मैं दिन-रात वही किया करता हूँ ॥१॥ मैं जानता हूँ कि इन्द्रियोंके भोग सर्वथा अनर्थरूप हैं, इनमें फँसकर अज्ञानरूपी अँधेरे कुएँमें गिरना होगा, फिर भी मैं विषयोंमें आसक्त होकर कुत्ते, बकरे और गधेकी भाँति इन्हींके पीछे भटकता हूँ ॥२॥ अज्ञान-वश जीवोंके साथ द्रोह करता हूँ और अपना हित नहीं सोचता। मद, ईर्ष्या, अहंकार आदि जो ज्ञानके शत्रु हैं, उन्हींमें मैं सदा रचा-पचा रहता हूँ। (बताइये मुझ-सरीखा नीच और कौन होगा ?) ॥३॥ वेदों और पुराणोंमें सुनता हूँ तथा समझता हूँ कि श्रीरामजी ही समस्त संसारमें रम रहे हैं; परन्तु मेरे विवेकहीन पापी मनमें यह बात वैसे ही नहीं समाती, जैसे चन्दनकी सुगन्ध बिना गूदेके साररहित बाँसमें नहीं जाती ॥४॥ हे करुणाकी खानि ! मैं तो अपार अपराधोंका समुद्र हूँ—तुम अन्तर्यामी सब कुछ जानते हो। अतएव हे गरुड़गामी ! संसाररूपी सर्पसे डसा हुआ यह तुलसीदास तुम्हारी शरणमें पड़ा है। (इसे बचाओ, यह संसाररूपी साँप तुम्हारे वाहन गरुड़को देखते ही भयसे भाग जायगा, तुम एक वार इधर आओ तो सही) ॥५॥

[११८]

हे हरि ! कवन जतन सुख मानहु ।
ज्यों गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम जानहु ॥१॥
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय बच्छपद जैसे ।
रहनि आन बिधि, कहिय आन, हरिपद-सुख पाइय कैसे ॥२॥

देखत चारु मयूर बयन सुभ बोलि सुधा इव सानी ।
सबिष उरग-आहार, निठुर अस, यह करनी वह बानी ॥३॥
अखिल-जीव-बत्सल, निरमत्सर, चरन-कमल-अनुरागी ।
ते तव प्रिय रघुबीर धीरमति, अतिसय निज-पर-त्यागी ॥४॥
जद्यपि मम औगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया ।
तुलसिदास निज गुन बिचारि करुनानिधान करु दाया ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! मैं किस उपायसे अपनेको सुखी समझूँ ? मेरी करनी हाथीके दिखावटी दाँतोंके समान है, यह सब तो तुम भलीभाँति जानते हो। भाव यह कि जैसे हाथीके दाँत दिखानेके और तथा खानेके और होते हैं, उसी प्रकार मैं भी दिखाता कुछ और हूँ, और करता कुछ और ही हूँ ॥१॥ मैं, दूसरोंसे जो कुछ कहता हूँ वैसा ही स्वयं करने भी लगूँ, तो भव-सागरसे बछड़ेके पैरभर जलको लाँघ जानेकी भाँति अनायास ही तर जाऊँ। परन्तु करूँ क्या ? मेरा आचरण तो कुछ और है और कहता हूँ कुछ और ही। फिर भला तुम्हारे चरणोंका या परमपदका आनन्द कैसे मिले ? ॥२॥ मोर देखनेमें तो सुन्दर लगता है और मीठी वाणीसे अमृतसे सने हुए-से वचन बोलता है; किन्तु उसका आहार ज़हरीला साँप है ! कैसा निष्ठुर है ! करनी यह और कथनी वह ! (यही मेरा हाल है) ॥३॥ हे रघुवीर ! तुमको तो वे ही सन्त प्यारे हैं, जो समस्त जीवोंसे प्रेम करते हैं, किसीको भी देखकर तनिक भी नहीं जलते, जो तुम्हारे चरणारविन्दोंके प्रेमी हैं, जो धीर-बुद्धि हैं, जो अपने-परायेका भेद बिल्कुल ही छोड़ चुके हैं, अर्थात् सबमें एक तुमको ही देखते हैं (फिर मैं इन गुणोंसे हीन तुम्हें कैसे

प्रिय लगूँ ?) ॥४॥ हे रघुनाथजी ! यद्यपि मुझमें अनन्त अवगुण हैं और मैं संसारमें ही रहने योग्य हूँ, परन्तु तुम करुणानिधान हो, तनिक अपने गुणोंपर विचार करके ही तुलसीदासपर दया करो ! ॥५॥

[११९]

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ।
देखत, सुनत, बिचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै ॥१॥
भगति-ग्यान-बैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।
कोउ भल कहउ, देउ कछु, असि बासना न उरते जाई ॥२॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।
निज करनी बिपरीत देखि मोहिं समुझि महा भय लागै ॥३॥
जद्यपि भग्न-मनोरथ बिधिबस, सुख इच्छत दुख पावै ।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥४॥
हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे ।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख, हरे बनिहिं प्रभु तोरे ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! मेरा यह (संसारको सत्, नित्य, पवित्र और सुखरूप माननेका) भ्रम किस उपायसे दूर होगा ? देखता है, सुनता है, सोचता है, फिर भी मेरा यह मन अपने स्वभावको नहीं छोड़ता । (और संसारको सत्य सुखरूप मानकर बार-बार विषयोंमें फँसता है) ॥१॥ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी साधन इस मनको शान्त करनेके उपाय हैं, परन्तु मेरे हृदयसे तो यही वासना कभी नहीं जाती कि 'कोई मुझे अच्छा कहे' अथवा 'मुझे कुछ दे ।' (ज्ञान, भक्ति, वैराग्यके साधकोंके

मनमें भी प्रायः बड़ाई और धन-मान पानेकी वासना बनी ही रहती है) ॥२॥ जिस (संसार-रूपी) रातमें सब जीव सोते हैं, उसमें केवल आपका कृपापात्र जन जागता है। किन्तु मुझे तो अपनी करनीको बिल्कुल ही विपरीत देखकर बड़ा भारी भय लग रहा है ॥३॥ यद्यपि दैव-वश—प्रारब्धवश मनुष्यके सारे मनोरथ नष्ट हो जाते हैं, सांसारिक सुख उसके भाग्यमें (पूर्व सुकृतके अभावसे) लिखे ही नहीं गये। तथापि वह सुखोंकी इच्छामात्र कर वैसे ही दुःख पाता है जैसे कोई बिना हाथका चित्रकार (केवल मनोकल्पित) चित्रोंसे अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है और भग्नमनोरथ होकर दुःख पाता है (उसी प्रकार मैं भी भजनसाधनरूप सुकृत किये बिना ही यों ही सुख चाहता हूँ) ॥४॥ आपका हृषीकेश (इन्द्रियोंके स्वामी) नाम सुनकर मैं आपकी बलैया लेता हूँ। मेरे मनमें आपका अत्यन्त भरोसा है। तुलसीदासका इन्द्रिय-जन्य दुःख आपको अवश्य नाश करना ही पड़ेगा ॥५॥

[१२०]

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जबलगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥१॥
अर्थ अबिद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
बिन बाँधे निज हठ सठ परबस परयो कीरकी नाईं ॥२॥
सपने ब्याधि बिबिध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करै जागे बिनु पीर न जाई ॥३॥
श्रुति-गुरु-साधु-सम्रृति-संमत यह दृश्य असत दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, बिपति सकै को टारी ॥४॥

बहु उपाय संसार-तरन कहँ, बिमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसिदास मैं-मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै ॥५॥

भावार्थ—हे हरे ! मेरे इस (संसारको सत्य और सुखरूप आदि माननेके) भारी भ्रमको क्यों दूर नहीं करते ? यद्यपि यह संसार मिथ्या है, असत् है, तथापि जबतक आपकी कृपा नहीं होती, तबतक तो यह सत्य-सा ही भासता है ॥१॥ मैं यह जानता हूँ कि (शरीर-धन-पुत्रादि)विषय यथार्थमें नहीं है, किन्तु हे स्वामी ! इतनेपर भी इस संसारसे छुटकारा नहीं पाता। मैं किसी दूसरेद्वारा बाँधे बिना ही अपने ही हठ (मोह) से तोतेकी तरह परवश बँधा पड़ा हूँ (स्वयं अपने ही अज्ञानसे बँध-सा गया हूँ)॥२॥ जैसे किसीको स्वप्नमें अनेक प्रकारके रोग हो जायँ जिनसे मानों उसकी मृत्यु ही आ जाय और बाहरसे वैद्य अनेक उपाय करते रहें, परन्तु जबतक वह जागता नहीं तबतक उसकी पीड़ा नहीं मिटती (इसी प्रकार मायाके भ्रममें पड़कर लोग बिना ही हुए संसारकी अनेक पीड़ा भोग रहे हैं और उन्हें दूर करनेके लिये मिथ्या उपाय कर रहे हैं, पर तत्त्वज्ञानके बिना कभी इन पीड़ाओंसे छुटकारा नहीं मिल सकता) ॥३॥ वेद, गुरु, सन्त और स्मृतियाँ सभी एक स्वरसे कहते हैं कि यह दृश्यमान जगत् असत् है (और काल्पनिक सत्ता मान लेनेपर) दुःख-रूप है। जबतक इसे त्यागकर श्रीरघुनाथजीका भजन नहीं किया जाता तबतक ऐसी किसकी शक्ति है जो इस विपत्तिका नाश कर सके ? ॥४॥ वेद निर्मल वाणीसे संसार-सागरसे पार होनेके अनेक उपाय बतला रहे हैं, किन्तु हे तुलसीदास ! जबतक 'मैं' और 'मेरा' दूर नहीं हो जाता—अहंता-ममता नहीं मिट जाती, तबतक जीव कभी सुख नहीं पा सकता ॥५॥

[१२१]

हे हरि ! यह भ्रमकी अधिकाई ।
देखत, सुनत, कहत, समुझत संसय-संदेह न जाई ॥ १ ॥
जो जग मृषा ताप-त्रय-अनुभव होइ कहहु केहि लेखे ।
कहि न जाय मृगबारि सत्य, भ्रम ते दुख होइ बिसेखे ॥ २ ॥
सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै ।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै ॥ ३ ॥
अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी ।
सम-संतोष-दया-बिबेक तें, ब्यवहारी सुखकारी ॥ ४ ॥
तुलसिदास सब बिधि प्रपंच जग, जदपि झूठ श्रुति गावै ।
रघुपति-भगति, संत-संगति बिनु, को भव-त्रास नसावै ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! यह भ्रमकी ही अधिकता है कि देखने, सुनने, कहने और समझनेपर भी न तो संशय (असत्य जगत्‌को सत्य मानना) ही जाता है और न सन्देह (एक परमात्माकी ही अखण्ड सत्ता है या कुछ और) ही दूर होता है ॥१॥ (कोई कहे कि) यदि संसार असत्य है, तो फिर तीनों तापोंका अनुभव किस कारणसे होता है ? (संसार असत्य है तो संसारके ताप भी असत्य हैं, परन्तु तापोंका अनुभव तो सत्य प्रतीत होता है) (इसका उत्तर यह है कि) मृगतृष्णाका जल सत्य नहीं कहा जा सकता, परन्तु जबतक भ्रम है, तबतक वह सत्य ही दीखता है, और इसी भ्रमके कारण विशेष दुःख होता है। इसी प्रकार जगत्‌में भी भ्रम-वश दुःखोंका अनुभव होता है ॥२॥ जैसे कोई सुन्दर सेजपर सोया हुआ मनुष्य सपनेमें समुद्रमें डूबनेसे भयभीत हो रहा हो पर जबतक वह स्वयं जाग नहीं जाता,

तबतक करोड़ों नौकाओंद्वारा भी वह पार नहीं जा सकता। उसी प्रकार यह जीव अज्ञाननिद्रामें अचेत हुआ संसार-सागरमें डूब रहा है, परमात्माके तत्त्वज्ञानमें जागे बिना सहस्रों साधनोंद्वारा भी यह दुःखोंसे मुक्त नहीं हो सकता ॥३॥ यह अत्यन्त भयानक संसार अज्ञानके कारण ही मनोरम दिखायी देता है। अवश्य ही उनके लिये यह संसार सुखकारी हो सकता है जो सम, सन्तोष, दया और विवेकसे युक्त व्यवहार करते हैं ॥४॥ हे तुलसीदास ! वेद कह रहे हैं कि यद्यपि सांसारिक प्रपञ्च सब प्रकारसे असत्य है, किन्तु रघुनाथजीकी भक्ति और सन्तोंकी संगतिके बिना किसमें सामर्थ्य है जो इस संसारके भीषण भयका नाश कर सके, इस भ्रमसे छुड़ा सके ? ॥५॥

[१२२]

मैं हरि, साधन करइ न जानी।
जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कहा दिरमानी ॥ १ ॥
सपने नृप कहँ घटै बिप्र-बध, बिकल फिरै अघ लागे।
बाजिमेध सत कोटि करै नहिं सुद्ध होइ बिनु जागे ॥ २ ॥
स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक, प्रगट होइ अबिचारे।
बहु आयुध धरि, बल अनेक करि हारहिं, मरइ न मारे ॥ ३ ॥
निज भ्रम ते रबिकर-संभव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै ॥ ४ ॥
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निरमूल न जाई।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय, तरिय नहिं भाई ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! मैंने (अज्ञानके नाशके लिये) साधन करना नहीं जाना । जैसा रोग था, वैसी दवा नहीं की । इसमें इलाजका क्या दोष है ? ॥१॥ जैसे सपनेमें किसी राजाको ब्रह्महत्याका दोष लग जाय और वह उस महापापके कारण व्याकुल हुआ जहाँ-तहाँ भटकता फिरे, परन्तु जबतक वह जागेगा नहीं तबतक सौ करोड़ अश्वमेध-यज्ञ करनेपर भी वह शुद्ध नहीं होगा, वैसे ही तत्त्वज्ञानके बिना अज्ञानजनित पापोंसे छुटकारा नहीं मिलता ॥२॥ जैसे अज्ञानके कारण मालामें महान् भयावने सर्पका भ्रम हो जाता है और वह (मिथ्या सर्पका भ्रम न मिटनेतक) अनेक हथियारोंके द्वारा बलसे मारते-मारते थक जानेपर भी नहीं मरता, साँप होता तो हथियारोंसे मरता; इसी प्रकार यह अज्ञानसे भासनेवाला संसार भी ज्ञान हुए बिना बाहरी साधनोंसे नष्ट नहीं होता ॥३॥ जैसे अपने ही भ्रमसे सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न हुआ (मृगतृष्णाका) समुद्र बड़ा ही भयावना लगता है, और उस (मिथ्यासागर) में डूबा हुआ मनुष्य बाहरी जहाज या नावपर चढ़नेसे पार नहीं पा सकता (यही हाल इस अज्ञानसे उत्पन्न संसार-सागरका है ।) ॥४॥ तुलसीदास कहते हैं, जब-तक 'मैं'-पनसहित संसारका निर्मूल नाश नहीं होगा, तबतक, हे भाइयो, करोड़ों यत्न कर-करके मर भले ही जाओ, पर इस संसार-सागरसे पार नहीं पा सकोगे ॥५॥

[१२३]

अस कछु समुझि परत रघुराया !
बिनु तव कृपा दयालु ! दास-हित ! मोह न छूटै माया ॥ १ ॥

बाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुन भव-पार न पावै कोई।
निसि गृहमध्य दीपकी बातन्ह, तम निवृत्त नहिं होई ॥२॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन-हीन दुख पावै।
चित्र कलपतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥३॥
षटरस बहुप्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥४॥
जबलगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु बिषय-आस मनमाहीं।
तुलसिदास तबलगि जग-जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ॥५॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! मुझे कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि हे दयालु ! हे सेवक-हितकारी ! तुम्हारी कृपाके बिना न तो मोह ही दूर हो सकता है और न माया ही छूटती है ॥१॥ जैसे रातके समय घरमें केवल दीपककी बातें करनेसे अँधेरा दूर नहीं होता, वैसे ही कोई वाचनिक ज्ञानमें कितना ही निपुण क्यों न हो पर वह संसार-सागरको पार नहीं कर सकता ॥२॥ जैसे कोई एक दीन, दुखिया, भोजनके अभावमें भूखके मारे दुःख पा रहा हो और कोई उसके घरमें कल्पवृक्ष तथा कामधेनुके चित्र लिख-लिखकर उसकी विपत्ति दूर करना चाहे तो कभी दूर नहीं हो सकती। वैसे ही केवल शास्त्रोंकी बातोंसे ही मोह नहीं मिटता ॥३॥ रात-दिन षट्रस भोजनोंपर व्याख्यान देते रहनेसे कुछ भी नहीं होता। भोजन करनेपर भूखकी निवृत्ति होनेसे जो सन्तुष्टि होती है उसके सुखको तो वही जानता है जिसने बिना ही कुछ बोले वास्तवमें भोजन कर लिया है। इसी प्रकार कोरी व्याख्यान-बाजीसे कुछ नहीं होता, करनेपर

कार्य-सिद्धि होती है ॥४॥ जबतक अपने हृदयमें तत्त्व-ज्ञानका प्रकाश नहीं हुआ और मनमें विषयोंकी आशा बनी हुई है, तबतक, हे तुलसीदास! इन जगत्‌की योनियोंमें भटकना ही पड़ेगा, सुख सपनेमें भी नहीं मिलेगा ॥५॥

[१२४]

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा ॥ १ ॥
सत्रु, मित्र, मध्यस्थ, तीनि ये, मन कीन्हें बरिआई।
त्यागन, गहन, उपेच्छनीय, अहि, हाटक, तृनकी नाई ॥ २ ॥
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिधबिधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे ॥ ३ ॥
बिटप-मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये ॥ ४ ॥
रघुपति-भगति-बारि-छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै ॥ ५ ॥

भावार्थ—यदि हमारा मन विकारोंको छोड़ दे, तो फिर द्वैतभावसे उत्पन्न संसारी दुःख, भ्रम और अपार शोक क्यों हो? यह सब मनके विकारोंके कारण ही तो होते हैं ॥१॥ शत्रु, मित्र और उदासीन इन तीनोंकी मनने ही हठसे कल्पना कर रक्खी है। शत्रुको साँपके समान त्याग देना चाहिये, मित्रको सुवर्णकी तरह ग्रहण करना चाहिये और उदासीनकी तृणकी तरह उपेक्षा कर देनी चाहिये। ये सब मनकी ही कल्पनाएँ हैं ॥२॥ जैसे (बहुमूल्य) मणिमें भोजन, वस्त्र, पशु और अनेक

प्रकारकी चीजें रहती हैं वैसे ही स्वर्ग, नरक, चर, अचर और बहुत-से लोक इस मनमें रहते हैं। भाव यह कि छोटी-सी मणिके मोलसे जो चाहे सो खाने, पीने, पहननेकी चीजें खरीदी जा सकती हैं, वैसे ही इस मनके प्रतापसे जीव स्वर्ग-नरकादिमें जा सकता है ॥३॥ जैसे पेड़के बीचमें कठपुतली और सूतमें वस्त्र, बिना बनाये ही, सदा रहते हैं, उसी प्रकार इस मनमें भी अनेक प्रकारके शरीर लीन रहते हैं, जो समय पाकर प्रकट हो जाते हैं ॥४॥ इस मनके विकार कब छूटेंगे, जब श्रीरघुनाथजीकी भक्तिरूपी जलसे धुलकर चित्त निर्मल हो जायगा, तब अनायास ही सत्यरूप परमात्मा दिखलायी देंगे। किन्तु तुलसीदास कहते हैं, इस चैतन्यके विलासरूप जगत्का सत्य तत्त्व परमात्मा समझते-समझते ही समझमें आवेगा ॥५॥

[१२५]

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्री रघुबीर धीर हितकारी ॥ १ ॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥ २ ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा ॥ ३ ॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा ॥ ४ ॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जानि अनाथा ॥ ५ ॥
मैं एक, अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥ ६ ॥
भागेहु नहिं नाथ ! उबारा। रघुनायक, करहु सँभारा ॥ ७ ॥
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा ॥ ८ ॥
चिंता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! हे धैर्यवान् ! (बिना ही उकताये) हित करनेवाले मैं तुम्हें छोड़कर, अपनी दारुण विपत्ति और किसे सुनाऊँ ? ॥१॥ हे नाथ ! मेरा हृदय है तो तुम्हारा निवास-स्थान, परन्तु आजकल उसमें बस गये हैं आकर बहुत-से चोर ! तुम्हारे मन्दिरमें चोरोंने घर कर लिया है ॥२॥ (मैं उन्हें निकालना चाहता हूँ, परन्तु वे लोग बड़े ही कठोर हृदय हैं) सदा जबरदस्ती ही करते रहते हैं । मेरी विनती-निहोरा कुछ भी नहीं मानते ॥३॥ इन चोरोंमें प्रधान सात हैं—अज्ञान, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और ज्ञानका शत्रु काम ॥४॥ हे नाथ ! ये सब बड़ा ही उपद्रव कर रहे हैं, मुझे अनाथ जानकर कुचले डालते हैं ॥५॥ मैं अकेला हूँ और ये उपद्रवी चोर अपार हैं । कोई मेरी पुकारतक नहीं सुनता ॥६॥ हे नाथ ! भाग जाऊँ तो भी इनसे पिंड छूटना कठिन है, क्योंकि ये पीछे लगे ही रहते हैं । अब हे रघुनाथजी ! आप ही मेरी रक्षा कीजिये ॥७॥ तुलसीदास कहता है कि हे राम ! इसमें मेरा क्या जाता है, चोर तुम्हारे ही घरको लूट रहे हैं ॥८॥ मुझे तो इसी बातकी बड़ी चिन्ता लग रही है कि कहीं तुम्हारी बदनामी न हो जाय (आपका भक्त कहलानेपर भी मेरे हृदयके सात्त्विक रत्नोंको यदि काम, क्रोध आदि डाकू लूट ले जायँगे तो इसमें आपकी ही बदनामी होगी । अतएव इस अपने घरकी आप ही सम्हाल कीजिये) ॥९॥

[१२६]

मन मेरे, मानहि सिख मेरी । जो निजु भगति चहै हरि केरी ॥१॥
उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते । सेवहिं ते जे अपनपौ चेते ॥२॥

दुख-सुख अरु अपमान-बड़ाई। सब सम लेखहि बिपति बिहाई ॥३॥
सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥४॥
तुलसिदास बिनु असि मति आये। मिलहिं न राम कपट-लौ लाये ॥५॥

भावार्थ—हे मेरे मन! यदि तू अपने हृदयमें भगवान्‌की भक्ति चाहता है, तो मेरी सीख मान ॥१॥ भगवान्‌ने (गर्भवाससे लेकर अबतक) तेरे ऊपर जो (अपार) उपकार किये हैं उनको याद कर, और अहंकार छोड़कर, बड़ी सावधानीसे तत्पर होकर उनकी सेवा कर ॥२॥ सुख-दुःख, मान-अपमान, सबको समान समझ; तभी तेरी विपत्ति दूर होगी ॥३॥ अरे दुष्ट! इस शरीरको तो कालने ग्रस ही रक्खा है, इसके लिये किसीको दोष मत दे ॥४॥ तुलसीदास कहता है कि ऐसी बुद्धि हुए बिना, केवल कपट-समाधि लगानेसे श्रीरामजी कभी नहीं मिलते, वे तो सच्चे प्रेमसे ही मिलते हैं ॥५॥

[१२७]

मैं जानी, हरिपद-रति नाहीं। सपनेहुँ नहिं बिराग मन माहीं ॥१॥
जे रघुबीर-चरन अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोगसम त्यागे ॥२॥
काम-भुजंग डसत जब जाही। बिषय-नींब कटु लगत न ताही ॥३॥
असमंजस अस हृदय बिचारी। बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥४॥
जब कब राम-कृपा दुख जाई। तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥५॥

भावार्थ—मैंने जान लिया है कि श्रीहरिके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है; क्योंकि सपनेमें भी मेरे मनमें वैराग्य नहीं होता (संसारके भोगोंमें वैराग्य होना ही तो भगवच्चरणोंमें प्रेम होनेकी कसौटी है) ॥१॥ जिनका श्रीरामके

चरणोंमें प्रेम है, उन्होंने सारे विषय-भोगोंको रोगकी तरह छोड़ दिया है॥२॥ जब जिसे कामरूपी साँप डस लेता है, तभी उसे विषयरूपी नीम कड़वी नहीं लगती॥३॥ ऐसा विचारकर हृदयमें बड़ा असमंजस हो रहा है कि क्या करूँ? इसी विचारसे मेरे मनमें नित नया सोच बढ़ता जा रहा है॥४॥ हे तुलसीदास! और कोई उपाय नहीं है; जब कभी यह दुःख दूर होगा, तो बस श्रीराम-कृपासे ही होगा!॥५॥

[१२८]

सुमिरु सनेह-सहित सीतापति। रामचरन तजि नहिंन आनि गति॥१॥
जप, तप, तीरथ, जोग, समाधी। कलिमति-बिकल, न कछु निरुपाधी॥२॥
करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं॥३॥
हरति एक अघ-असुर-जालिका। तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका॥४॥

भावार्थ—रे मन! प्रेमके साथ श्रीजानकी-वल्लभ रामजीका स्मरण कर। क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको छोड़कर तुझे और कहीं गति नहीं है॥१॥ जप, तप, तीर्थ, योगाभ्यास, समाधि आदि साधन हैं; परन्तु कलियुगमें जीवोंकी बुद्धि स्थिर नहीं है इससे इन सभी साधनोंमें विघ्न हैं॥२॥ आज पुण्य करते भी (बुद्धि ठिकाने न होनेसे) पापोंका नाश नहीं होता। रक्तबीज राक्षसकी भाँति ये पाप तो बढ़ते ही जा रहे हैं, भाव यह है कि बुद्धिकी विकलतासे पापमें पुण्य-बुद्धि और पुण्यमें पाप-बुद्धि हो रही है, इससे पुण्य करते भी पाप ही बढ़ रहे हैं॥३॥ हे तुलसीदास! इस पाप-रूपी राक्षसोंके समूहको नाश करनेवाली तो केवल प्रभुकी कृपारूपी कालिकाजी

ही हैं। भगवत्कृपाकी शरण लेनेके सिवा अब अन्य किसी साधनसे काम नहीं निकलेगा ॥४॥

[१२९]

रुचिर रसना तू राम राम राम क्यों न रटत।
सुमिरत सुख-सुकृत बढ़त, अघ-अमंगल घटत ॥ १ ॥
बिनु श्रम कलि-कलुष-जाल कटु कराल कटत।
दिनकरके उदय जैसे तिमिर-तोम फटत ॥ २ ॥
जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ-अटत।
बाँधिबेको भव-गयंद रेनुकी रज्जु बटत ॥ ३ ॥
परिहरि सुर-मनि सुनाम, गुंजा लखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि, तुलसि तोहिं हटत ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सुन्दर जीभ ! तू राम-राम क्यों नहीं रटती? जिस राम-नामके स्मरणसे सुख और पुण्य बढ़ते हैं तथा पाप और अशुभ घटते हैं ॥१॥ रामनाम-स्मरणसे बिना ही परिश्रमके, कलियुगके कटु और भयानक पापोंका जाल वैसे ही कट जाता है, जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकारका समूह फट जाता है ॥२॥ रामनामको छोड़कर योग, यज्ञ, जप, तप, वैराग्य और तीर्थाटन करना वैसा ही है जैसे संसार-रूपी गजराजके बाँधनेके लिये धूलके कणोंकी रस्सी बटना; अर्थात् जैसे धूलकी रस्सीसे हाथीका बाँधना असम्भव है, वैसे ही रामनाम-हीन साधनोंसे मनका परमात्मामें लगना असम्भव है ॥३॥ सुन्दर रामनामरूपी चिन्तामणि छोड़, तू विषयरूपी घुँघचियोंको देखकर उनपर ललचा रही है, तेरा यह तुच्छ लोभ देखकर ही तुलसी तुझे फटकार रहा है ॥४॥

[१३०]

राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।
मंगल-मुद उदित होत, कलि-मल-छल छपत ॥ १ ॥
कहु के लहे फल रसाल, बबुर बीज बपत ।
हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत ॥ २ ॥
काल, करम, गुन, सुभाउ सबके सीस तपत ।
राम-नाम-महिमा की चरचा चले चपत ॥ ३ ॥
साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत ।
कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम-नगर खपत ॥ ४ ॥
नाम सों प्रतीति-प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किये रावन-रिपु तुलसिहु-से अपत ॥ ५ ॥

भावार्थ—राम-नामके जपसे कल्याण और आनन्दका उदय होता है और कलियुगके पाप तथा छल-छिद्र छिप जाते हैं ॥१॥ बबूलका बीज बोकर आजतक किसने आमके फल पाये ? अतएव तू व्यर्थ गप्पें मारकर अपने (दुर्लभ मनुष्य) जन्मको नष्ट मत कर (गप्पोंका फल तो दुर्गति ही होगा; इसलिये राम-नाम जप, इसीमें कल्याण है) ॥२॥ काल, कर्म, गुण (सत्त्व, रज और तम) और स्वभाव ये सभीके सिरों-पर तप रहे हैं, अर्थात् इनके प्रभावसे सभीको दुःख भोगना और कर्म करना पड़ता है; परन्तु श्रीराम-नामकी महिमाकी चर्चा आरम्भ होते ही ये सब दब जाते हैं, इनका कोई प्रभाव नहीं रह जाता (इसलिये राम-नामका जप कर) ॥३॥ लोग बिना ही साधनोंके सारी सिद्धियाँ

पानेके लिये व्याकुल हैं; पर यह कब सम्भव है? हाँ, कलियुगका ढेर-का-ढेर बनिज-व्यापार, माल-मत्ता नाम-नगरमें खप जाता है, अर्थात् कलियुगका पाप-समूह राम-नामके प्रतापसे नष्ट हो जाता है ॥४॥ नाममें विश्वास और प्रेम करनेसे हृदय भलीभाँति स्थिर—शान्त हो जाता है। रामजीके नामने रावण-सरीखे शत्रु और तुलसी-सरीखे पतितको भी पावन कर दिया है ॥५॥

[१३१]

पावन प्रेम राम-चरन-कमल जनम लाहु परम।
रामनाम लेत होत, सुलभ सकल धरम ॥ १ ॥
जोग, मख, बिबेक, बिरति, बेद-बिदित करम।
करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर, नरम ॥ २ ॥
तुलसी सुनि, जानि-बूझि, भूलहि जनि भरम।
तेहि प्रभुको होहि, जाहि सब ही की सरम ॥ ३ ॥

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें विशुद्ध (निष्काम) प्रेमका होना ही जीवनका परम फल है। राम-नाम लेते ही सारे धर्म सुलभ हो जाते हैं ॥१॥ वैसे तो योग, यज्ञ, विवेक, वैराग्य आदि अनेक कर्म वेदोंमें बतलाये गये हैं, जो सुननेमें तो बड़े ही मधुर और कोमल जान पड़ते हैं, परन्तु करनेमें बड़े ही कटु और कठोर हैं ॥२॥ इसलिये, हे तुलसीदास! सुन और जान-बूझकर इस भ्रममें मत भूल, तू तो उस प्रभुका ही (दास) हो जा, जिसे सबकी लाज है! ॥३॥

[१३२]

राम-से प्रीतमकी प्रीति-रहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझ कियत ॥ १ ॥
जहँ-जहँ जेहि जोनि जनम महि, पताल, बियत ।
तहँ-तहँ तू बिषय-सुखहिं, चहत लहत नियत ॥ २ ॥
कत बिमोह लट्यो, फट्यो गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु-सुजस गाइ, क्यों न सुधा पियत ॥ ३ ॥

भावार्थ—श्रीराम-सरीखे प्रीतमसे प्रेम न करके यह जीव व्यर्थ ही जीता है; अरे! जिसको (विषय-सुखको) तू सुख मान रहा है, तनिक विचार तो कर, वह सुख कितना-सा है ? ॥१॥ जहाँ-जहाँ, जिस-जिस योनिमें—पृथ्वी, पाताल और स्वर्गमें—तूने जन्म लिया, तहाँ-तहाँ तूने जिस विषय-सुखकी कामना की, वही प्रारब्धके अनुसार तुझे मिला (परन्तु कहीं भी तू परम सुखी तो नहीं हुआ ?) ॥२॥ क्यों मोहमें फँसकर फटे आकाशके सीनेमें तल्लीन हो रहा है ? भाव यह है कि जैसे आकाशका सीना असम्भव है, वैसे ही सांसारिक विषय-भोगोंमें आनन्द मिलना असम्भव है । इसलिये हे तुलसी ! यदि तुझे आनन्दहीकी इच्छा है, तो प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर गुण-गान कर अमृत क्यों नहीं पीता (जिससे अमर होकर आनन्दरूप ही बन जाय ।) ॥३॥

[१३३]

तोसो हौं फिरि फिरि हित, प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत ।
सुनि मन, गुनि, समुझि, क्यों न सुगम सुमग गहत ॥१॥

छोटो बड़ो, खोटो खरो, जग जो जहँ रहत।
अपनो अपने को भलो कहहु, को न चहत ॥२॥
बिधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ॥३॥
बिषय मुद निहार भार सिर काँधे ज्यों बहत।
योंही जिय जानि, मानि सठ! तू साँसति सहत ॥४॥
पायो केहि घृत बिचारु, हरिन-बारि महत।
तुलसी तकु ताहि सरन, जाते सब लहत ॥५॥

भावार्थ—अरे जीव ! मैं तुझसे बार-बार हितकारी, प्रिय, पवित्र और सत्य वचन कहता हूँ, इन्हें सुनकर, मनमें विचारकर और समझकर भी तू सुगम और सुन्दर रास्ता क्यों नहीं पकड़ता ? अर्थात् श्रीरामकी शरण क्यों नहीं हो जाता ? ॥१॥ छोटा-बड़ा, खोटा-खरा, जो जहाँ संसारमें रहता है, उनमें बता, ऐसा कौन है, जो अपना भला न चाहता हो ? ॥२॥ ब्रह्मासे लेकर छोटे-छोटे कीड़ेतक सुखसे सुखी होते हैं और दुःखसे जलते हैं, पशुपालक ग्वालेकी तरह परमात्मा जीवरूपी पशुओंको (अज्ञानसे) बाँधता (ज्ञानसे) खोलता और उन्हें (कर्मोंमें) जोतता है ॥३॥ विषयोंके सुखोंको देख। वे तो सिरके बोझेको कन्धेपर रखनेके समान हैं। अर्थात् विषय-सुखमें सुख है ही नहीं, इस तरह मनमें समझकर मान जा। अरे मूर्ख ! क्यों कष्ट सह रहा है ? ॥४॥ तनिक विचार तो कर, मृग-तृष्णाके जलको मथकर किसने घी पाया है ? अर्थात् असत् संसारके काल्पनिक पदार्थोंमें सच्चा सुख कैसे मिल सकता है ? हे तुलसी ! तू तो उसी प्रभुकी शरणमें जा, जिससे सब कुछ प्राप्त होता है ॥५॥

[१३४]

तातें हौं बार बार देव ! द्वार परि पुकार करत ।
आरति, नति, दीनता कहें प्रभु संकट हरत ॥१॥
लोकपाल सोक-बिकल रावन-डर डरत ।
का सुनि सकुचे कृपालु नर-सरीर धरत ॥२॥
कौसिक, मुनि-तीय, जनक सोच-अनल जरत ।
साधन केहि सीतल भये, सो न समुझि परत ॥३॥
केवट, खग, सबरि सहज चरनकमल न रत ।
सनमुख तोहिं होत नाथ ! कुतरु सुफरु फरत ॥४॥
बंधु-बैर कपि-बिभीषन गुरु गलानि गरत ।
सेवा केहि रीझि राम, किये सरिस भरत ॥५॥
सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।
ताको लिये नाम राम सब को सुढर ढरत ॥६॥
जाने बिनु राम-रीति पचि पचि जग मरत ।
परिहरि छल सरन गये तुलसिहु-से तरत ॥७॥

भावार्थ—हे नाथ ! मैं तुम्हारे इसी स्वभावको जानकर द्वारपर पड़ा हुआ बार-बार पुकार रहा हूँ कि तुम दुःख, नम्रता और दीनता सुनते ही, हे प्रभो ! सारे संकट हर लेते हो ॥१॥ जब रावणके भयके मारे इन्द्र, कुबेर आदि लोकपाल डरकर शोकसे व्याकुल हो गये थे, तब हे कृपालु ! तुमने क्या सुनकर संकोचसे नरशरीर धारण किया था ? ॥२॥ यह समझमें नहीं आता, कि जो विश्वामित्र, अहल्या और जनक चिन्ताकी अग्निमें जले

जा रहे थे, वे किस साधनसे शीतल हो गये ? ॥३॥ गुह निषाद, पक्षी (जटायु), शबरी आदि स्वभावसे ही तुम्हारे चरण-कमलोंमें रत नहीं थे; किन्तु हे नाथ ! तुम्हारे सामने आते ही (इन) बुरे-बुरे वृक्षोंमें भी अच्छे-अच्छे फल फल गये ! भाव यह कि निषाद, शबरी आदि पापी भी तुम्हारी शरणागतिसे तर गये ॥४॥ अपने-अपने भाईके साथ शत्रुता करनेसे सुग्रीव और विभीषण बड़े भारी दुःखसे गले जाते थे। हे रामजी ! तुमने किस सेवासे रीझकर उन्हें भरतजीके समान मान लिया ॥५॥ हनुमान्‌जी तुम्हारी सेवा करते-करते तुम्हारे ही समान हो गये। हे रामजी ! उनका (हनुमान्‌जीका) नाम लेते ही तुम सबपर भलीभाँति प्रसन्न हो जाते हो ॥६॥ (यह सब क्यों हुआ ? दुःख, नम्रता और दीनताके कारण ही तुमने ऐसा किया) इसलिये हे नाथ ! तुम्हारी (रीझनेकी) रीति न जाननेके कारण ही जगत् अन्यान्य साधनोंमें पच-पचकर मर रहा है। तुम दुखियों, नम्रों और दीनोंपर प्रसन्न होते हो यह जानकर जो तुम्हारी शरण हो जाय वह तो तर ही जाता है, क्योंकि कपट छोड़कर तुम्हारी शरणमें जानेसे तुलसी-जैसे जीव भी तो संसार-सागरसे तर गये ॥७॥

राग सूहो बिलावल

[१३५]

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहिं दियो॥
दियो सुकुल जनम, सरीर सुंदर, हेतु जो फल चारिको।
जो पाइ पंडित परमपद, पावत पुरारि-मुरारिको॥

यह भरतखंड, समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली ।
तेरी कुमति कायर! कलप-बल्ली चहति है बिष फल फली ॥१॥

*　　*　　*　　*

अजहूँ समुझि चित दै सुनु परमारथ ।
है हितु सो जगहूँ जाहिते स्वारथ ॥
स्वारथहि प्रिय, स्वारथ सो का ते कौन बेद बखानई ।
देखु खल, अहि-खेल परिहरि, सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु-मातु, गुरु, स्वामी, अपनपौ, तिय, तनय, सेवक, सखा ।
प्रिय लगत जाके प्रेमसों, बिनु हेतु हित तैं नहिं लखा ॥२॥

*　　*　　*　　*

दूरि न सो हितू हेरि हिये ही है ।
छलहि छाँड़ि सुमिरे छोहु किये ही है ॥
किये छोहु छाया कमल करकी भगतपर भजतहि भजै ।
जगदीस, जीवन जीवको, जो साज सब सबको सजै ॥
हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई ।
सोइ जानकी-पति मधुर मूरति, मोदमय मंगलमई ॥३॥

*　　*　　*　　*

ठाकुर अतिहि बड़ो, सील, सरल, सुठि ।
ध्यान अगम सिवहूँ, भेंट्यो केवट उठि ॥
भरि अंक भेंट्यो सजल नयन, सनेह सिथिल सरीर सो ।
सुर, सिद्ध, मुनि, कबि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुबीर सो ॥

खग,सबरि,निसिचर,भालु,कपि किये आपु ते बंदित बड़े।
तापर तिन्ह कि सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े।।४।।

*   *   *   *

स्वामीको सुभाव कह्यो सो जब उर आनिहै।
सोच सकल मिटिहैं, राम भलो मन मानिहैं।।
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै।
ततकाल तुलसीदास जीवन-जनमको फल पाइहै।।
जपि नाम करहि प्रनाम,कहि गुन-ग्राम, रामहिं धरि हिये।
बिचरहि अवनि अवनीस-चरनसरोज मन-मधुकर किये।।५।।

भावार्थ—अरे ! जिन्होंने तुझे देव-दुर्लभ मनुष्य-शरीर दिया, उन परम प्रेमी श्रीरामजीके साथ तूने प्रेम नहीं किया। उन्होंने ऐसे अच्छे कुलमें जन्म और सुन्दर शरीर दिया है, जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्षका कारणहै। जिसे पाकर ज्ञानी लोग भगवान् शिव अथवा कृष्णके* परमपदको प्राप्त करते हैं। फिर यह भारतवर्ष देश, पास ही देव-नदी गंगाजी, कैसा सुन्दर स्थान है! साथ ही सत्संग भी उत्तम है। इतनेपर भी अरे कायर ! तेरी कुबुद्धिके कारण इन सब साधनोंकी कल्पलता भी (जन्ममरणरूपी) विषैले फल फला चाहती है! अर्थात् इतने सुन्दर साधनोंको पाकर भी तू अपने बुद्धिदोषसे इनका दुरुपयोग ही कर रहा है ॥१॥ अब भी समझ ले। मन लगाकर परमार्थकी बात सुन। वह बात कल्याण करनेवाली है और इस संसारमें भी उससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता है। यदि तुझे स्वार्थ ही अच्छा लगता है, विचार कर, वह कौन है जिससे स्वार्थ प्राप्त होगा, और जिसे वेद गाते हैं (अर्थात् श्रीरामजी ही

---

* इससे यह सिद्ध है कि गोसाईंजी भगवान् शिव, कृष्ण और राममें कोई भेद नहीं मानते थे।

हैं)। अरे दुष्ट ! देख, (विषयरूपी) साँपके साथ खेलना छोड़ दे, उस स्वामीको पहचान, जिस (सबमें रमनेवाले आत्मारूपी राम) के प्रेमके कारण ही पिता, गुरु, स्वामी, शरीर, पुत्र, सेवक, मित्र आदि सब प्रिय जान पड़ते हैं, उस अहैतुक हित करनेवाले परम सुहृद् प्रभुको तूने नहीं पहचाना ॥२॥ वह तेरा हितकारी प्रभु हरि दूर नहीं है, तेरे हृदयमें ही है। छल छोड़कर उसका स्मरण करनेपर वह सदा कृपा किये ही रहता है। भाव यह है, कि परमात्मा हृदयमें तो अवश्य है किन्तु बीचमें कपटका परदा पड़ा है, इसीसे उसका साक्षात्कार नहीं होता। परदा हटा, कि प्यारेका मुखकमल दीखा ! वह कृपा करके अपने भक्तोंपर कर-कमलोंकी छाया किये रहता है, स्वयं सदा उनकी रक्षा करता है। जो उसे भजता है, वह भी उसे भजता है। वह जगत्का ईश्वर है, जीवका जीवन है। जो सबके लिये सब तरहके साज सजाता है, जिसने विष्णुको विष्णुत्व, ब्रह्माको ब्रह्मत्व और शिवको शिवत्व दिया, वह यही श्रीजानकी-नाथ रघुनाथजी-की मधुर आनन्दस्वरूपिणी मंगलमयी मूर्ति है ॥३॥ यद्यपि वह बहुत ही बड़ा स्वामी है, सभीका अधीश्वर है, तथापि वह महान् सुशील, सुन्दर और सरल है। अरे ! जिसका ध्यान शिवको भी दुर्लभ है उसने उठकर केवटको हृदयसे लगा लिया ! हृदयसे लगाकर मिलते ही उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और प्रेमवश शरीर शिथिल-सा हो गया। देवता, सिद्ध, मुनि और कवि कहते हैं, कि श्रीरघुनाथजीके समान कोई भी प्रेमप्रिय नहीं है, उन्हें जितना प्रेम प्यारा लगता है उतना और किसीको नहीं लगता। उन्होंने पक्षी (जटायु), शबरी, राक्षस (विभीषण), रीछ (जाम्बवान् आदि) और बन्दरों (हनुमान्जी आदि) को अपनेसे भी अधिक पूजनीय

बना दिया। (अब शीलकी ओर देखिये) इतनेपर भी वे जब उन लोगों-द्वारा की हुई सेवा याद करते हैं, तब संकोचके मारे मन-ही-मन गड़े-से जाते हैं ॥४॥ प्रभु श्रीरामजीका जो शील-स्वभाव मैंने कहा है उसे जब तू हृदयमें लावेगा, तब तेरी सारी चिन्ताएँ मिट जायँगी और प्रभु रामचन्द्रजी भी मनमें प्रसन्न होंगे। अरे! श्रीरघुनाथजी तो तभी प्रसन्न हो जायँगे, जब तू हाथ जोड़कर मस्तक नवा देगा। तुलसीदास! तू उसी क्षण जन्म और जीवनका फल पा जायगा, अर्थात् तुझे श्रीरामजी दर्शन देंगे। राम-नामका जप कर, रामको प्रणाम कर, उनके गुण-समूहों-का कीर्तन कर, और हृदयमें श्रीरामजीको विराजित कर और अपने मनको जगदीश श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंमें नित्य निवास करने-वाला भ्रमर बनाकर पृथ्वीपर निर्भय विचरण कर ॥५॥

[१३६]

[१]

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो। तबतें देह गेह निज जान्यो ॥
मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमतें दारुन दुख पायो ॥

पायो जो दारुन दुसह दुख, सुख-लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भव-सूल, सोक अनेक जेहि, तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहु जोनि जनम, जरा, बिपति, मतिमंद! हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारु, लखि पायो कहीं ॥

[२]

आनँद-सिंधु-मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृग-भ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥

तहँ मगन मज्जसि, पान करि, त्रयकाल जल नाहीं जहाँ ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल ! भूलि अब आयो तहाँ ॥
निरमल, निरंजन, निरबिकार, उदार सुख तैं परिहर्‍यो ।
निःकाज राज बिहाय नृप इव सपन कारागृह पर्‍यो ॥

[३]

तैं निज करम-डोरि दृढ़ कीन्हीं । अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं ॥
तातें परबस पर्‍यो अभागे । ता फल गरभ-बास-दुख आगे ॥
आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ ।
सिर हेठ, ऊपर चरन, संकट बात नहिं पूछै कोऊ ॥
सोनित-पुरीष जो मूत्र-मल कृमि-कर्दमावृत सोवई ।
कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि-धुनि रोवई ॥

[४]

तू निज करम-जाल जहँ घेरो । श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो ॥
बहुबिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों । परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हों ॥
तोहि दियो ग्यान-बिबेक, जनम अनेककी तब सुधि भई ।
तेहि ईसकी हौं सरन, जाकी बिषम माया गुनमई ॥
जेहि किये जीव-निकाय बस, रसहीन, दिन-दिन अति नई ।
सो करौ बेगि सँभार श्रीपति, बिपति महँ जेहि मति दई ॥

[५]

पुनि बहुबिधि गलानि जिय मानी । अब जग जाइ भजौं चक्रपानी ॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी । प्रसव-पवन प्रेरेउ अपराधी ॥

प्रेरयो जो परम प्रचंड मारुत, कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ग्यान, ध्यान, बिराग, अनुभव जातना-पावक दह्यो॥
अति खेद ब्याकुल, अलप बल, छिन एक बोलि न आवई।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ, सब लोग हरषित गावई॥

[६]

बाल दसा जेते दुख पाये। अति असीम, नहिं जाहिं गनाये॥
छुधा-ब्याधि-बाधा भइ भारी। बेदन नहिं जानै महतारी॥
जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै बिबिध उपाय, जातें अधिक तुव छाती जरै॥
कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
ब्यतिरेक तोहि निरदय! महाखल! आन कहु को सहि सकै॥

[७]

जोबन जुवती सँग रँग रात्यो। तब तू महा मोह-मद मात्यो॥
ताते तजी धरम-मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा॥
बिसरे बिषाद, निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगत-आवर्त संसृतिचक्र जेहि होइ सोइ कियो॥
कृमि-भस्म-बिट-परिनाम तनु, तेहि लागि जग बैरी भयो।
परदार, परधन, द्रोहपर, संसार बाढ़ै नित नयो॥

[८]

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहिं बुलाई॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तनु माहीं॥

सो प्रगट तनु जरजर जराबस, ब्याधि, सूल सतावई ।
सिर-कंप, इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहु न भावई ॥
गृहपालहूतें अति निरादर, खान-पान न पावई ।
ऐसिहु दसा न बिराग तहँ, तृष्णा-तरंग बढ़ावई ॥

[९]

कहि को सकै महाभव तेरे । जनम एकके कछुक गनेरे ॥
चारि खानि संतत अवगाहीं । अजहुँ न करु बिचार मन माहीं ॥

अजहूँ बिचारु, बिकार तजि, भजु राम जन-सुखदायकं ।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुरनायकं ॥
बिनु हेतु करुनाकर, उदार, अपार-माया-तारनं ।
कैवल्य-पति, जगपति, रमापति, प्रानपति, गतिकारनं ॥

[१०]

रघुपति-भगति सुलभ, सुखकारी । सो त्रयताप-सोक-भय-हारी ॥
बिनु सतसंग भगति नहिं होई । ते तब मिलैं द्रवै जब सोई ॥

जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये ।
जेहि दरस-परस-समागमादिक पापरासि नसाइये ॥
जिनके मिले दुख-सुख समान, अमानतादिक गुन भये ।
मद-मोह लोभ-बिषाद-क्रोध सुबोधतें सहजहिं गये ॥

[११]

सेवत साधु द्वैत-भय भागै । श्रीरघुबीर-चरन लय लागै ॥
देह-जनित बिकार सब त्यागै । तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ॥

अनुराग सो निज रूप जो जगतें बिलच्छन देखिये।
संतोष, सम, सीतल सदा दम, देहवंत न लेखिये॥
निरमल, निरामय, एकरस, तेहि हरष-सोक न ब्यापई।
त्रैलोक-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई॥

[१२]

जो तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई॥
जो मारग श्रुति-साधु दिखावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥

पावै सदा सुख हरि-कृपा, संसार-आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत-दरसन, बात कोटिक को कहै॥
द्विज, देव, गुरु, हरि, संत बिनु संसार-पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइये॥

[१]

भावार्थ—हे जीव ! जबसे तू भगवान्‌से अलग हुआ, तभीसे तूने शरीरको अपना घर मान लिया। मायाके वश होकर तूने अपने 'सच्चिदानन्द' स्वरूपको भुला दिया, और इसी भ्रमके कारण तुझे दारुण दुःख भोगने पड़े। तुझे बड़े ही कठिन (जन्म-मरणरूपी) असहनीय दुःख मिले। सुखका तो स्वप्नमें भी लेश नहीं रहा। जिस मार्गमें अनेक संसारी कष्ट और शोक भरे पड़े हैं, तू उसीपर हठपूर्वक बार-बार चलता रहा। अनेक योनियोंमें भटका, बूढ़ा हुआ, विपत्तियाँ सहीं, (मर गया)। पर, अरे मूर्ख ! तूने इतनेपर भी श्रीहरिको नहीं पहचाना ! अरे मूढ़ ! विचारकर देख, श्रीरामजीको छोड़कर (किसीने) क्या कहीं शान्ति प्राप्त की है ?

[२]

हे जीव ! तेरा निवास तो आनन्दसागरमें है, अर्थात् तू आनन्द-स्वरूप ही है, तो भी तू उसे भुलाकर क्यों प्यासा मर रहा है? तू (विषय-भोगरूपी) मृगजलको सच्चा जानकर उसीमें सुख समझकर मग्न हो रहा है। उसीमें डूबकर नहा रहा है और उसीको पी रहा है; परन्तु उस (विषय-भोगरूपी) मृगतृष्णाके जलमें तो (सुखरूपी) सच्चा जल तीन कालमें भी नहीं है। अरे दुष्ट ! तू अपने सहज अनुभव-रूपको भूलकर आज यहाँ आ पड़ा है। तूने अपने उस विशुद्ध, अविनाशी और विकाररहित परम सुखस्वरूपको छोड़ दिया है और व्यर्थ ही (उसी प्रकार दुखी हो रहा है) जैसे कोई राजा सपनेमें राज छोड़कर कैदखानेमें पड़ जाता है और व्यर्थ ही दुखी होता है। अर्थात् सपनेमें भी राजा राजा ही है, परन्तु मोह-वश अपने संकल्पसे राज्यसे वञ्चित होकर कारागारमें पड़ जाता है और जबतक जागता नहीं, तबतक व्यर्थ ही दुःख भोगता है। इसी प्रकार जीव भी सच्चिदानन्दस्वरूपको भ्रमवश भूलकर जगत्‌में अपनेको मायासे बँधा मान लेता है और दुखी होता है।

[३]

तूने स्वयं ही (अज्ञानसे) अपनी कर्मरूपी रस्सी मज़बूत कर ली, और अपने ही हाथोंसे उसमें (अविद्याकी) पक्की गाँठ भी लगा दी। इसीसे हे अभागे ! तू परतन्त्र पड़ा हुआ है। और इसीका फल आगे गर्भमें रहनेका दुःख होगा। संसारमें जो अनेक क्लेशोंके समूह हैं उन्हें वही जानता है जो माताके पेटमें पड़ा है। गर्भमें सिर तो नीचे और पैर ऊपर रहते हैं। इस भयानक संकटके समय कोई बात भी नहीं पूछता। रक्त, मल, मूत्र,

विष्ठा, कीड़े और कीचसे घिरा हुआ (गर्भमें) सोता है। कोमल शरीरमें जब बड़ी भारी वेदना होती है, तब सिर धुन-धुनकर रोता है।

[४]

तू वहाँ अपने कर्म-जालमें फँसा हुआ (दुःख पाता है, परन्तु) श्री-हरिने वहाँ भी तेरा साथ नहीं छोड़ा। (गर्भमें) प्रभुने नाना प्रकारसे तेरा पालन-पोषण किया, और फिर परम कृपालु स्वामीने तुझे वहीं ज्ञान भी दिया। जब तुझे हरिने ज्ञान-विवेक दिया, तब तुझे अपने अनेक जन्मोंकी बातें याद आयीं और तू कहने लगा—'जिसकी यह त्रिगुणमयी माया अति दुस्तर है, मैं उसी परमेश्वरकी शरण हूँ। जिस मायाने जीव-समूहको अपने वशमें करके उनके जीवनको नीरस अर्थात् आनन्दरहित कर दिया है और जो प्रतिदिन अत्यन्त नयी बनी रहती है, (ऐसी मायारूपी) जिस लक्ष्मीके पतिने गर्भकालकी इस विपत्तिमें मुझे ऐसी विवेक-बुद्धि दी है वही मेरी इससे तुरन्त रक्षा करें।'

[५]

फिर तू (पूर्व-जन्मोंमें भजन न करनेके लिये) अपने मनमें बहुत भाँतिसे ग्लानि मानकर कहने लगा कि अबकी बार (संसारमें) जन्म लेकर तो चक्रधारी भगवान्का भजन ही करूँगा। ऐसा विचार कर ज्यों ही चुप हुआ कि प्रसवकालकी पवनने तुझ अपराधीको प्रेरित किया, उस अति प्रचण्ड वायुके द्वारा प्रेरित होकर तूने (जन्मके समय) नाना प्रकारके कष्टोंको सहा। उस समय उस भयानक कष्टकी आगमें तेरा ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और अनुभव सभी कुछ जल गया, अर्थात् मारे कष्टके तू सब भूल गया। अत्यन्त कष्टके कारण तू व्याकुल हो गया और थोड़ा बल होनेसे एक क्षण भी तुझसे बोला नहीं गया। उस समयके तेरे दारुण दुःखको किसीने न जाना, उलटे सब लोग (पुत्र होनेके आनन्दमें) हर्षित होकर गाने लगे।

[६]

फिर बचपनमें तूने जितने महान् कष्ट पाये, वे इतने अधिक हैं कि उनकी गणना करना असम्भव है। भूख, रोग और अनेक बड़ी-बड़ी बाधाओंने तुझे घेर लिया, पर तेरी माँको तेरे इन सब कष्टोंका यथार्थ पता नहीं लगा। माँ यह नहीं जानती कि बच्चा किसलिये रो रहा है, इससे वह बार-बार ऐसे ही उपाय करती है, जिससे तेरी छाती और भी अधिक जले। जैसे अजीर्णके कारण पेट दुखनेसे बच्चा रोता है, पर माता उसे भूखा समझकर और खिलाती है, जिससे उसकी बीमारी बढ़ जाती है। शिशु, कुमार और किशोरावस्थामें तू जो अपार पाप करता है, उसका वर्णन कौन करे ? अरे निर्दय ! महादुष्ट ! तुझे छोड़कर और कौन ऐसा है जो इन्हें सह सकेगा ?

[७]

जवानीमें तू युवती स्त्रीकी आसक्तिमें फँसा, तब तो महान् अज्ञान और मदमें मतवाला हो गया। उस जवानीके नशेमें तूने धर्मकी मर्यादा छोड़ दी और पहले (गर्भमें और लड़कपनमें) जो कष्ट हुए थे, उन सबको भुला दिया (और पाप करने लगा)। पिछले कष्टसमूहोंको भूल गया। (अब पाप करनेसे) आगे तुझे जो संकट प्राप्त होंगे, अरे, उनपर विचार करके तेरी छाती नहीं फट जाती ? जिससे फिर गर्भके गड्ढेमें गिरना पड़े, संसार-चक्रमें आना पड़े, तूने बारम्बार वैसे ही कर्म किये। जिस शरीरका परिणाम (मरनेपर) कीड़ा, राख या विष्ठा होगा, (कब्रमें गाड़नेसे सड़कर कीड़ोंके रूपमें बदल जायगा, जलानेपर राख हो जायगी या जीव-जन्तु खा डालेंगे तो उनकी विष्ठा बन जायगा) उसीके लिये तू सारे संसारका शत्रु बन बैठा। परायी स्त्री और

पराये धन (पर प्रीति) और दूसरोंसे द्रोह, यही संसारमें नित्य नया बढ़ता गया।

[८]

देखते-ही-देखते बुढ़ापा आ पहुँचा, जिसे तूने स्वप्नमें भी नहीं बुलाया था; उस बुढ़ापेका हाल कहा नहीं जाता। उसे अब अपने शरीरमें प्रत्यक्ष देख ले, शरीर जर्जर हो गया है, बुढ़ापेके कारण रोग और शूल सता रहे हैं, सिर हिल रहा है, इन्द्रियोंकी शक्ति चली गयी है। तेरा बोलना किसीको अच्छा नहीं लगता, घरकी रखवाली करनेवाला कुत्ता भी तेरा निरादर करता है अथवा कुत्तेसे भी बढ़कर तेरा निरादर होने लगा। कुत्तेको दूरसे रोटी फेंकते हैं, पर उसे समयपर तो दे देते हैं, तेरी उतनी भी सँभाल नहीं; अधिक क्या, तू खाने-पीनेतकको नहीं पाता। बुढ़ापेमें ऐसी दुर्दशा होनेपर भी तुझे वैराग्य नहीं होता ? इस दशामें भी तू तृष्णाकी तरंगोंको बढ़ाता ही जाता है।

[९]

ये तो तेरे एक जन्मके कुछ थोड़े-से कष्ट गिनाये हैं, ऐसे अनेक बड़े-बड़े जन्मोंकी सबकी कथा तो कौन कह सकता है ? सदा चार खानों (पिण्डज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज) में घूमना पड़ता है। अब भी तू मनमें विचार नहीं करता ! अब भी विचार कर अज्ञानको छोड़ दे, और भक्तोंको सुख देनेवाले भगवान् श्रीरामजीका भजन कर। वे दुस्तर भव-सागरके लिये जहाजरूप हैं, तू उन सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले देवपति भगवान्‌का भजन कर। वे बिना ही हेतु दया करनेवाले हैं, बड़े ही उदार हैं और इस अपार मायासे तारनेवाले हैं। वे मोक्षके, संसारके, लक्ष्मीके और इन प्राणोंके नाथ हैं, एवं मुक्तिके कारण हैं।

[१०]

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति सुलभ और सुखदायिनी है। वह संसारके तीनों ताप, शोक और भयको हरनेवाली है। किन्तु वह भक्ति सत्संगके विना प्राप्त नहीं होती; और सन्त तभी मिलते हैं जब रघुनाथजी कृपा करते हैं। जब दीनदयालु रघुनाथजी कृपा करते हैं तब सन्त-समागम होता है। जिन सन्तोंके दर्शन, स्पर्श और सत्संगसे पाप-समूह समूल नष्ट हो जाते हैं, जिनके मिलनेसे सुख-दुःखमें समबुद्धि हो जाती है, अमानिता आदि अनेक सद्गुण प्रकट हो जाते हैं तथा भलीभाँति परमात्माका बोध हो जानेके कारण मद, मोह, लोभ, शोक, क्रोध आदि सहज ही दूर हो जाते हैं।

[११]

ऐसे साधुओंका सेवन करनेसे द्वैतका भय भाग जाता है, (सर्वत्र परमात्म-बुद्धि हो जानेसे वह निर्भय हो जाता है) श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें ध्यान लग जाता है। शरीरसे उत्पन्न हुए सब विकार छूट जाते हैं, और तब अपने स्वरूपमें—आत्मस्वरूपमें प्रेम होता है। जिसका अपने स्वरूपमें अनुराग हो जाता है, अर्थात् जो आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है उसकी दशा संसारमें कुछ विलक्षण ही हो जाती है। सन्तोष, समता, शान्ति और मन-इन्द्रियोंका निग्रह उसके स्वाभाविक हो जाते हैं, फिर वह अपनेको देहधारी नहीं मानता अर्थात् उसका देहात्म-बोध चला जाता है। वह विशुद्ध, संसार-रोग-रहित, और एकरस (परमात्म-स्वरूपमें नित्य स्थित) हो जाता है। फिर उसे हर्ष-शोक नहीं व्यापता। जिसकी ऐसी नित्य स्थिति हो गयी वह तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला होता है।

[१२]

जो मनुष्य इस मार्गपर मन लगाकर चलता है, भगवान् उसकी सहायता क्यों न करेंगे ? यह जो मार्ग वेद और सन्तोंने दिखा दिया है, उसपर चलनेसे सभी प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति होगी। इस मार्गपर चलनेवाला साधक सांसारिक (विषयोंसे सुखकी) आशाको त्यागकर भगवत्कृपासे नित्य (अद्वैत ब्रह्मके) सुखको प्राप्त करता है। यों तो करोड़ों बातें हैं, उन्हें कौन कहता फिरे ? परन्तु जहाँतक द्वैत दिखलायी भी देता है वहाँतक सपनेमें भी सच्चा सुख नहीं मिल सकता, सच्चा सुख अद्वैत ब्रह्म-स्वरूपमें स्थित होनेमें ही है, इसीको संसार-सागरसे पार होना कहते हैं; परन्तु ब्राह्मण, देवता, गुरु, हरि और सन्तोंकी (कृपा) विना कोई संसार-सागरका पार नहीं पा सकता, यह समझकर तुलसीदास भी (संसारके) भयको दूर करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्के गुण गाता है।

राग बिलावल

[१३७]

जोपै कृपा रघुपति कृपालुकी, बैर औरके कहा सरै।
होइ न बाँको बार भगतको, जो कोउ कोटि उपाय करै ॥१॥
तकै नीचु जो मीचु साधुकी, सो पामर तेहि मीचु मरै।
बेद-बिदित प्रहलाद-कथा सुनि, को न भगति-पथ पाउँ धरै ? ॥२॥
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै।
अंबरीष की साप सुरति करि, अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ॥३॥

सों धौं कहा जु न कियो सुजोधन, अबुध आपने मान जरै।
प्रभु-प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस, पांडवनै* बरिआइ बरै ॥४॥
जोइ जोइ कूप खनैगो परकहँ, सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहुँ सुख न संतद्रोहीकहँ, सुरतरु सोउ बिष-फरनि फरै ॥५॥
हैं काके द्वै सीस ईसके जो हठि जनकी सीवँ चरै।
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय, काहू न डरै ॥६॥

भावार्थ—यदि कृपालु रघुनाथजीकी कृपा है, तो दूसरोंके वैर करनेसे उनका क्या काम निकल सकता है? भक्तका बाल भी बाँका नहीं होता, चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे ॥१॥ जो नीच सन्तकी मौत विचारता है, वह पामर स्वयं उसी मौतसे मरता है। प्रह्लादकी कथा वेदोंमें प्रसिद्ध है, उसे सुनकर ऐसा कौन (अभागा) होगा, जो भक्ति-मार्गपर पैर न रक्खेगा, यानी भक्ति न करेगा? ॥२॥ श्रीहरिने गजराजका उद्धार किया, विभीषणको राज्य-सिंहासनपर बैठाया, ध्रुवको ऐसा अटल पद दे दिया जो कभी हटता ही नहीं और अम्बरीषकी तो बात ही निराली है, महामुनि (दुर्वासा) ने जो उनको शाप दिया था, उसका परिणाम याद करके अब भी वे ग्लानिसे गले जाते हैं, लाजसे मरे जाते हैं ॥३॥ दुर्योधनने अपनी जानमें, ऐसी कौन-सी बुराई है, जो पाण्डवोंके साथ नहीं की। मूर्ख अपने ही घमण्डमें जलता रहा। पर भगवान्‌की कृपासे सौभाग्य, विजय और यशने पाण्डवोंको ही हठपूर्वक अपनाया ॥४॥ जो दूसरेके

---

* 'पांडवनै' पाठ ही शुद्ध है। 'पांडुतनै' पाठ कर देनेवालोंने भूल की है। अवधीमें पाण्डवका बहुवचन कर्मकारकका शुद्ध रूप है 'पांडवनहिं' वा 'पांडवनै'। 'पांडवन्हि' भी लाघवसे बनता है, परन्तु यहाँ एक मात्रा उससे अधिक चाहिये थी।

लिये कुवाँ खोदेगा, वह दुष्ट स्वयं उसीमें गिरेगा। सन्तोंके साथ वैर करनेवालेको स्वप्नमें भी सुख नहीं हो सकता। उसके लिये तो कल्प-वृक्ष भी जहरीले फल ही फलेगा ॥५॥ किसके दो सिर हैं जो भगवान्के भक्तकी सीमा लाँघेगा? हे तुलसीदास! जिसके श्रीरघुनाथजीका बाहु-बल सहायक है, वह सदा निर्भय है, किसीसे भी नहीं डर सकता ॥६॥

[१३८]

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक! धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे ॥१॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों, परम प्रीति केवट भेट्यो ॥२॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीधकहँ, पिंड देइ निजधाम दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो ॥३॥
आयो सरन सभीत बिभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हों ॥४॥
सीतल सुखद छाहँ जेहि करकी, मेटति पाप, ताप, माया।
निसि-बासर तेहि कर-सरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी! हे स्वामी! क्या आप कभी अपने उस कर-कमलको मेरे माथेपर रक्खेंगे, जिससे आपने, परतन्त्रतावश एक बार आपका नाम लेकर पुकार करनेवाले आर्त्त भक्तोंको अभय कर दिया था ॥१॥ जिस कर-कमलसे महादेवजीका कठोर धनुष तोड़कर आपने महाराज जनकका सन्देह दूर किया था और जिस कर-कमलसे गुह निषादको उठाकर भाईके समान बड़े ही प्रेमसे हृदयसे लगा लिया था ॥२॥ हे

कृपालु ! जिस कर-कमलसे आपने (जटायु) गीधको (पिताके समान) पिण्ड-दान देकर अपना परम धाम दिया था, और जिस हाथसे, अपने दासके लिये बालिको मारकर, सुग्रीवको बन्दरोंके कुलका राजा बना दिया था ॥ ३ ॥ जिस कर-कमलसे आपने भयभीत शरणागत विभीषणका राज्याभिषेक किया था और जिस हाथसे धनुष-बाण चढ़ा राक्षसोंका विनाश कर देवताओंको अभय-दान दिया था ॥४॥ तथा जिस कर-कमलकी शीतल और सुखदायक छाया पाप, सन्ताप और मायाका नाश कर डालती है, हे प्रभु ! आपके उसी कर-कमलकी छाया यह तुलसीदास रात-दिन चाहा करता है ॥ ५ ॥

[१३९]

दीनदयालु, दुरित-दारिद-दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है ।
देव दुवार पुकारत आरत, सबकी सब सुख हानि भई है ॥१॥
प्रभुके बचन, बेद-बुध-सम्मत, मम मूरति महिदेवमई है ।
तिनकी मति रिस-राग-मोह-मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
राज-समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है ।
नीति, प्रतीति, प्रीति परमिति पति हेतुबाद हठि हेर हई है ॥३॥
आस्रम-बरन-धरम-बिरहित जग, लोक-बेद-मरजाद गई है ।
प्रजा पतित, पाखंड-पापरत, अपने अपने रंग रई है ॥४॥
सांति, सत्य, सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति, कपट-कलई है ।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥५॥

परमारथ स्वारथ, साधन भये अफल, सफल नहिं सिद्धि सई है ।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर बिबस बिकल जामति न बई है ॥६॥
कलि-करनी बरनिये कहाँ लौं, करत फिरत बिनु टहल टई है ।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है ॥७॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यों ज्यों सीलबस ढील दई है ।
सरुष बरजि तरजिये तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़ेकी जई है ॥८॥
दीजै दादि देखि ना तौ बलि, मही मोद-मंगल रितई है ।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं, राम कृपा-चितवनि चितई है ॥९॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि, करुना-बारि भूमि भिजई है ।
राम-राज भयो काज, सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है ॥१०॥
समरथ बड़ो, सुजान सुसाहब, सुकृत-सैन हारत जितई है ।
सुजन सुभाव सराहत सादर, अनायास साँसति बितई है ॥११॥
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोरि बिरद सदई है ।
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर, अभयबाँह केहि केहि न दई है ॥१२॥

भावार्थ—हे दीनदयालु ! पाप, दारिद्र्य, दुःख और तीन प्रकारके दुःसह दैविक, दैहिक, भौतिक तापोंसे दुनियाँ जली जा रही है। हे भगवन् ! यह आर्त्त आपके द्वारपर पुकार रहा है, क्योंकि सभीके सब प्रकारके सुख जाते रहे हैं ॥१॥ वेद और विद्वानोंकी सम्मति है तथा प्रभुके श्रीमुखके वचन हैं कि ब्राह्मण साक्षात् मेरा ही स्वरूप हैं; पर आज उन ब्राह्मणोंकी बुद्धिको क्रोध, आसक्ति, मोह, मद, लोभ और लालचने निगल लिया है,

अर्थात् वे अपने स्वाभाविक शम-दमादि गुणोंको छोड़कर अज्ञानी, कामी, क्रोधी, घमण्डी और लोभी हो गये हैं ॥ २ ॥ इसी तरह राजसमाज (क्षत्रिय-जाति) करोड़ों कुचालोंसे भर गया है, वे (मनमाने रूपमें लूट-मार, अन्याय, अत्याचार, व्यभिचार, अनाचाररूप) नित्य नयी कुचालें चल रहे हैं और हेतुवाद (नास्तिकता) ने राजनीति, (ईश्वर और शास्त्रपर यथार्थ) विश्वास, प्रेम, धर्मकी और कुलकी मर्यादाका ढूँढ़-ढूँढ़कर नाश कर दिया है ॥३॥ संसार वर्ण और आश्रम-धर्मसे भलीभाँति विहीन हो गया है। लोक और वेद दोनोंकी मर्यादा चली गयी। न कोई लोकाचार मानता है, और न शास्त्रकी आज्ञा ही सुनता है। प्रजा अवनत होकर पाखण्ड और पाप-में रत हो रही है। सभी अपने-अपने रंगमें रँग रहे हैं, यथेच्छाचारी हो गये हैं ॥४॥ शान्ति, सत्य और सुप्रथाएँ घट गयी और कुप्रथाएँ बढ़ गयी हैं तथा (सभी आचरणोंपर) कपट (दम्भ) की कलई हो गयी एवं दुराचार तथा छल-कपटकी बढ़ती हो रही है। साधु पुरुष कष्ट पाते हैं, साधुता शोकग्रस्त है, दुष्ट मौज कर रहे हैं और दुष्टता आनन्द मना रही है अर्थात् बगुला-भक्ति बढ़ गयी है ॥५॥ परमार्थ स्वार्थमें परिणत हो गया अर्थात् ज्ञान, भक्ति, परोपकार और धर्मके नामपर लोग धन बटोरने लगे हैं। (विधि-पूर्वक न करनेसे) साधन निष्फल होने लगे हैं। और सिद्धियाँ प्राप्त होनी बन्द हो गयी हैं, कामधेनुरूपी पृथ्वी कलियुगरूपी गोमर (कसाई) के हाथमें पड़कर ऐसी व्याकुल हो गयी है कि उसमें जो बोया जाता है, वह जमता ही नहीं (जहाँ-तहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं) ॥६॥ कलियुगकी करनी कहाँ-तक बखानी जाय ? यह बिना कामका काम करता फिरता है। इतने-पर भी दाँत पीस-पीसकर हाथ मल रहा है। न जाने इसके मनमें अभी

क्या-क्या है ॥७॥ हे प्रभु ! ज्यों-ज्यों आप शीलवश इसे ढील दे रहे हैं, क्षमा करते जाते हैं, त्यों-ही-त्यों यह नीच सिरपर चढ़ता जाता है। ज़रा क्रोध करके इसे डाँट दीजिये। आपकी तरजनी देखते ही यह कुम्हड़ेकी बतियाकी तरह मुरझा जायगा ॥८॥ आपकी बलैया लेता हूँ, देखकर न्याय कीजिये, नहीं तो अब पृथ्वी आनन्द-मंगलसे शून्य हो जायगी। ऐसा कीजिये, जिसमें लोग बड़भागी होकर प्रेमपूर्वक यह कहें कि श्रीरामजीने हमें कृपादृष्टिसे देखा है (बड़भागी वही है जिसका राम-के चरणोंमें अनुराग है। यह अनुराग श्रीरामकृपासे ही प्राप्त होता है) ॥९॥ मेरी यह विनती सुनकर श्रीरामजीने आनन्दसे मेरी ओर देखा और मुसकराकर करुणाकी ऐसी वृष्टि की जिससे सारी भूमि तर हो गयी। (हृदयका सारा स्थान शान्तिसे पूर्ण हो गया) राम-राज्य होनेसे सब काम सफल हो गये। शुभ शकुन होने लगे, क्योंकि महाराज रामचन्द्रजी जगद्विजयी हैं (हृदयमें उनके विराजित होते ही कलियुग-की सारी सेना भाग गयी) ॥१०॥ सर्वसमर्थ ज्ञानस्वरूप दयालु स्वामीने पुण्य-रूपी सेनाको हारनेसे जिता लिया, सद्भक्त स्वभावसे ही आदर-पूर्वक उनकी सराहना करते हैं, कि नाथने सहज ही सारी यातनाएँ दूर कर दीं ॥११॥ (परन्तु) आप ऐसा क्यों न करते ? आपका तो सदा-से यह बाना चला आता है, कि उजड़े हुएको बसाना और गयी हुई वस्तुको फिरसे दिला देना (जैसे विभीषण और सुग्रीवको राज्यपर बिठा देना, जैसे रावणके भयसे डरे हुए देवताओंको फिरसे स्वर्गमें बसा देना)। हे तुलसी ! दुखियोंके दुःख दूर कर भगवान्‌ने किस-किसको अभय बाँह नहीं दी ? ॥१२॥

[१४०]

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी ।
निसिबासर रुचिपाप असुचिमन,खलमति-मलिन,निगमपथ-त्यागी॥१॥
नहिं सतसंग, भजन नहिं हरिको, स्रवन न राम-कथा-अनुरागी ।
सुत-बित-दार-भवन-ममता-निसि सोवत अति,न कबहुँ मति जागी ॥२॥
तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि,सठ हठि पियत बिषय-बिष माँगी ।
सूकर-स्वान-सृगाल-सरिस जन, जनमत जगत जननि-दुख लागी ॥३॥

भावार्थ—वे अभागे मनुष्य संसारमें नरकरूप होकर जी रहे हैं, जो जन्म-मरण-रूप भवका भञ्जन करनेवाले श्रीभगवान्‌के चरणोंसे विमुख हैं। उनकी रुचि रात-दिन पापोंमें ही लगी रहती है। उनका मन अशुद्ध रहता है। उन दुष्टोंकी बुद्धि मलिन रहती है, और वे वेदोक्त मार्गको छोड़े हुए हैं ॥१॥ न तो वे सन्तोंका संग ही करते हैं, न भगवद्भजन करते हैं और न उनके कानोंको श्रीरामकी कथा प्यारी लगती है। वे तो बस, सदा-सर्वदा स्त्री-पुत्र-धन और मकान आदिकी ममतारूपी रात्रिमें ही अचेत सोते रहते हैं। उनकी बुद्धि (इस 'मेरे मेरे' की निद्रासे) कभी जागती ही नहीं ॥२॥ हे तुलसीदास ! जो दुष्ट श्रीहरि-नाम-रूपी अमृतको छोड़कर हठपूर्वक विषयरूपी जहर माँग-माँगकर (धन-पुत्र आदिकी कामना करके) पीते हैं, वे मनुष्य सूअर, कुत्ते और गीदड़के समान जगत्‌में केवल अपनी माँको दुःख देनेके लिये ही जन्म लेते हैं ॥३॥

[१४१]

रामचंद्र ! रघुनायक ! तुमसों हौं बिनती केहि भाँति करौं ।
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥१॥

पर-दुख दुखी सुखी पर-सुख ते, संत-सील नहिं हृदय धरौं ।
देखि आनकी बिपति परम सुख, सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥२॥
भगति-बिराग-ग्यान साधन कहि बहु बिधि डहकत लोग फिरौं ।
सिव-सरबस सुखधाम नाम तव, बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥३॥
जानत हौं निज पाप जलधि जिय, जल-सीकर सम सुनत लरौं ।
रज-सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम रजतें निदरौं ॥४॥
नाना बेष बनाय दिवस-निसि,पर-बित जेहि तेहि जुगुति हरौं ।
एकौ पल न कबहुँ अलोल चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं ॥५॥
जो आचरन बिचारहु मेरो, कलप कोटि लगि औटि मरौं ।
तुलसिदास प्रभु कृपा-बिलोकनि, गोपद-ज्यों भवसिंधु तरौं ॥६॥

भावार्थ—हे रघुकुलश्रेष्ठ रामचन्द्रजी ! मैं किस प्रकार तुमसे विनय करूँ ? अपने अनेक अघों (पापों) की ओर देखकर और तुम्हारा अनघ (पापरहित) नाम बिचारकर डर रहा हूँ ॥१॥ दूसरेके दुःखसे दुखी तथा दूसरेके सुखसे सुखी होना सन्तोंका शील-स्वभाव है, उसे तो मैं कभी हृदयमें धारण ही नहीं करता । प्रत्युत दूसरोंकी विपत्ति देखकर परम सुखी होता हूँ। और दूसरोंकी सम्पत्ति सुनकर तो विना ही आगके जला करता हूँ ॥२॥ भक्ति, वैराग्य, ज्ञान आदिके साधनोंका उपदेश देता हुआ मैं लोगोंको भाँति-भाँतिसे ठगता फिरता हूँ और शिवके सर्वस्व तथा आनन्द-के धाम तुम्हारे राम-नामको बेच-बेचकर नरकमें ले जानेवाले (पापी) पेटको भरता हूँ ॥३॥ मनमें जानता हूँ कि मेरे पाप समुद्रके समान अपार

हैं; परन्तु जब दूसरे किसीके मुखसे अपने पापोंके लिये जब यह सुनता हूँ, कि मेरेमें पानीकी बूँदके बराबर भी पाप हैं, तब उससे लड़ने लगता हूँ। भाव यह है कि महापापी होनेपर भी लोगोंके मुखसे परम पुण्यात्मा ही कहलाना चाहता हूँ परन्तु दूसरोंके धूलके कणके समान मामूली दोषोंको भी सुमेरुपर्वतके समान बढ़ाकर बतलाता हूँ। और उनके पर्वतके समान (महान्) गुणोंको धूलके समान तुच्छ बतलाकर उनका तिरस्कार करता हूँ (मेरी ऐसी करनी है) ॥४॥ भाँति-भाँतिके भेष बना-बनाकर दिन-रात जिस किसी भी उपायसे दूसरोंका धन हरण करता हूँ। कभी एक पल भी स्थिरचित्त होकर प्रेमसे तुम्हारे चरणकमलोंका स्मरण नहीं करता ॥५॥ यदि तुम मेरे आचरणोंपर विचार करने लगोगे तब तो मुझे करोड़ों कल्पतक संसाररूपी कढ़ावमें औंट-औंटकर जल मरना पड़ेगा, जन्म-मरणसे कभी नहीं छूटूँगा। पर यदि तुम एक बार कृपादृष्टि कर दोगे, तो हे प्रभो! मैं तुलसीदास उसीके प्रभावसे इस संसार-सागर-को गायके खुरके समान सहज ही पार कर जाऊँगा ॥६॥

[१४२]

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि! क्यों करि बिनय सुनावौं।
सकल धरम बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ! मन भावौं ॥१॥
जानत हौं हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावौं।
अंजन-केस-सिखा जुवती, तहँ लोचन-सलभ पठावौं ॥२॥
श्रवननि को फल कथा तुम्हारी, यह समुझौं, समुझावौं।
तिन्ह श्रवननि परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावौं ॥३॥

जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं ।
तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों रटि-रटि जनम नसावौं ।।४।।
'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि', कहि कहि सबहिं सिखावौं ।
हौं निज उर अभिमान-मोह-मद खल-मंडली बसावौं ।।५।।
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन, सो बिनु काज गँवावौं ।
हाटक-घट भरि धरयो सुधा गृह, तजि नभ कूप खनावौं ।।६।।
मन-क्रम-बचन लाइ कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावौं ।
पर-प्रेरित इरषा बस कबहुँक किय कछु सुभ, सो जनावौं ।।७।।
बिप्र-द्रोह जनु बाँट परयो, हठि सबसों बैर बढ़ावौं ।
ताहूपर निज मति-बिलास सब संतन माँझ गनावौं ।।८।।
निगम सेस सारद निहोरि जो अपने दोष कहावौं ।
तौ न सिराहिं कलप सत लगि प्रभु, कहा एक मुख गावौं ।।९।।
जो करनी आपनी बिचारौं, तौ कि सरन हौं आवौं ।
मृदुल सुभाउ सील रघुपतिको, सो बल मनहिं दिखावौं ।।१०।।
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं, जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिझावौं ।
नाथ-कृपा भवसिंधु धेनुपद सम जो जानि सिरावौं ।।११।।

भावार्थ—हे कृपानिधि रामजी ! मुझे बड़ा संकोच हो रहा है, मैं किस प्रकार आपको अपनी विनती सुनाऊँ ? जो कुछ भी मैं करता हूँ, सो सभी धर्मके विरुद्ध करता हूँ। फिर नाथ ! आपको मैं क्यों अच्छा लगने

लगा ?॥१॥ यद्यपि मैं यह जानता हूँ कि सम्पूर्ण जड़-चेतन भगवान् श्रीहरि-का ही रूप है, पर मैं उस हरिस्वरूपको भूलकर भी नहीं देखता। मैं तो अपने नेत्र-रूपी पतंगोंको कामिनीरूपी अग्निकी शिखामें (जलनेके लिये) भेजता हूँ ॥२॥ मैं यह समझता हूँ और दूसरोंको भी समझाता हूँ कि कानोंकी सार्थकता तो आपकी कथा सुननेमें ही है; परन्तु मैं तो उन कानोंसे सदा दूसरोंके दोष सुन-सुनकर, उन्हें हृदयमें भरता और सन्तप्त होता हूँ ॥३॥ जिस जीभसे आपके गुणानुवाद गाकर बिना ही परिश्रमके परमसुख प्राप्त कर सकता हूँ, उस मुखसे (जीभसे) मेढककी नाईं दूसरोंकी निन्दाएँ रट-रटकर अपना जन्म खो रहा हूँ ॥४॥ मैं यह बात सबको सिखाता फिरता हूँ, कि 'हृदयको अत्यन्त शुद्ध कर लो, तभी उसमें भगवान् श्रीहरि बिराजेंगे' किन्तु मैं स्वयं अपने हृदयमें अभिमान, मोह और मद आदि दुष्टोंकी मण्डलीको बसाता हूँ ॥५॥ जिस दुर्लभ मनुष्य-शरीरको धारणकर भक्त-जन भगवान्-के परमपदको प्राप्त करनेकी साधना करते हैं, मैं उसे व्यर्थ ही खो रहा हूँ। घरमें सोनेके घड़ेमें अमृत भरा रक्खा है, पर उसे छोड़कर आकाशमें कुआँ खुदवाता हूँ ॥६॥ मनसे, कर्मसे और वचनसे मैंने जो पाप किये हैं, उन्हें तो मैं यत्न कर-कर बड़े जतनसे छिपाता हूँ। और यदि दूसरोंकी प्रेरणासे अथवा ईर्षावश कहीं कोई शुभ कर्म बन गया है, तो उसे जनाता फिरता हूँ ॥७॥ ब्राह्मणोंके साथ द्रोह करना तो मानो मेरे हिस्सेमें ही आ गया है। जबरदस्ती ही सबसे बैर बढ़ाता फिरता हूँ। इतना (बुद्धिभ्रष्ट) होनेपर भी, मैं सब सन्तोंके बीच बैठकर अपनी बुद्धिके विलासको गिनाता हूँ (उनमें उत्तम ज्ञानी सन्त बनता हूँ) ॥८॥

चारों वेद, शेषनाग और शारदा आदिका निहोरा करके उनसे यदि मैं अपने दोषोंका बखान कराऊँ, तब भी, हे प्रभो! मेरे वे दोष सौ कल्प-तक समाप्त न होंगे! फिर, भला मैं एक मुखसे उनका कहाँतक वर्णन करूँ? ॥९॥ यदि मैं अपनी करनीपर विचार करूँ, तो क्या मैं आपकी शरणमें आनेका साहस भी कर सकूँ? परन्तु श्रीरामजीका बड़ा ही कोमल स्वभाव और असीम शील है, इसी बातका बल मनको दिखाता रहता हूँ ॥१०॥ हे प्रभो! इस तुलसीदासके पास ऐसा एक भी गुण नहीं है, जिससे स्वप्नमें भी आपको रिझा सके। किन्तु हे नाथ! आपकी कृपाके आगे यह संसार-सागर गायके खुरके समान है। यह जानकर जीमें सन्तोष कर लेता हूँ (कि आपकी कृपासे, मैं विपरीत आचरणवाला होनेपर भी संसार-समुद्रसे सहज ही तर जाऊँगा) ॥११॥

[१४३]

सुनहु राम रघुबीर गुसाईं, मन अनीति-रत मेरो।
चरन-सरोज बिसारि तिहारे, निसिदिन फिरत अनेरो ॥१॥
मानत नाहिं निगम-अनुसासन, त्रास न काहू केरो।
भूल्यो सूल करम-कोलुन्ह तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥२॥
जहँ सतसंग कथा माधवकी, सपनेहुँ करत न फेरो।
लोभ-मोह-मद-काम-कोह-रत, तिन्हसों प्रेम घनेरो ॥३॥
पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन सुनत हरख बहुतेरो।
आप पापको नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ॥४॥
साधन-फल, श्रुति-सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो।
सो पर-कर काँकिनी लागि सठ, बेंचि होत हठि चेरो ॥५॥

कबहुँक हौं संगति-प्रभावतें, जाउँ सुमारग नेरो।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो ॥६॥
इक हौं दीन, मलीन, हीनमति, बिपतिजाल अति घेरो।
तापर सहि न जाय करुनानिधि, मनको दुसह दरेरो ॥७॥
हारि परयो करि जतन बहुत बिधि, तातें कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥८॥

भावार्थ–हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! हे स्वामी ! सुनियें—मेरा मन अन्यायमें लगा हुआ है, आपके चरण-कमलोंको भूलकर दिन-रात इधर-उधर (विषयोंमें) भटकता फिरता है ॥१॥ न तो वह वेदकी ही आज्ञा मानता है और न उसे किसीका डर ही है। वह बहुत बार कर्मरूपी कोल्हूमें तिलकी तरह पेरा जा चुका है, पर अब उस कष्टको भूल गया है ॥२॥ जहाँ सत्संग होता है, भगवान्‌की कथा होती है, वहाँ वह मन स्वप्नमें भी भूलकर भी नहीं जाता। परन्तु जो लोभ, मोह, मद, काम और क्रोध-में मग्न रहते हैं, उन्हीं (दुष्टोंसे) वह अधिक प्रेम करता है ॥३॥ दूसरोंके गुण सुनकर वह (डाहके मारे) जला जाता है और दूसरोंके दोष सुनकर बड़ा भारी हरखाता है! स्वयं तो पापोंका नगर बसा रहा है, पर दूसरेके (पापोंके) खेड़ेको भी नहीं देख सकता। भाव यह कि अपने बड़े-बड़े पापों-पर तो कुछ भी ध्यान नहीं देता, परन्तु दूसरोंके जरा-से पापको देखकर ही उनकी निन्दा करता है ॥४॥ आपका राम-नाम सारे साधनोंका फल, वेदोंका सार और संसाररूपी नदीसे पार जानेके लिये बेड़ा है, ऐसे राम-नामको यह दुष्ट दूसरेके हाथमें कौड़ी-कौड़ीके लिये बेचता हुआ

जबरदस्ती उनका गुलाम बनता फिरता है॥५॥ यदि कभी सत्संगके प्रभावसे भगवत्‌के मार्गके समीप जाता भी हूँ तो विषयोंकी आसक्ति उभड़कर मनको तुरन्त सांसारिक बुरी कामनारूपी गड़हेमें धक्का दे देती है॥६॥ एक तो मैं वैसे ही दीन, पापी और बुद्धिहीन हूँ तथा विपत्तियोंके जालमें खूब फँसा पड़ा हूँ, तिसपर, हे करुणानिधि! मनके इस असह्य धक्केको मैं कैसे सह सकता हूँ? ॥७॥ मैं अनेक यत्न करके हार गया, इससे मैं पहलेसे ही कहे देता हूँ कि तुलसीदासका यह भय (जन्म-मरणका त्रास) तभी दूर होगा, जब आप उसके हृदयमें निवास करेंगे ॥८॥

[१४४]

सो धौं को जो नाम-लाज तें, नहिं राख्यो रघुबीर।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरी सकल भव-भीर ॥१॥
बेद-बिदित, जग-बिदित अजामिल बिप्रबंधु अघ-धाम।
घोर जमालय जात निवारयो सुत-हित सुमिरत नाम ॥२॥
पसु पामर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु, हरयो दुसह उर-दाह ॥३॥
ब्याध, निषाद, गीध, गनिकादिक, अगनित औगुन-मूल।
नाम-ओटतें राम सबनिकी दूरि करी सब सूल ॥४॥
केहि आचरन घाटि हौं तिनतें, रघुकुल-भूषन भूप।
सीदत तुलसिदास निसिबासर परयो भीम तम-कूप ॥५॥

भावार्थ—हे रघुवीर! ऐसा कौन है, जिसे आपने अपने नामकी लाजसे अपनी शरणमें नहीं रक्खा? हे हरि! आप तो बिना ही कारण

करुणा करनेवाले और (जन्म-मरण-रूपी) संसारके भयको दूर करनेवाले हैं ॥१॥ वेदमें प्रकट है और संसारमें भी प्रसिद्ध है कि अजामिल जातिका ब्राह्मण महान् पापोंका स्थान था। यमलोक जाते समय जब उसने पुत्रके बहाने आपका 'नारायण' नाम लिया तब आपने उसे यमलोक जानेसे रोक दिया ॥२॥ जब मगरने महान् अभिमानी पामर पशु हाथीको पकड़ लिया, तब उसके एक ही बार स्मरण करनेपर, हे प्रभो! आप वहाँ दौड़े आये और उसकी दुःसह हार्दिक पीड़ाको मिटा दिया (मगरसे छुड़ाकर उसे परमधाम प्रदान कर दिया) ॥३॥ व्याध (वाल्मीकि), निषाद (गुह), गीध (जटायु), गणिका (पिंगला) इत्यादि अगणित जीव जो पापोंकी जड़ थे, परन्तु हे रामजी! आपने अपने नामकी ओटसे इन सबकी सारी पीड़ाओंका नाश कर दिया ॥४॥ हे रघुवंशभूषण महाराज! मैं इन सबोंसे किस आचरणमें कम हूँ? फिर भी मैं तुलसीदास रात-दिन भयानक अज्ञानरूपी कुएँमें पड़ा दुःख भोग रहा हूँ (सबको निकाला है तो अब मुझे भी निकालिये) ॥५॥

[१४५]

कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे।
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत, तहँ तिन्हके दुख दाहे ॥१॥
गज, प्रहलाद, पांडुसुत, कपि, सबको रिपु-संकट मेट्यो।
प्रनत, बंधु-भय-बिकल, बिभीषन, उठि सो भरत ज्यों भेट्यो ॥२॥

मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम इक उर आपने बसावौं।
भजन, बिबेक, बिराग, लोग भले, मैं क्रम-क्रम करि ल्यावौं ॥३॥

सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक, करहिं जोर बरिआईं।
तिन्हहिं उजारि नारि-अरि-धन पुर राखहिं राम गुसाईं ॥४॥

सम-सेवा-छल-दान-दंड हौं, रचि उपाय पचि हार्‌यो।
बिनु कारनको कलह बड़ो दुख, प्रभुसों प्रगटि पुकार्‌यो ॥५॥

सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ, को बिपति-निवारक, भवतारक जग माहीं ॥६॥

तुलसी जदपि पोच, तउ तुम्हरो, और न काहू केरो।
दीजै भगति-बाँह बारक, ज्यों सुबस बसै अब खेरो ॥७॥

भावार्थ—हे कृपासागर! यह तुम्हारा दीन जन तुम्हारे द्वारपर न्याय क्यों नहीं पाता? जब, जहाँपर, दुखियोंने तुम्हें पुकारा, तब वहीं-पर तुमने उनके दुःख दूर कर दिये ॥१॥ गजराज, प्रह्लाद, पाण्डव, सुग्रीव आदि सबके शत्रुओंसे दिये गये कष्ट तुमने दूर कर दिये। भाई रावणके डरसे व्याकुल शरणागत विभीषणको उठाकर तुमने भरतकी नाईं हृदय-से लगा लिया (फिर मेरे लिये ही ऐसा क्यों नहीं होता) ॥२॥ मैं तुम्हारा नाम लेकर अपने हृदयमें एक गाँव बसाना चाहता हूँ और उसमें बसानेके लिये मैं धीरे-धीरे भजन, विवेक, वैराग्य आदि सज्जनोंको इधर-उधरसे लाता हूँ ॥३॥ पर यह सुनकर क्रोधित हो दुष्ट काम, क्रोध, लोभ,

मोह, मद, मात्सर्य आदि जबरदस्ती करते हैं और उन बेचारे भजन आदि भले आदमियोंको निकाल-निकालकर, हे प्रभो ! उस गाँवमें दुष्ट स्त्री, शत्रु और धन आदि नीचोंको ला-लाकर बसाते हैं ॥४॥ साम, दाम, दण्ड, भेद और सेवा-टहल करके तथा और अनेक उपाय करके मैं थक गया हूँ, तब हे प्रभो ! इस बिना ही कारणकी लड़ाईके इस महान् दुःखको आज मैंने तुम्हारे सामने खुलकर निवेदन कर दिया है ॥५॥ (तुम्हारे सिवा यह दुःख और सुनाता भी किसे, क्योंकि) देवता तो स्वार्थी, असमर्थ, अयोग्य और निष्ठुर हैं। उनके चित्तमें तो दया नहीं है। मैं कहाँ जाऊँ ? (तुम्हारे सिवा) कौन विपत्ति दूर करनेवाला है ? कौन इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाला है ? ॥६॥ तुलसी यद्यपि नीच है, पर है तो तुम्हारा ही, और किसीका गुलाम तो नहीं है। अपना जानकर एक बार भक्तिरूपी बाँह दे दो, जिससे यह (तुम्हारे नामका) गाँव अच्छी तरह आबाद हो जाय। अर्थात् हृदयमें तुम्हारी भक्तिके प्रतापसे भजन, ज्ञान, वैराग्यका विकास होकर काम-क्रोधादिका नाश हो जाय ॥७॥

[१४६]

हौं सब बिधि राम, रावरो चाहत भयो चेरो।
ठौर ठौर साहबी होत है, ख्याल काल कलि केरो ॥१॥
काल-करम-इंद्रिय-बिषय गाहकगन घेरो।
हौं न कबूलत, बाँधि कै मोल करत करेरो ॥२॥

बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो।
मैं कह्यो, तब छल-प्रीति कै माँगे उर डेरो ॥३॥
नाम-ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो।
अब गरीब जन पोषिये पाइबो न हेरो ॥४॥
जेहि कौतुक बक/खग स्वानको प्रभु न्याव निबेरो।
तेहि कौतुक कहिये कृपालु! 'तुलसी है मेरो' ॥५॥

भावार्थ—हे रामजी! मैं सब प्रकार आपका दास बनना चाहता हूँ, पर यहाँ तो जगह-जगह साहबी हो रही है। भाव यह कि मन और इन्द्रियाँ सभी मेरे मालिक बन बैठे हैं। यह सब कलिकालके खेल हैं ॥१॥ काल, कर्म और इन्द्रियरूपी ग्राहकोंने मुझे घेर रक्खा है। जब मैं उनके हाथ बिकना क़बूल नहीं करता, तब वे मुझे बाँधकर मुझपर कड़ा दाम चढ़ाते हैं, जैसे-तैसे लालच दिखाकर अपने वशमें करना चाहते हैं ॥२॥ आपका नाम बन्धनसे छुड़ानेवाला है और आपका बाना भी बड़ा है; जब मैंने उन (ग्राहकों) से यह कहा, कि भाई! मैं तो रघुनाथजीके हाथ बिक चुका हूँ, तब वे कपट-प्रेम दिखाकर मुझसे मेरे हृदयमें बसनेके लिये स्थान माँगने लगे (यदि उन्हें स्थान दिये देता हूँ, तो अभी तो वे दीनता दिखा रहे हैं, पर जगह मिल जानेपर धीरे-धीरे उसपर अपना अधिकार जमा लेंगे।) ॥३॥ अबतक मैं आपके नामके सहारेसे बचा रहा, पर अब तो यह कलियुग मुझे जेर किये है। अतएव, अब इस गरीब गुलामका पालन कीजिये, नहीं तो फिर खोजनेसे भी इसका पता न

लगेगा ॥४॥ हे नाथ ! आपने जिस लीलासे पक्षी (उल्लू)का[1] और कुत्तेका[2] फैसला कर दिया था, उसी लीलासे (इस कलियुगसे) यह भी कह दीजिये कि, 'तुलसी मेरा है ।' (इतना कह देनेसे फिर कलियुगका इसपर कुछ भी वश न चलेगा) ॥५॥

[१४७]

कृपासिंधु ताते रहौं निसिदिन मन मारे ।
महाराज ! लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥१॥

---

१ वनमें उल्लू और गीध एक ही घरमें रहते थे । एक दिन गीधने बुरी नीयतसे घरपर अपना अधिकार करना चाहा और उल्लूसे कहा—'हमारा घर खाली कर दो, इसपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं, नहीं मानते तो चलो राजाजीसे न्याय करा लें ।' अन्तमें दोनों श्रीरामजीके दरबारमें आये । रामचन्द्रजीने उल्लूसे कहा—'घर किसका है ? तू उसमें कबसे रहता है ?' उल्लूने उत्तर दिया—'महाराज ! जबसे वृक्षोंकी सृष्टि हुई, तबसे मैं उस घरमें रहता हूँ ।' गीधने कहा कि 'जबसे मनुष्योंकी सृष्टि हुई, तबसे मैं रहता हूँ ।' भगवान्‌ने कहा कि 'वृक्षोंकी सृष्टि मनुष्योंसे पहले हुई है, इसलिये घर उल्लूका ही है, तुम्हारा नहीं । तुम घर खाली कर दो ।'

२ एक दिन श्रीरामजीके राजदरबारमें एक कुत्ता आया और रोता हुआ कहने लगा—'महाराज, तीर्थसिद्धि नामक ब्राह्मणने विना ही अपराध लाठीसे मेरा सिर फोड़ दिया, आप मेरा न्याय कर दीजिये ।' भगवान्‌ने ब्राह्मणको बुलाया और उससे पूछा, कि 'तुमने निरपराध कुत्तेके सिरपर क्यों लाठी मारी ?' ब्राह्मणने कहा, कि 'मैं भीख माँगता फिरता था, इसे मैंने रास्तेसे हटाया, जब यह न हटा, तब मैंने लकड़ी मार दी ।' ब्राह्मणको अदण्डनीय समझकर भगवान् विचार करने लगे। इतनेमें कुत्तेने कहा कि 'भगवन् ! आप इसे कालिंजरका महन्त बना दीजिये । मैं भी पूर्व-जन्ममें एक महन्त था । भक्ष्याभक्ष्य खानेसे मुझे कुत्ता होना पड़ा, महन्ती बहुत बुरी है ।' कुत्तेके कहनेपर भगवान्‌ने उसे कालिंजरका महन्त बना दिया ।

मिले रहैं, मार्‌यौ चहैं कामादि सँघाती ।
मो बिनु रहैं न, मेरियै जारैं छल छाती ॥२॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली ।
कियो कथकको दंड हौं जड़ करम कुचाली ॥३॥
देखी सुनी न आजु लौं अपनायति ऐसी ।
करहिं सबै सिर मेरे ही फिरि परै अनैसी ॥४॥
बड़े अलेखी लखि परैं, परिहरे न जाहीं ।
असमंजसमें मगन हौं, लीजै गहि बाहीं ॥५॥
बारक बलि अवलोकिये, कौतुक जन जी को ।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसीको ॥६॥

भावार्थ—हे कृपासिन्धु ! इसीलिये मैं रात-दिन मन मारे रहता हूँ, कि हे महाराज ! अपनी जाँघ उघाड़नेसे अपनेको ही लाज लगती है ॥१॥ यह काम, क्रोध, लोभ आदि साथी मिले भी रहते हैं और मारना भी चाहते हैं, ऐसे दुष्ट हैं ! ये मेरे बिना रहते भी नहीं और छल करके मेरी ही छाती जलाते हैं । भाव यह कि अपने ही बनकर मारते हैं ॥२॥ ये मेरे हृदयमें बसते हैं, मैंने ऐसा समझकर प्रेमपूर्वक इन सबकी रुचि भी पूरी कर दी है, अर्थात् सब विषय भोग चुका हूँ, फिर भी इन दुष्टों और कुचालियोंने मुझे कत्थककी लकड़ी बना रक्खा है (लकड़ीके इशारेसे जैसे नाच नचाते हैं, वैसे ही ये मुझे नचाते हैं) ॥३॥ ऐसी अपनायत (आत्मीयता) तो आजतक मैंने कहीं भी नहीं देखी-सुनी । कर्म तो करें सब आप, और जो कुछ बुराई हो, वह मेरे सिर

आवें ॥४॥ मुझे ये सब बड़े ही अन्यायी दीखते हैं ! पर छोड़े नहीं जाते । बड़े ही असमञ्जसमें पड़ रहा हूँ । अब हाथ पकड़कर आप ही निकालिये (नहीं तो, अपने-से बने हुए ये मुझे मार कर ही छोड़ेंगे) ॥५॥ आपकी बलैया लेता हूँ, कृपाकर एक बार अपने इस दासका यह कौतुक तो देखिये । आपके देखते ही तुलसीका दुःख सहज ही दूर हो जायगा ॥६॥

[१४८]

कहौं कौन मुहँ लाइ कै रघुबीर गुसाईं ।
सकुचत समुझत आपनी सब साइँ दुहाई ॥ १ ॥
सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो हौं ।
गुनगन सीतानाथके चित करत न हौं हौं ॥ २ ॥
कृपासिंधु बंधु दीनके आरत-हितकारी ।
प्रनत-पाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी ॥ ३ ॥
सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद-प्रीति सुधारी ।
पाइ सुसाहिब राम सों, भरि पेट बिगारी ॥ ४ ॥
नाथ गरीबनिवाज हैं, मैं गही न गरीबी ।
तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे रघुवीर ! हे स्वामी ! कौन-सा मुँह लेकर आपसे कुछ कहूँ ? स्वामीकी दुहाई है, जब मैं अपनी करनीपर विचार करता हूँ, तब संकोचके मारे चुप हो रहता हूँ ॥१॥ सेवा करनेसे वशमें हो जाते हैं, स्मरण करनेसे मित्र बन जाते हैं और शरणमें आनेसे सामने प्रकट हो

जाते हैं। ऐसे आप श्रीसीतानाथजीके गुण-समूहपर भी मैं ध्यान नहीं देता ॥२॥ आप कृपाके समुद्र हैं, दीनोंके वन्धु हैं, दुखियोंके हितू हैं और शरणागतोंके पालनेवाले हैं, आपकी ऐसी विरदावली सुनकर और जानकर भी मैं भूल गया हूँ ॥३॥ मैंने न तो सेवा ही की और न ध्यान ही किया। स्मरण करके आपके चरणोंमें सच्चा प्रेम भी नहीं किया। आप-सरीखे श्रेष्ठ स्वामीको पाकर भी मैंने भर पेट आपसे बुराई ही की ॥४॥ आप गरीबोंपर कृपा करनेवाले हैं, पर मैंने गरीबी धारण नहीं की। (अतएव मेरी ओर देखनेसे तो कुछ भी नहीं होगा), अब हे नाथ! अपनी ओर देखकर ही जो आपसे बन पड़े सो कीजिये ॥५॥

[१४९]

कहाँ जाउँ, कासों कहौं, और ठौर न मेरे।
जनम गँवायो तेरे ही द्वार किंकर तेरे ॥ १ ॥
मैं तो बिगारी नाथ सों आरतिके लीन्हें।
तोहि कृपानिधि क्यों बनै मेरी-सी कीन्हें ॥ २ ॥
दिन-दुरदिन दिन-दुरदसा, दिन-दुख दिन दूषन।
जब लौं तू न बिलोकिहैं रघुबंस-बिभूषन ॥ ३ ॥
दई पीठ बिनु डीठ मैं तुम बिस्व-बिलोचन।
तो सों तुही न दूसरो नत-सोच-बिमोचन ॥ ४ ॥
पराधीन देव दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं।
बोलनिहारे सों करै बलि बिनय कि झाईं ॥ ५ ॥

आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साँचो ।
बड़ी ओट रामनामकी जेहि लई सो बाँचो ॥ ६ ॥
रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है ।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ॥ ७ ॥

भावार्थ—कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ? मुझे कोई और ठौर ही नहीं । इस तेरे गुलामने तो तेरे ही दरवाजेपर (पड़े-पड़े) जिन्दगी काटी है ॥१॥ मैंने तो जो अपनी करनी बिगाड़ी सो हे नाथ ! दुःखोंसे घबराया हुआ होनेके कारण बिगाड़ी । परन्तु हे कृपानिधे ! यदि तू भी मेरी करनीकी ओर देखकर फल देगा तो कैसे काम चलेगा ? ॥२॥ हे रघुकुलमें श्रेष्ठ ! जबतक तू (इस जीवकी ओर कृपादृष्टिसे) नहीं देखेगा, तबतक नित्य ही खोटे दिन, नित्य ही बुरी दशा, नित्य ही दुःख और नित्य ही दोष लगे रहेंगे ॥३॥ मैं जो तुझे पीठ दिये फिरता हूँ, तुझसे विमुख हो रहा हूँ, सो मैं तो दृष्टिहीन हूँ, अन्धा हूँ (अज्ञानी हूँ) पर तू तो सारे विश्वका द्रष्टा है ! (तू मुझसे विमुख कैसे होगा ?) तुझ-सा तो तू ही है, तेरे सिवा दीन-दुखियोंके शोक हरनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥४॥ हे देव ! मैं परतन्त्र हूँ, दीन हूँ, पर तू तो स्वतन्त्र है, स्वामी है । तेरी बलिहारी ! (चैतन्यरूप) बोलनेवालेसे उसकी परछाईं क्या विनय कर सकती है ? ॥५॥ अतएव तू पहले अपनी ओर देख, फिर मेरी ओर देख, तभी इस दासको सच्चा मानना । राम-नामकी ओट बड़ी भारी है । जिस किसीने भी राम-नामकी ओट ले ली वह (जन्म-मरणके चक्रसे) बच गया ॥६॥ हे राम ! तेरी रहन-सहन सदा मेरे हृदयमें हुलस रही है, तेरा शील-स्वभाव विचारकर

मैं मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हो रहा हूँ, कि अब मेरी सारी करनी बन जायगी। बस, यह तुलसी तेरा है, जिस तरह हो, उसी तरह इसपर कृपा कर ॥७॥

[१५०]

रामभद्र ! मोहिं आपनो सोच है अरु नाहीं।
जीव सकल संतापके भाजन जग माहीं ॥ १ ॥
नातो बड़े समर्थसों इक ओर किधौं हूँ।
तोको मोसे अति घने मोको एकै तूँ ॥ २ ॥
बड़ी गलानि हिय हानि है सरबग्य गुसाईं।
कूर कुसेवक कहत हौं सेवककी नाईं ॥ ३ ॥
भलो पोच रामको कहैं मोहि सब नरनारी।
बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब-सिर गारी ॥ ४ ॥
असमंजस मनको मिटै सो उपाय न सूझै।
दीनबन्धु ! कीजै सोई बनि परै जो बूझै ॥ ५ ॥
बिरुदावली बिलोकिये तिन्हमें कोउ हौं हौं।
तुलसी प्रभुको परिहरयो सरनागत सो हौं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे कल्याण-स्वरूप रामचन्द्रजी ! मुझे अपना सोच है भी और नहीं भी है, क्योंकि इस संसारमें जितने जीव हैं वे सभी सन्तापके पात्र हैं, (सभी दुखी हैं) ॥१॥ पर क्या आप-जैसे बड़े समर्थसे सिर्फ एक मेरी ही ओरसे सम्बन्ध है ? (शायद यही हो क्योंकि) आपको तो मेरे-जैसे बहुतेरे हैं, किन्तु मेरे तो एक आप ही हैं ॥२॥ हे नाथ ! आप

तो घट-घटकी जानते हैं, मेरे हृदयमें यही बड़ी ग्लानि हो रही है और इसीको मैं हानि समझता हूँ कि, मैं हूँ तो दुष्ट और बुरा सेवक, नमकहराम नौकर, पर बातें कर रहा हूँ सच्चे सेवक-जैसी। भाव यह है, कि मेरा यह दम्भ आप सर्वज्ञके सामने कैसे छिप सकता है? ॥३॥ परन्तु भला हूँ या बुरा, सब स्त्री-पुरुष मुझे कहते तो रामका ही हैं न? सेवक और कुत्तेके बिगड़नेसे स्वामीके सिर ही गालियाँ पड़ती हैं। भाव यह कि यदि मैं बुराई करूँगा, तो लोग आपको ही बुरा कहेंगे ॥४॥ मुझे वह उपाय भी नहीं सूझ रहा है, कि जिससे चित्तका यह असमञ्जस मिटे अर्थात् मेरी नीचता दूर हो जाय और आपको भी कोई भला-बुरा न कहे। अब हे दीनबन्धु! जो आपको उचित जान पड़े और जो बन सके, वही (मेरे लिये) कीजिये ॥५॥ तनिक अपनी विरदावलीकी ओर तो देखिये! मैं उन्हींमें कोई हूँगा! (भाव यह कि आप दीनबन्धु हैं, तो क्या मैं दीन नहीं हूँ, आप पतित-पावन हैं, तो क्या मैं पतित नहीं हूँ, आप प्रणतपाल हैं, तो क्या मैं प्रणत नहीं हूँ? इनमेंसे कुछ भी तो हूँगा)। (इतनेपर भी) यदि स्वामी इस तुलसीको छोड़ देंगे, तो भी यह उन्हींके सामने शरणमें जाकर पड़ा रहेगा। (आपको छोड़कर कहीं जा नहीं सकता) ॥६॥

[१५१]

जो पै चेराई रामकी करतो न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर-कर न बिकातो ॥ १ ॥

जपत जीह रघुनाथको नाम नहिं अलसातो ।
बाजीगरके सूम ज्यों खल खेह न खातो ॥ २ ॥
जौं तू मन ! मेरे कहे राम-नाम कमातो ।
सीतापति सनमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥ ३ ॥
राम सोहाते तोहिं जौं तू सबहिं सोहातो ।
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥ ४ ॥
राम-नाम अनुरागही जिय जो रतिआतो ।
स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो ॥ ५ ॥
सेइ साधु सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो ।
जनम कोटिको काँदलो हद-हृदय थिरातो ॥ ६ ॥
भव-मग अगम अनंत है, बिनु श्रमहि सिरातो ।
महिमा उलटे नामकी मुनि कियो किरातो ॥ ७ ॥
अमर-अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो ।
होतो मंगल-मूल तू, अनुकूल बिधातो ॥ ८ ॥
जो मन, प्रीति-प्रतीतिसों राम-नामहिं रातो ।
तुलसी रामप्रसादसों तिहुँताप न तातो / नसातो ॥ ९ ॥

भावार्थ—अरे ! जो तू श्रीरामजीकी गुलामी करनेमें न लजाता तो तू खरा दाम होकर भी, खोटे दामकी भाँति इस हाथसे उस हाथ न बिकता फिरता । भाव यह कि परमात्माका सत्य अंश होनेपर भी उनको भूल जानेके कारण जीवरूपसे एक योनिसे दूसरी योनिमें भटकता फिर

रहा है ॥१॥ यदि तू जीभसे श्रीरघुनाथजीका नाम जपनेमें आलस्य न करता, तो आज तुझे बाजीगरके सूमके सदृश धूल न फाकनी पड़ती ॥२॥ अरे मन ! यदि तू मेरा कहा मानकर राम-नामरूपी धन कमाता, तो श्रीजानकी-नाथ रघुनाथजीके सम्मुख उनकी शरणमें आकर सुखी हो जाता और सर्वत्र तेरा आदर होता। लोक-परलोक दोनों बन जाते ॥३॥ जो तुझे श्रीरामजी अच्छे लगे होते, तो तू भी सबको अच्छा लगता; काल, कर्म और कुल आदि जितने (इस जीवके) प्रेरक हैं, वे सब फिर कोई भी तुझपर क्रोध न करते। सभी तेरे अनुकूल हो जाते ॥४॥ यदि तू श्रीराम-नामसे प्रेम करता और उसीमें अपनी लगन लगाता, तो स्वार्थ और परमार्थ इन दोनोंके ही बटोही तुझपर विश्वास करते। अर्थात् तू संसार और परलोक दोनोंमें ही सुखी होता ॥५॥ जो तू सन्तोंकी सेवा करता एवं दूसरोंका दुःख सुन और समझकर दुखी होता, तो तेरे हृदयरूपी तालाबमें जो करोड़ों जन्मोंका मैल जमा है, वह नीचे बैठ जाता, तेरा अन्तःकरण निर्मल हो जाता ॥६॥ श्रीरामका नाम न लेने-वालोंके लिये संसारका मार्ग अगम्य है और अनन्त है, किन्तु उसीको तू बिना ही श्रमके पार कर जाता। जब श्रीरामके उलटे नामकी भी इतनी महिमा है कि उससे व्याध (वाल्मीकि) मुनि बन गये थे, तब सीधा नाम जपनेसे क्या नहीं हो जायगा ? ॥७॥ अरे मूर्ख ! तेरा यह देवताओंको भी दुर्लभ (मानव) शरीर यों ही न चला जाता ! तू कल्याण-का मूल हो जाता और विधाता तेरे अनुकूल हो जाते ॥८॥ अरे मन ! यदि तू प्रेम और विश्वाससे राम-नाममें लौ लगा देता, तो हे तुलसी, श्रीराम-कृपासे, तू तीनों तापोंमें कभी न जलता ॥९॥

[१५२]

राम भलाई आपनी भल कियो न काको।
जुग जुग जानकिनाथको जग जागत साको ॥ १ ॥
ब्रह्मादिक बिनती करी कहि दुख बसुधाको।
रविकुल-कैरव-चंद भो आनंद-सुधाको ॥ २ ॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तियाको।
प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपाको ॥ ३ ॥
हरयो पाप आप जाइकै संताप सिलाको।
सोच-मगन काढ्यो सही साहिब मिथिलाको ॥ ४ ॥
रोष-रासि भृगुपति धनी अहमिति ममताको।
चितवत भाजन करि लियो उपसम समताको ॥ ५ ॥
मुदित मानि आयसु चले बन मातु-पिताको।
धरम-धुरंधर धीरधुर गुन-सील-जिता को ? ॥ ६ ॥
गुह गरीब गतग्याति हू जेहि जिउ न भखा को ? ।
पायो पावन प्रेम तें सनमान सखाको ॥ ७ ॥
सदगति सबरी गीधकी सादर करता को ? ।
सोच-सींव सुग्रीवके संकट-हरता को ? ॥ ८ ॥
राखि बिभीषनको सकै असकाल-गहा / तेहि काल कहाँ को ? ।
आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँको ॥ ९ ॥
बालिस बासी अवधको बूझिये न खाको।
सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि-मन थाको ॥ १० ॥

गति न लहै राम-नामसों बिधि सो सिरजा को ? ।
सुमिरत कहत प्रचारि कै बल्लभ गिरिजाको ॥११॥
अकनि अजामिल की कथा सानंद न भा को ? ।
नाम लेत कलिकालहू हरिपुरहिं न गा को ? ॥१२॥
राम-नाम-महिमा करै काम-भूरुह आको ।
साखी बेद पुरान हैं तुलसी-तन ताको ॥१३॥

भावार्थ—श्रीरामजीने अपने भले स्वभावसे किसका भला नहीं किया ? युग-युगसे श्रीजानकीनाथजीका यह कार्य जगत्में प्रसिद्ध है ॥१॥ ब्रह्मा आदि देवताओंने पृथ्वीका दुःख सुनाकर (जब) विनय की थी, (तब पृथ्वीका भार हरनेके लिये और राक्षसोंको मारनेके लिये) सूर्यवंशरूपी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्ररूप एवं अमृतके समान आनन्द देने-वाले श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए ॥२॥ विश्वामित्र ताड़काका तेज देखकर ओलेकी नाईं गले जाते थे। प्रभुने ताड़काको मारकर, शत्रुको मित्रका-सा फल दिया एवं क्रोधरूपी परम कृपा की। भाव यह है, कि दुष्ट ताड़काको सद्गति देकर उसपर कृपा की ॥३॥ स्वयं जाकर शिला (बनी हुई अहल्या) का पाप-सन्ताप दूर कर दिया, फिर, (धनुष-यज्ञके समय) शोक-सागरमेंसे डूबते हुए मिथिलाके महाराज जनकको निकाल लिया, अर्थात् धनुष तोड़कर उनकी प्रतिज्ञा पूरी कर दी ॥४॥ परशुराम क्रोधके ढेर एवं अहंकार और ममत्वके धनी थे, उन्हें भी आपने देखते ही शान्ति और समताका पात्र बना लिया। अर्थात् वह क्रोधीसे शान्त और अहंकारीसे समद्रष्टा हो गये ॥५॥ माता (कैकेयी) और पिताकी आज्ञा मानकर

प्रसन्नचित्तसे वन चले गये। ऐसा, धर्मधुरन्धर और धीरजधारी तथा सद्‌गुण और शीलको जीतनेवाला दूसरा कौन है? कोई भी नहीं ॥६॥ नीच जातिका गरीब गुह निषाद, जिसने ऐसा कौन जीव है जिसे नहीं खाया हो अर्थात् जो सब प्रकारके जीवोंका भक्षण कर चुका था, उसने भी पवित्र प्रेमके कारण श्रीरघुनाथजीसे सखा-जैसा आदर प्राप्त किया ॥७॥ शबरी और गीध (जटायु) को सत्कारके साथ मोक्ष देनेवाला कौन है? और शोककी सीमा अर्थात् महान् दुखी सुग्रीवका संकट दूर करनेवाला कौन है? (श्रीरामजी ही हैं) ॥८॥ ऐसा कौन कालका ग्रास था, जो (रावणसे निकाले हुए) विभीषणको अपनी शरणमें रखता? जिस रावणके राज्यमें आज भी विभीषण राजा बना बैठा है (यह सब रघुनाथजीकी ही कृपा है) ॥९॥ अयोध्याका रहनेवाला मूर्ख धोबी, जिसमें बुद्धिका नाम भी नहीं था, वह पामर भी वहाँ पहुँच गया, जहाँ पहुँचनेमें मुनियोंका मन भी थक जाता है। (महामुनिगण जिस परम धामके सम्बन्धमें तत्त्वका विचार भी नहीं कर सकते, वह धोबी वहीं चला गया) ॥१०॥ ब्रह्माने ऐसा किसे रचा है, जो राम-नाम लेकर मुक्तिका भागी न हो? पार्वतीवल्लभ शिवजी (जिस) राम-नामका स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरोंको उपदेश देकर उसका प्रचार करते हैं ॥११॥ अजामिलकी कथा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं हुआ? और राम-नाम लेकर, इस कलिकालमें भी कौन भगवान् हरिके परम धाममें नहीं गया? ॥१२॥ राम-नामकी महिमा ऐसी है कि वह आकके पेड़को भी कल्पवृक्ष बना सकती है। वेद और पुराण इस बातके साक्षी हैं (इसपर भी विश्वास न हो, तो) तुलसीकी ओर देखो। भाव यह है, कि मैं क्या था और अब राम-नामके प्रभावसे कैसा राम-भक्त हो गया हूँ ॥१३॥

[१५३]

मेरे रावरियै गति है रघुपति बलि जाउँ ।

निलज नीच निरधन निरगुन कहँ, जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥ १ ॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाउँ ।
बानर-बंधु बिभीषन-हितु बिनु, कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥ २ ॥
प्रनतारति-भंजन जन-रंजन, सरनागत पबि-पंजर नाउँ ।
कीजै दास दासतुलसी अब, कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! आपपर बलिहारी जाता हूँ, मुझे तो बस आपकी ही शरण है । क्योंकि इस निर्लज्ज, नीच, कंगाल और गुणहीनके लिये संसारमें (आपको छोड़कर) न तो कोई मालिक है, और न कोई ठौर-ठिकाना ही ॥१॥ वैसे तो घर-घर बहुतेरे अच्छे-अच्छे मालिक हैं, किन्तु उन सबको अपना ही स्वार्थ सूझता है । मैं तो बन्दर (सुग्रीव) के मित्र और विभीषणके हितैषी कोशलेश श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और कहीं भी शरण नहीं पा सकता, और किसी मालिकके यहाँ मेरा टिकाव नहीं हो सकता ॥२॥ आप आश्रितोंके दुःखोंका नाश करनेवाले और भक्तोंको सुख देनेवाले हैं । शरणागतोंके लिये तो आपका नाम ही वज्रके पिंजरेके समान है । भाव यह कि आपका नाम लेते ही वे तो सुरक्षित हो जाते हैं । अतः हे कृपासागर ! अब तुलसीदासको तो अपना दास बना ही लीजिये । मैं अब बिना ही मोलके (आपके हाथमें) बिकना चाहता हूँ ॥३॥

[१५४]

देव ! दूसरो कौन दीनको दयालु ।

सीलनिधान सुजान-सिरोमनि, सरनागत-प्रिय प्रनत-पालु ॥ १ ॥

को समरथ सरबग्य सकल प्रभु, सिव-सनेह-मानस मरालु ।

को साहिब किये मीत प्रीतिबस खग निसिचर कपि भील भालु ॥ २ ॥

नाथ हाथ माया-प्रपंच सब, जीव-दोष-गुन-करम-कालु ।

तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजिये निहालु ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे देव ! (आपके सिवा) दीनोंपर दया करनेवाला दूसरा कौन है ? आप शीलके भण्डार, ज्ञानियोंके शिरोमणि, शरणागतोंके प्यारे और आश्रितोंके रक्षक हैं ॥१॥ आपके समान समर्थ कौन है ? आप सब जाननेवाले हैं, सारे चराचरके स्वामी हैं, और शिवजीके प्रेमरूपी मानसरोवरमें (विहार करनेवाले) हंस हैं। (दूसरा) कौन ऐसा स्वामी है जिसने प्रेमके वश होकर पक्षी (जटायु), राक्षस (विभीषण), बन्दर, भील (निषाद) और भालुओंको अपना मित्र बनाया है ? ॥२॥ हे नाथ ! मायाका सारा प्रपञ्च एवं जीवोंके दोष, गुण, कर्म और काल सब आपके ही हाथ हैं। यह तुलसीदास, भला हो या बुरा, आपका ही है। तनिक इसकी ओर कृपादृष्टि कर इसे निहाल कर दीजिये ॥३॥

राग सारंग

[१५५]

बिस्वास एक राम-नामको ।

मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बामको ॥ १ ॥

पढ़िबो पर्‌यो न छठी छ मत रिगु जजुर अथर्वन सामको ।
ब्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि मरै करै तन छाम को ? ॥ २ ॥
करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दामको ।
ग्यान बिराग जोग जप तप, भय लोभ मोह कोह कामको ॥ ३ ॥
सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुन-ग्रामको ।
बैठे नाम-कामतरु-तर डर कौन घोर घन घामको ॥ ४ ॥
को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर पर-धामको ।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलामको ॥ ५ ॥

भावार्थ–मुझे तो एक राम-नामका ही विश्वास है। मेरे कुटिल मनका कुछ ऐसा ही स्वभाव है, कि वह और कहीं विश्वास ही नहीं करता ॥१॥ छः (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त) शास्त्रोंका तथा ऋक्, यजु, अथर्वण और साम वेदोंका पढ़ना तो मेरी छठीमें ही नहीं पड़ा (भाग्यमें ही नहीं लिखा गया) है, और व्रत, तीर्थ, तप आदिका तो नाम सुनकर मन डर रहा है। कौन (इन साधनोंमें) पच-पचकर मरे या शरीरको क्षीण करे? ॥२॥ कर्मकाण्ड (यज्ञादि) कलियुगमें कठिन है, और उनका होना भी धनके अधीन है। (अब रहे) ज्ञान, वैराग्य, योग, जप और तप आदि साधन, सो इनके करनेमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिका भय लगा है ॥३॥ इस भव (संसार) में श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहको गानेवाले ही सदा सब प्रकारसे योग्य हैं। जो राम-नामरूपी कल्पवृक्षकी छायामें बैठे हैं, उन्हें घनघोर घटा (तमोमय अज्ञान) अथवा तेज धूप (विषयोंकी चकाचौंध)

का क्या डर है? भाव यह है, कि वे अज्ञानके वश होकर विषयोंमें नहीं फँस सकते। इससे पाप-ताप उनसे सदा दूर रहते हैं ॥४॥ कौन जानता है, कि कौन नरक जायगा, कौन स्वर्ग जायगा और कौन परमधाम जायगा? तुलसीदासको तो इस संसारमें रामजीका गुलाम होकर जीना ही बहुत अच्छा लगता है ॥५॥

[१५६]

कलि नाम कामतरु रामको।

दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन घामको ॥ १ ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, बाम बिधाता बामको।
कहत मुनीस महेस महातम, उलटे सूधे नामको ॥ २ ॥
भलो लोक-परलोक तासु जाके बल ललित-ललामको।
तुलसी जग जानियत नामते सोच न कूच मुकामको ॥ ३ ॥

भावार्थ—कलियुगमें श्रीराम-नाम ही कल्पवृक्ष है। क्योंकि, वह दारिद्र्य, दुर्भिक्ष, दुःख, दोष और घनघटा (अज्ञान) तथा कड़ी धूप (विषय-विलास) का नाश करनेवाला है ॥१॥ राम-नाम लेते ही प्रतिकूल विधाताका प्रतिकूल मन भी अनुकूल हो जाता है। मुनीश्वर वाल्मीकिने उलटे अर्थात् 'मरा मरा' नामकी महिमा गायी है और शिवजीने सीधे राम-नामका माहात्म्य बताया है। तात्पर्य यह है, कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि व्याधासे ब्रह्मर्षि हो गये और शिवजी सीधा नाम जपनेसे हलाहल विषका पान कर गये तथा स्वयं भगवत्स्वरूप माने गये ॥२॥ जिसे इस परम सुन्दर राम-नामका बल है, उसके लोक और परलोक

दोनों ही सुखमय हैं। हे तुलसी! राम-नामका बल होनेपर न तो इस संसार-से जानेमें सोच प्रतीत होता है और न यहाँ रहनेमें ही। भाव यह कि उसके लिये परमानन्दमें मग्न रहनेके कारण जीवन-मरण समान हो जाते हैं ॥३॥

[१५७]

सेइये सुसाहिब राम सो।
सुखद सुसील सुजान सूर सुचि, सुंदर कोटिक काम सो ॥ १ ॥
सारद सेस साधु महिमा कहैं, गुनगन-गायक साम सो।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति चाहत चंद्र-ललाम सो ॥ २ ॥
गमन बिदेस न लेस कलेसको, सकुचत सकृत प्रनाम सो।
साखी ताको बिदित बिभीषन, बैठो है अबिचल धाम सो ॥ ३ ॥
टहल सहल जन महल-महल, जागत चारो जुग जाम सो।
देखत दोष न खीझत, रीझत सुनि सेवक गुन-ग्राम सो ॥ ४ ॥
जाके भजे तिलोक-तिलक भये, त्रिजग जोनि तनु तामसो।
तुलसी ऐसे प्रभुहिं भजै जो न ताहि बिधाता बाम सो ॥ ५ ॥

भावार्थ—श्रीराम-सरीखे सुन्दर स्वामीकी सेवा करनी चाहिये। जो सुख देनेवाले, सुशील, चतुर, वीर, पवित्र और करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं ॥१॥ सरस्वती, शेषनाग और सन्तजन जिनकी महिमाका बखान करते हैं। सामवेद-सरीखे जिनके गुणोंका गान करते हैं। शिवजी-सरीखे भी जिनके नामका प्रेमपूर्वक स्मरण करते हुए प्रेम करना चाहते हैं ॥२॥ जिन्हें (पिताकी आज्ञासे) विदेश अर्थात् वन जाते समय तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। जिन्हें एक बार भी कोई प्रणाम कर लेता है, तो संकोचके मारे दब जाते हैं, इस बातका साक्षी विभीषण प्रसिद्ध है, कि जो आज भी (लंकामें) अटल राज्य कर रहा है ॥३॥ जिनकी चाकरी करना बड़ा

सहल है (क्योंकि वे सेवककी भूल-चूककी ओर देखते ही नहीं); जो अपने भक्तोंके घट-घटमें, चारों युगोंमें चारों पहर, जागते रहते हैं। (हृदयमें बैठकर सदा रखवाली करते हैं।) अपराध देखते हुए भी सेवकपर क्रोध नहीं करते। परन्तु जब अपने सेवककी गुणावली सुनते हैं, तब उसपर रीझ जाते हैं ॥४॥ जिन्हें भजनेसे, तिर्यक् योनिके (पशु-पक्षी) एवं तामसी शरीरवाले (राक्षस) भी तीनों लोकोंके तिलक बन गये। हे तुलसी ! ऐसे (सुखद, सुशील, सुन्दर, भक्तवत्सल, चतुर, पतितपावन) प्रभुको जो नहीं भजते उनपर विधाता प्रतिकूल ही है ॥५॥

राग नट

[१५८]

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥ १ ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥ २ ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि।
संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥ ३ ॥
करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥ ४ ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों, गरे आसा-डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥ ५ ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥ ६ ॥

भावार्थ—स्वामीको कैसे दोष दूँ ? हे हरे ! मेरा मन तुम्हारी भक्तिको छोड़कर कामनाओंमें फँसा हुआ इधर-उधर भटका करता है ॥१॥ अपने पुजानेमें तो मेरा बड़ा प्रेम है, सदा यही चाहता हूँ, कि लोग मुझे ज्ञानी-भक्त मानकर पूजा करें; किन्तु तुम्हें पूजनेमें मेरी बहुत ही कम प्रीति है। दूसरोंको तो खूब सीख दिया करता हूँ, पर स्वयं किसीकी शिक्षा नहीं मानता। मेरी ऐसी मूर्खता है ॥२॥ जिन-जिन पापोंको मैंने बड़े अनुरागसे किया था, उन्हें तो हृदयमें छिपाकर रखता हूँ। पर कभी किसी अच्छे संगके प्रभावसे (बिना ही प्रेम) मुझसे जो कोई अच्छे काम बन गये हैं, उन्हें दुनियाको निहोरा कर-कर सुनाता फिरता हूँ। भाव यह, कि मुझे कोई पापी न समझकर बड़ा धर्मात्मा समझे ॥३॥ कभी जो कुछ सत्कर्म बन जाता है उसे खेतमें पड़े हुए अन्नके दानोंकी तरह बटोर-बटोरकर रख लेता हूँ, किन्तु हे दयानिधान ! दम्भ जबरदस्ती हृदयमें घुसकर उसे बाहर निकाल फेंकता है। भाव यह है, कि दम्भ बढ़कर थोड़े-बहुत सुकृतको भी नष्ट कर देता है ॥४॥ इसके सिवा लोभ मेरे मनको आशारूपी रस्सीसे इस तरह नचा रहा है, जैसे बाजीगर बन्दरके गलेमें डोरी बाँधकर उसे मनमाना नचाता है (इतनेपर भी मैं दम्भसे) एक बड़े पण्डितकी नाईं परम वैराग्यके तत्त्वकी बातें बना-बनाकर सुनाता फिरता हूँ ॥५॥ इतना (दम्भी) होनेपर भी मैं तुम्हारा (दास) कहाता हूँ। लाजको तो मानों मैं घोलकर ही पी गया हूँ। हे रघुनाथजी ! तुम उदार हो, इस निर्लज्जतापर ही रीझकर तुलसीका बन्धन काट दो। (मुझे भव-बन्धनसे मुक्त कर दो) ॥६॥

[१५९]

है प्रभु ! मेरोई सब दोसु ।

सीलसिंधु कृपालु नाथ अनाथ आरत-पोसु ॥१॥

बेष बचन बिराग मन अघ अवगुननिको कोसु ।

राम प्रीति-प्रतीति पोली, कपट-करतब ठोसु ॥२॥

राग-रंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु ।

चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥३॥

संभु-सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।

दंभहू कलि नाम कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥४॥

मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।

रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम परितोसु ॥५॥

भावार्थ—हे प्रभो ! सब मेरा ही दोष है। आप तो शीलके समुद्र, कृपालु, अनाथोंके नाथ और दीन-दुखियोंके पालने-पोसनेवाले हैं ॥१॥ मेरे भेष और वचनोंमें तो वैराग्य दीखता है, किन्तु मेरा मन पापों और अवगुणोंका खजाना है। हे रामजी ! आपके प्रेम और विश्वासके लिये मेरा मन पोला है अर्थात् उसमें तनिक भी प्रेम और विश्वास नहीं है; हाँ, कपटकी करनीके लिये तो खूब ठोस है, कपट-ही-कपट भरा है ॥२॥ जैसे खरगोश सियारकी सेवा करके सिंहकी कीर्ति चाहता है, वैसे ही मैं कुसंगतिसे तो प्रेम करता हूँ और साधुओंके संगमें झुँझलाया करता हूँ। (जैसे खरगोश गीदड़के बलपर सिंहकी-सी कीर्ति चाहता है, पर सियार तो उसे खा ही डालता है। कीर्तिके बदले प्राण ही चले

जाते हैं। इसी प्रकार जो कुसंगमें पड़कर कीर्ति चाहता है, उसे कीर्तिका मिलना तो दूर रहा, उसके सद्गुणोंका भी नाश हो जायगा, जिससे बारम्बार मृत्युके चक्रमें जाना पड़ेगा।) ॥३॥ शिवजीका उपदेश यही है, कि 'नित्य जीभसे राम-नामका कीर्त्तन करो।' कलियुगमें दम्भसे भी लिया हुआ राम-नाम अगस्त्यकी तरह दुःख-सागरको सोख लेता है (दम्भसे लिया हुआ नाम भी लोक-परलोक दोनोंकी चिन्ताओंको दूर कर देता है) ॥४॥ वह राम-नाम आनन्द और कल्याणकी जड़ है। श्रीराम-नाम अपने लिये ऐसा अत्यन्त अनुकूल है कि जिसकी किसी अनुकूलतासे तुलना नहीं हो सकती। राम-नामका ऐसा प्रभाव सुनकर तुलसीको भी परम सन्तोष है (क्योंकि यही उसका अवलम्बन है) ॥५॥

[१६०]

मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ॥१॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ॥२॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक सुरपुर* मने।
दासतुलसी सरन आयो, राखिये आपने ॥३॥

---

* आजकलकी प्रचलित प्रतियोंमें प्रायः 'नरक जमपुर मने' पाठ है। परन्तु मैंने एक प्राचीन प्रतिमें 'नरक सुरपुर मने' पाठ देखा था और यही ठीक मालूम होता है, क्योंकि नरक और यमपुर एकार्थवाचक होनेसे पुनरुक्ति-दोष आता है; इसके सिवा बिना जाने भी अन्तकालमें भगवान्-का नाम लेनेवालेकी मुक्ति बतायी गयी है, न कि स्वर्गगमन; इसलिये यही पाठ ठीक है।

भावार्थ—हे हरे ! मैंने तुम्हें पतितोंको पवित्र करनेवाला सुना है। सो मैं तो पतित हूँ और तुम पतितपावन हो; बस दोनोंके बानक बन गये, दोनोंका मेल मिल गया। (अब मेरे पावन होनेमें क्या सन्देह है ?) ॥१॥ वेद साक्षी दे रहे हैं, कि तुमने व्याध (वाल्मीकि), गणिका (पिंगला वेश्या), गजेन्द्र और अजामिलको तथा और भी अनेक नीचों-को संसार-सागरसे पार कर दिया है, जिनकी गिनती ही किससे हो सकती है ? ॥२॥ जिन्होंने जानकर या बिना जाने तुम्हारा नाम ले लिया, उन्हें नरक और स्वर्गमें जानेकी मनाई कर दी गयी है। अर्थात् वे भवसागरसे पार होकर मुक्त हो जाते हैं (यह सब समझ-बूझकर ही अब) तुलसी भी तुम्हारी शरणमें आया है, इसे भी अपना लो ॥३॥

राग मलार

[१६१]

तो सों प्रभु जो पै कहूँ कोउ होतो ।

तौ सहि निपट निरादर निसिदिन, रटि लटि ऐसो घटि को तो ॥१॥

कृपा-सुधा-जलदान माँगिबो कहौं सो साँच निसोतो ।

स्वाति-सनेह-सलिल-सुख चाहत चित-चातक सोपोतो ॥२॥

काल-करम-बस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कुछ भो तो ।

ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ॥३॥

जितो दुराव दासतुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो ।

तेरे राज राय दसरथ के, लयो बयो बिनु जोतो ॥४॥

भावार्थ–यदि तुझ-सरीखा कहीं कोई दूसरा (समर्थ स्वामी) होता, तो भला ऐसा कौन क्षुद्र था, जो निपट ही निरादर सहकर एवं दिन-रात तेरा नाम रट-रटकर दुबला होता? ॥१॥ मैं जो तुझसे कृपारूपी अमृतजल माँग रहा हूँ, वह सचमुच ही निराला है। मेरा चित्तरूपी चातकका बच्चा प्रेमरूपी स्वातिनक्षत्रका आनन्दरूपी जल चाहता है ॥२॥ काल तथा कर्मके प्रभावसे यदि कभी-कभी मनमें कोई बुरी कामना आ जाती है, (जिससे तेरी ओरसे चित्त हटने लगता है) तो वह ऐसा ही है, जैसे आनन्दसे जलमें रहती हुई मछली कभी-कभी उछलकर फिर घबराकर उसीमें गोता लगा जाती है (जैसे मछलीको क्षणभरका भी जलका वियोग सहन नहीं होता, वैसे ही मेरा चित्त-चातक तेरे प्रेम-जलसे अलग होनेपर घबरा जाता है, और फिर तेरे ही लिये चेष्टा करता है) ॥३॥ (परन्तु ऐसा कहना भी नहीं बनता क्योंकि) तुलसी-दासके हृदयमें जितना कपट है, उतना किस प्रकार कहा जा सकता है? पर हे दशरथ-दुलारे! तेरे राज्यमें लोगोंने बिना ही जोते-बोये पाया है। अर्थात् बिना ही सत्कर्म किये केवल तेरे नामसे ही अनेक पापी तर गये हैं, वैसे ही मैं भी तर जाऊँगा, यही विश्वास है ॥४॥

राग सोरठ

[१६२]

ऐसो को उदार जग माहीं।

बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं ॥१॥

जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥२॥
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ॥३॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥४॥

भावार्थ--संसारमें ऐसा और कौन उदार है, जो बिना ही सेवा किये दीन-दुखियोंपर (उन्हें देखते ही) द्रवित हो जाता हो ? ऐसे एक श्रीरामचन्द्र ही हैं, उनके समान दूसरा कोई नहीं ॥१॥ बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि योग, वैराग्य आदि अनेक साधन करके भी जिस परम गतिको नहीं पाते, वह गति प्रभु रघुनाथजीने गीध और शबरीतकको दे दी और उसको उन्होंने अपने मनमें कुछ बहुत नहीं समझा ॥२॥ जिस सम्पत्तिको रावणने शिवजीको अपने दसों सिर चढ़ाकर प्राप्त किया था, वही सम्पत्ति श्रीरामजीने बड़े ही संकोचके साथ विभीषणको दे डाली ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं, कि अरे मेरे मन, जो तू सब तरहसे सब सुख चाहता है, तो श्रीराम-जीका भजन कर। कृपा-निधान प्रभु तेरी सारी कामनाएँ पूरी कर देंगे ॥४॥

[१६३]

एकै दानि-सिरोमनि साँचो ।
जोइ जाच्यो सोइ जाचकतावस, फिरि बहु नाच न नाच्यो ॥१॥
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिनु पाये ।
कोसलपालु कृपालु कलपतरु, द्रवत सकृत सिर नाये ॥२॥

हरिहु और अवतार आपने, राखी बेद बड़ाई ।
लै चिउरा निधि दई सुदामहिं, जद्यपि बाल-मिताई ॥३॥
कपि सबरी सुग्रीव बिभीषन, को नहिं कियो अजाची ।
अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दारुन आस-पिसाची ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीराम ! सच्चे दानियोंमें शिरोमणि एक आप ही हैं । जिस किसीने (एक बार) आपसे माँगा, फिर उसे माँगनेके लिये बहुत नाच नहीं नाचने पड़े अर्थात् वह पूर्णकाम हो गया ॥१॥ दैत्य, देवता, मनुष्य, मुनि ये सभी स्वार्थी हैं । बिना कुछ लिये कोई कुछ नहीं देते । किन्तु हे कोशलपति ! आप ऐसे कृपालु कल्पतरु हैं, जो एक बार प्रणाम करते ही कृपावश पिघल जाते हैं ॥२॥ आपने अपने दूसरे-दूसरे अवतारोंमें भी वेदोंकी मर्यादा पाली है । जैसे यद्यपि सुदामासे आपकी बचपनकी मित्रता थी, पर उससे जब चावलके कण ले लिये, तभी उसे सम्पत्ति प्रदान की ॥३॥ हे रामजी ! आपने सुग्रीव, शबरी, विभीषण और हनुमान् इनमेंसे किस-किसको याचनारहित (पूर्णकाम) नहीं कर दिया । हे दयानिधे ! अब तुलसीको यह दारुण आशारूपी पिशाचिनी दुःख दे रही है (इससे मेरा पिण्ड छुड़ा दो और मुझे भी अपने दर्शन देकर कृतार्थ करो) ॥४॥

[१६४]

जानत प्रीति-रीति रघुराई ।
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-सगाई ॥१॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई ।
ऐसेहु पितु तें अधिक गीधपर ममता गुन गरुआई ॥२॥

तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई ।
रन परयो बंधु बिभीषन ही को, सोच हृदय अधिकाई ॥३॥
घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई ।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई ॥४॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई ।
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई ॥५॥
प्रेम-कनौड़ो रामसो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई ।
तेरो रिनी हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानिहि को सेवकाई ॥६॥
तुलसी राम-सनेह-सील लखि, जो न भगति उर आई ।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गवाँई ॥७॥

भावार्थ—प्रीतिकी रीति एक श्रीरघुनाथजी ही जानते हैं। श्रीरामजी सब नातोंको छोड़कर केवल प्रेमका ही नाता रखते हैं ॥१॥ जिन महाराज दशरथने प्रेमके निभानेमें शरीर छोड़कर, अपनी अचल कीर्ति स्थापित कर दी, उन प्रेमी पितासे भी आपने जटायु गीधपर अधिक ममता और गुण-गौरवता दिखायी, (दशरथका मरण रामके सामने नहीं हुआ, परन्तु प्यारे गीधके प्राण तो रामकी गोदमें निकले और हाथों पिण्डदान देकर उसका उद्धार किया) ॥२॥ मित्र सुग्रीवको स्त्रीके विरहमें देखकर आपने अपनी प्राणाधिका प्यारी सीताजीको भी भुला दिया (जानकीजीका पता लगानेकी बात भुला पहले बालिको मारकर सुग्रीवका दुःख दूर किया)। रणभूमिमें शक्तिके लगनेसे प्यारे भाई लक्ष्मण मूर्च्छित होकर पड़े हैं, पर (उनका दुःख भूलकर) आप हृदयमें विभीषणहीकी चिन्ता करने लगे

(कि जब लक्ष्मण ही न बचेंगे, तब मैं रावणके साथ युद्ध करके क्या करूँगा ? वानर, भालु तो अपने घर चले जायँगे, परन्तु बेचारा विभीषण कहाँ जायगा ?) ॥३॥ घरमें, गुरु वसिष्ठके आश्रममें, प्रिय मित्रोंके यहाँ, अथवा ससुरालमें, जब-जब जहाँ आपकी मेहमानी हुई, तब वहाँ आपने यही कहा, कि मुझे जैसा शबरीके बेरोंमें स्वाद और मिठास मिला था, वैसा कहीं नहीं मिला ॥४॥ जब मुनिलोग आपके सहजस्वरूप, अर्थात् निर्गुण परमात्मस्वरूपका बखान करने लगते हैं, तब तो आप लज्जाके मारे सिर झुका लिया करते हैं। किन्तु जब केवट और बन्दर आपको 'मित्र' एवं 'भाई' कहते हैं, तो अपनी बड़ाई मानते हैं ॥५॥ हे भाई ! रघुनाथजीके समान, प्रेमके वश रहनेवाला तीनों लोकों और तीनों कालोंमें दूसरा कोई नहीं है। जिन्होंने हनुमान्‌जीसे यहाँतक कह दिया कि 'मैं तेरा ऋणी हूँ' उनके समान सेवाके लिये कृतज्ञ होनेवाला और कौन है ? ॥६॥ हे तुलसी ! श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा स्नेह और शील देखकर भी उनके प्रति यदि तेरे हृदयमें भक्तिका उदय न हुआ, तो तुझे जन्म देकर तेरी माँ-ने व्यर्थ ही अपनी जवानी खोई ॥७॥

[१६५]

रघुबर रावरि यहै बड़ाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई ॥१॥
थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप, कियो सकल सँग भाई ॥२॥

मिलि मुनिबृंद फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई ।
बारहिं बार गीध सबरीकी बरनत प्रीति सुहाई ॥३॥
स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई ।
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई ॥४॥
यहि दरबार दीनको आदर, रीति सदा चलि आई ।
दीनदयालु दीन तुलसीकी काहु न सुरति कराई ॥५॥

भावार्थ—हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी यही बड़ाई है, कि आप धनियोंका, धनान्धोंका, गण्यमान्योंका (धन या विद्या या पदके अभिमानियोंका) अनादर कर गरीबोंका आदर करते हैं, उनपर बड़ी कृपा करते हैं ॥१॥ देवता अनेक साधन करके थक गये, पर उन्हें आपने स्वप्नमें भी दर्शन न दिया, किन्तु निषाद एवं कपटी रीछ, बन्दर और राक्षस (विभीषण) के साथ भाई-चारा कर लिया,(इसीलिये कि ये सब दीन-निरभिमानी थे)॥२॥ दण्डकारण्यमें घूमते तो फिरे मुनियोंके साथ हिलमिलकर, परन्तु उनकी तो चर्चातक नहीं चलायी, लेकिन गीध (जटायु) और शबरीके प्रेमका बारम्बार सुन्दर बखान करना आपको सदा अच्छा लगा। (यहाँ भी वही दीनता और निरभिमानकी बात है) ॥३॥ कुत्तेके कहनेपर संन्यासीको तो हाथीपर चढ़ाकर नगरके बाहर निकाल दिया और श्रीसीताजीकी झूठी निन्दा करनेवाले मूर्ख धोबीको अपनी प्रजा समझकर, नीतिसे अपने नगर अयोध्यामें बसा लिया (क्योंकि वह दीन-गरीब था) ॥४॥ (इससे सिद्ध है कि) इस दरबारमें, रामराज्यमें, दीनोंके आदर करनेकी रीति सदासे चली आ रही है। किन्तु हे दीनदयालु ! (क्या) इस दीन तुलसीका ध्यान आपको (आजतक) किसीने नहीं दिलाया ॥५॥

[१६६]

ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अतिकोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी ॥ १ ॥
साधन-हीन दीन निज अघ-बस, सिला भई मुनि-नारी ।
गृहतें गवनि परसि पद पावन घोर सापतें तारी ॥ २ ॥
हिंसारत निषाद तामस बपु, पसु-समान बनचारी ।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस, नहिं कुल जाति बिचारी ॥ ३ ॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत, कहि न जाय अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोकहत, सरन गये भय टारी ॥ ४ ॥
बिहँग जोनि आमिष अहारपर, गीध कौन ब्रतधारी ।
जनक-समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥ ५ ॥
अधम जाति सबरी जोषित जड़, लोक-बेद तें न्यारी ।
जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी ॥ ६ ॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल, आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके दारुन दुख जनके, हत्यो बालि, सहि गारी ॥ ७ ॥
रिपुको अनुज बिभीषन निसिचर, कौन भजन अधिकारी ।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी ॥ ८ ॥
असुभ होइ जिन्हके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी ।
बेद-बिदित पावन किये ते सब, महिमा नाथ! तुम्हारी ॥ ९ ॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।
कलिमल-ग्रसित दास-तुलसी पर, काहे कृपा बिसारी ? ॥१०॥

भावार्थ—दीनोंका ऐसा हित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ही हैं, वे अति कोमल, करुणाके भण्डार और बिना ही कारण दूसरोंका उपकार करनेवाले हैं ॥१॥ साधनोंसे रहित, दीन, गौतम ऋषिकी स्त्री अहल्या, अपने पापोंके कारण, शिला हो गयी थी। उसे आपने घरसे चलकर, अपने पवित्र चरणसे छूकर, घोर शापसे छुड़ा दिया ॥२॥ हिंसामें रत गुह निषाद जिसका तामसी शरीर था, और जो पशुकी तरह वनमें फिरता रहता था, उसे आपने, वंश और ज्ञातिका विचार किये बिना ही, प्रेमके वश होकर हृदयसे लगा लिया ॥३॥ यद्यपि इन्द्रके पुत्र जयन्तने (काकरूपसे श्रीसीताजीके चरणमें चोंच मारकर) इतना भारी अपराध किया था, कि कुछ कहा नहीं जा सकता तथापि जब वह(बाणके मारे घबराकर रक्षाके लिये) सब लोकोंको देख फिरा और फिर शोकसे व्याकुल होकर शरणमें आया, तब उसका सारा भय दूर कर दिया ॥४॥ जटायु गीध पक्षीकी योनिका था, सदा मांस खाया करता था। उसने ऐसा कौन-सा व्रत धारण किया था, कि जिसकी आपने अपने हाथसे, पिताके समान अन्त्येष्टि क्रिया कर सब बातें सुधार दीं, अर्थात् मुक्ति प्रदान कर दी ॥५॥ शबरी नीच जातिकी मूर्खा स्त्री थी। जो लोक और वेद दोनोंसे ही बाहर थी। परन्तु उसका सच्चा प्रेम समझकर कृपालु रघुनाथजीने उसे भी कृपापूर्वक दर्शन देकर उद्धार कर दिया ॥६॥ सुग्रीव बन्दर अपने भाई (बालि) के भयसे व्याकुल होकर जब पुकारता हुआ आपकी शरणमें आया, तब आप अपने उस दासका दारुण दुःख नहीं सह सके और गालियाँ सहकर भी बालिका वध कर डाला ॥७॥ विभीषण, शत्रु (रावण) का भाई था और जातिका राक्षस था! वह किस भजनका अधिकारी था ? किन्तु

जब वह आपकी शरणमें आया तब आपने उसे आगे बढ़कर लिया और भुजा पसारकर हृदयसे लगाया ॥८॥ बन्दर और रीछ ऐसे अधर्मी हैं, कि उनका नामतक लेनेसे अमंगल होता है, किन्तु हे नाथ! उनको भी आपने पवित्र बना लिया। वेद इस बातके साक्षी हैं। यह सब आपकी महिमा है ॥९॥ मैं कहाँतक कहूँ? ऐसे असंख्य दीन हैं, जिनकी विपत्तियाँ आपने दूर कर दी हैं, किन्तु न जाने इस तुलसीदासपर, जो कलियुगके पापोंसे जकड़ा हुआ है, आप कृपा करना क्यों भूल गये ॥ १० ॥

[१६७]

रघुपति-भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥१॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥२॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बलतें न कोउ बिलगावै ।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥३॥
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी ॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस-निसि देस-काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं ॥५॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीकी भक्ति करनेमें बड़ी कठिनता है। कहना तो सहज है, पर उसका करना कठिन है। इसे वही जानता है जिससे वह करते बन गयी ॥१॥ जो जिस कलामें चतुर है, उसीके लिये वह सरल

और सदा सुख देनेवाली है। जैसे (छोटी-सी) मछली तो गंगाजीकी धारा-के सामने चली जाती है, पर बड़ा भारी हाथी बह जाता है (क्योंकि वह मछलीकी तरह उसमें तैरना नहीं जानता) ॥२॥ जैसे यदि धूलमें चीनी मिल जाय तो उसे कोई भी जोर लगाकर अलग नहीं कर सकता, किन्तु उसके रसको जाननेवाली एक छोटी-सी चींटी उसे अनायास ही (अलग करके) पा जाती है ॥३॥ जो योगी दृश्यमात्रको अपने पेटमें रख (ब्रह्ममें मायाको समेटकर, परमेश्वररूप कारणमें कार्यरूप जगत्‌का लय करके) (अज्ञान-) निद्राको त्यागकर सोता है, वही द्वैतसे आत्यन्तिक रूपसे मुक्त हुआ पुरुष भगवान्‌के परम पदके परमानन्दकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है॥४॥ इस अवस्थामें शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन-रात और देश-काल नहीं रह जाते। (एक सच्चिदानन्दघन प्रभु ही रह जाता है) हे तुलसीदास! जबतक इस दशाकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक संशयका समूल नाश नहीं होता ॥५॥

[१६८]

जोपै राम-चरन-रति होती।
तौ कत त्रिविध सूल निसिबासर सहते बिपति निसोती ॥१॥
जो संतोष-सुधा निसिबासर सपनेहुँ कबहुँक पावै।
तौ कत बिषय बिलोकि झूँठ जल मन-कुरंग ज्यों धावै ॥२॥
जो श्रीपति-महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए।
तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥३॥
जे लोलुप भये दास आसके ते सबहीके चेरे।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥४॥

नहिं एकौ आचरन भजनको, बिनय करत हौं ताते।
कीजै कृपा दासतुलसी पर, नाथ नामके नाते ॥५॥

भावार्थ—यदि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम होता, तो रात-दिन तीनों प्रकारके कष्ट और निखालिस विपत्ति ही क्यों सहनी पड़ती ॥१॥ यदि यह मन दिन-रातमें कभी स्वप्नमें भी सन्तोषरूपी अमृत पा जाय, तो विषयरूपी झूठे मृग-जलको देखकर उसके पीछे यह मृग बनकर क्यों दौड़े? ॥२॥ यदि हम भगवान् लक्ष्मीकान्तकी महिमाका हृदयमें विचार-कर प्रेम बढ़ाकर उनका भजन करते, तो आज कुत्तेकी तरह द्वार-द्वार पेट दिखाते हुए क्यों मारे-मारे फिरते ? ॥३॥ जो लोभी आशाके दास बन गये हैं, वे तो सभीके गुलाम हैं (विषयोंकी आशा रखनेवालेको ही सबकी गुलामी करनी पड़ती है) और जिन्होंने भगवान्में विश्वास करके आशाको जीत लिया है, वे ही भगवान्के सच्चे सेवक हैं ॥४॥ मैं आपसे इसलिये विनय कर रहा हूँ, कि मुझमें भजनका तो एक भी आचरण नहीं है। (केवल आपका नाम जपता हूँ)। हे नाथ ! तुलसीदासपर इस नामके नातेसे ही कृपा कीजिये ॥५॥

[१६९]

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥१॥
बंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥२॥

तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे ।
नामकी लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे ॥३॥

भावार्थ—यदि मुझे श्रीरामचन्द्रजी ही मीठे लगे होते, तो संसारके नवरस* एवं (भोजनके) छः रस† नीरस और फीके पड़ जाते (पर रामजी मीठे नहीं लगते, इसीलिये विषय-भोग मीठे मालूम होते हैं) ॥१॥ मैं भाँति-भाँतिके शरीर धारणकर यह अनुभव कर चुका हूँ तथा मैंने सुना और देखा भी है कि (संसारके) विषय ठग हैं। (मायामें भुलाकर परमार्थरूपी धन हर लेते हैं) यद्यपि यह मैं अपने जीमें अच्छी तरह जानता हूँ, तथापि कभी, स्वप्नमें भी, इनसे तृप्त होकर मेरा मन नहीं उकताया (कैसी नीचता है ?) ॥२॥ पर तुलसीदास अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीसे एक ही बलपर ये ढिठाई-भरे वचन कह रहा है। (और वह बल यह है, कि) हे नाथ ! आपने अपने नामकी लाजसे किस-किसको दया करके (भवबन्धनसे छूटनेके लिये) परवाने नहीं लिख दिये हैं ! (जिसने आपका नाम लिया, उसीको मुक्तिका परवाना मिल गया, इसीलिये मैं भी यों कह रहा हूँ) ॥३॥

[१७०]

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो ॥१॥

---

* शृङ्गार, हास्य, करुणा, वीर, रुद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त साहित्यके ये नौ रस हैं।

† कड़ुआ, तीखा, मीठा, कसैला, खट्टा और नमकीन—ये छः भोजनके रस हैं।

ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपंच घर-घरके ।
त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-निरमल गुनगन रघुबरके ॥ २ ॥
ज्यों नासा सुगंधरस-बस, रसना षटरस-रति मानी ।
राम-प्रसाद-माल जूठन लगि त्यों न ललकि ललचानी ॥ ३ ॥
चंदन-चंदबदनि-भूषन-पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।
त्यों रघुपति-पद-पदुम-परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥ ४ ॥
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेये बपु बचन हिये हूँ ।
त्यों न राम सुकृतग्य जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ ॥ ५ ॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग बागे ।
राम-सीय-आश्रमनि चलत त्यों भये न श्रमित अभागे ॥ ६ ॥
सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नामकी ओट लई है ।
है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ॥ ७ ॥

भावार्थ—मेरा मन आपसे ऐसा कभी नहीं लगा, जैसा कि वह कपट छोड़कर, स्वभावसे ही निरन्तर विषयोंमें लगा रहता है ॥१॥ जैसे मैं पराई स्त्रीको ताकता फिरता हूँ, घर-घरके पाप-भरे प्रपञ्च सुनता हूँ, वैसे न तो कभी साधुओंके दर्शन करता हूँ, और न गङ्गाजीकी निर्मल तरङ्गोंके समान श्रीरघुनाथजीकी गुणावली ही सुनता हूँ ॥२॥ जैसे नाक अच्छी-अच्छी सुगन्धके रसके अधीन रहती है, और जीभ छः रसोंसे प्रेम करती है, वैसे यह नाक भगवान्‌पर चढ़ी हुई मालाके लिये और जीभ भगवत्-प्रसादके लिये कभी ललक-ललक कर नहीं ललचाती ॥३॥ जैसे यह अधम शरीर चन्दन, चन्द्रवदनी युवती, सुन्दर गहने और

(मुलायम) कपड़ोंको स्पर्श करना चाहता है, वैसे श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंका स्पर्श करनेके लिये यह कभी नहीं तरसता ॥४॥ जैसे मैंने शरीर, वचन और हृदयसे, बुरे-बुरे देवों और दुष्ट स्वामियोंकी सब प्रकारसे सेवा की, वैसे उन रघुनाथजीकी सेवा कभी नहीं की, जो (तनिक सेवासे) अपनेको खूब ही कृतज्ञ मानने लगते हैं और एक बार प्रणाम करते ही (अपार करुणाके कारण) सकुचा जाते हैं ॥५॥ जैसे इन चञ्चल चरणोंने लोभवश, लालची बनकर, द्वार-द्वार ठोकरें खायी हैं, वैसे ये अभागे श्रीसीतारामजीके (पुण्य) आश्रमोंमें जाकर कभी स्वप्नमें भी नहीं थके। (स्वप्नमें भी कभी भगवान्‌के पुण्य आश्रमोंमें जानेका कष्ट नहीं उठाया) ॥६॥ हे प्रभो! (इस प्रकार) मेरे सभी अंग आपके चरणोंसे विमुख हैं। केवल इस मुखसे आपके नामकी ओट ले रक्खी है (और यह इसलिये कि) तुलसीको एक यही निश्चय है कि आपकी मूर्ति कृपामयी है (आप कृपासागर होनेके कारण, नामके प्रभावसे मुझे अवश्य अपनालेंगे) ॥७॥

[१७१]

कीजै मोको जमजातनामई।
राम! तुमसे सुचि सुहृद साहिबहिं, मैं सठ पीठि दई ॥१॥
गरभबास दस मास पालि पितु-मातु-रूप हित कीन्हों।
जड़हिं बिबेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों ॥२॥
कपट करौं अंतरजामिहुँ सों, अघ ब्यापकहिं दुरावौं।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं ॥३॥

उदर भरौं किंकर कहाइ बेंच्यौ बिषयनि हाथ हियो है।
मोसे बंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोह कियो है ॥४॥
पल-पलके उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
भिद्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पीके ॥५॥
स्वामीकी सेवक-हितता सब, कछु निज साइँ-द्रोहाई।
मैं मति-तुला तौलि देखी भइ मेरेहि दिसि गरुआई ॥६॥
एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आये, अरु करिहैं।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं ॥७॥

भावार्थ—हे नाथ! मुझे तो आप यमकी यातनामें ही डाल दीजिये, (नरकोंमें ही भेजिये)। क्योंकि, हे श्रीरामजी! मैं ऐसा दुष्ट हूँ कि मैंने आप-सरीखे पवित्र और सुहृद् (बिना ही कारण हित करनेवाले) स्वामीको पीठ दे रक्खी है ॥१॥ गर्भमें आपने माता-पिताके समान दस महीनेतक मेरा पालन-पोषण कर (कितना) हित किया। मुझ मूर्खको आपने शुद्ध ज्ञान, मुझ दुष्टको सुन्दर शील और मुझ अपराधीको आदर दिया। (इतनेपर भी मैं आपका भजन न करके आपसे उलटा ही चलता हूँ) ॥२॥ मैं अन्तर्यामी प्रभुके साथ भी कपट करता हूँ, घट-घटमें रमनेवाले सर्वव्यापीसे अपने पाप छिपाता हूँ। (परन्तु धन्य है आपको कि) ऐसे दुर्बुद्धि और नीच नौकरपर भी हे रामजी! आपने अपना मन प्रतिकूल नहीं किया ॥३॥ पेट तो भरता हूँ, आपका दास कहाकर, किन्तु हृदयको विषयों-के हाथ बेच रक्खा है तो भी मुझ-सरीखे ठगपर भी हे कृपालु! आपने निष्कपट-भावसे कृपा ही की है ॥४॥ आपके पल-पलके उपकारोंको

भलीभाँति जानकर, समझकर और सुनकर भी मेरा वज्रसे भी अधिक कठोर चित्त कभी श्रीजानकीनाथजीके प्रेममें नहीं भिदा ॥५॥ मैंने जब अपनी बुद्धिरूपी तराजूपर एक ओर स्वामीकी सारी सेवक-वत्सलता और दूसरी ओर अपना जरा-सा स्वामीद्रोह रखकर तौला, तब देखनेपर मेरी ही ओरका पलड़ा भारी निकला ॥६॥ इतनेपर भी हे नाथ ! आप कृपाकर मेरा हित ही करते चले आ रहे हैं, करते हैं और करेंगे। तुलसी अपनी ओरसे जानता है, कि इस कनौड़ेका, (एहसानसे दबे हुएका) प्रभु ही पालन करेंगे ॥७॥

[१७२]

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ॥ १ ॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥ २ ॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ॥ ३ ॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भगति लहौंगो ॥ ४ ॥

भावार्थ—क्या मैं कभी इस रहनीसे रहूँगा ? क्या कृपालु श्रीरघुनाथजीकी कृपासे कभी मैं सन्तोंका-सा स्वभाव ग्रहण करूँगा ? ॥१॥ जो कुछ मिल जायगा उसीमें सन्तुष्ट रहूँगा, किसीसे (मनुष्य या देवतासे)

कुछ भी नहीं चाहूँगा। निरन्तर दूसरोंकी भलाई करनेमें ही लगा रहूँगा। मन, वचन और कर्मसे यम-नियमों* का पालन करूँगा ॥२॥ कानोंसे अति कठोर और असह्य वचन सुनकर भी उससे उत्पन्न हुई (क्रोधकी) आगमें न जलूँगा। अभिमान छोड़कर सबमें समबुद्धि रहूँगा और मनको शान्त रक्खूँगा। दूसरोंकी स्तुति-निन्दा कुछ भी नहीं करूँगा (सदा आपके चिन्तनमें लगे हुए मुझको दूसरोंकी स्तुति-निन्दाके लिये समय ही नहीं मिलेगा) ॥३॥ शरीर-सम्बन्धी चिन्ताएँ छोड़कर सुख और दुःखको समान-भावसे सहूँगा। हे नाथ! क्या तुलसीदास इस (उपर्युक्त) मार्गपर रहकर कभी अविचल हरि-भक्तिको प्राप्त करेगा? ॥४॥

[१७३]

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है श्रम-फलनि फरो सो ॥१॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि भरि बेद परोसो ॥२॥
आगम-बिधि जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग बियोग धरो सो ॥३॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो ॥४॥

---

* अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—ये दस यम-नियम हैं।

बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो ॥५॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि-फिरि पचि मरै मरो सो ।
रामनाम-बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो ॥६॥

भावार्थ—(श्रीराम-नामके सिवा) मुझे दूसरे किसी (साधन) पर भरोसा नहीं होता। इस कलियुगमें सभी साधनरूपी वृक्षोंमें केवल परिश्रमरूपी फल ही फल रहे हैं अर्थात् उन साधनोंमें लगे रहनेसे केवल श्रम ही हाथ लगता है, फल कुछ नहीं होता ॥१॥ तप, तीर्थ, व्रत, दान, यज्ञ आदि जो जिसे अच्छा लगे सो करे। किन्तु इन सब कर्मोंका फल पानेपर ही जान पड़ेगा, यद्यपि वेदोंने (पत्तल) भर-भरकर फलोंको परोसा है। भाव यह कि वेदोंमें इन कर्मोंकी बड़ी प्रशंसा है परन्तु कलियुग इन्हें सफल ही नहीं होने देगा तब फल कहाँसे मिलेगा? ॥२॥ शास्त्रकी विधिसे मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं, किन्तु उनसे असली कार्यकी सिद्धि नहीं होती। योग-सिद्धियोंके साधनमें सुख स्वप्नमें भी नहीं है (क्रिया जाननेवालोंके अभावसे) इस साधनमें भी रोग और वियोग प्रस्तुत है (शरीर रोगी हो जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रियजनोंसे विछोह हो जाता है।) ॥३॥ काम, क्रोध, मद, लोभ और मोहने मिलकर ज्ञान-वैराग्यको तो हर-सा लिया है। और संन्यास लेनेपर तो यह मन ऐसा बिगड़ जाता है, जैसे पानीके डालनेसे कच्चा घड़ा गल जाता है ॥४॥ मुनियोंके अनेक मत हैं, (छः दर्शन हैं) और पुराणोंमें नाना प्रकारके पन्थ देखकर जहाँ-तहाँ झगड़ा-सा ही जान पड़ता है। गुरुने मेरे लिये

राम-भजनको ही उत्तम बतलाया है और मुझे भी सीधे राज-मार्गके समान वही अच्छा लगता है ॥५॥ हे तुलसी ! विश्वास और प्रेमके बिना जिसे बार-बार पच-पचकर मरना हो, वह भले ही मरे, किन्तु संसार-सागरसे तरनेके लिये तो राम-नाम ही जहाज है। जिसे पार होना हो, वह (इसपर चढ़कर) पार हो जाय ॥६॥

[१७४]

जाके प्रिय न राम-बैदेही

तजिये ताहि / सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥

तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।

बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी ॥२॥

नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।

अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥३॥

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।

जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥४॥

भावार्थ—जिसे श्रीराम-जानकीजी प्यारे नहीं, उसे करोड़ों शत्रुओंके समान छोड़ देना चाहिये, चाहे वह अपना अत्यन्त ही प्यारा क्यों न हो ॥१॥ (उदाहरणके लिये देखिये) प्रह्लादने अपने पिता (हिरण्यकशिपु) को, विभीषणने अपने भाई (रावण) को, भरतजीने अपनी माता (कैकेयी) को, राजा बलिने अपने गुरु (शुक्राचार्य) को और व्रज-गोपियोंने अपने-अपने पतियोंको (भगवत्प्राप्तिमें बाधक समझकर) त्याग दिया, परन्तु ये सभी

आनन्द और कल्याण करनेवाले हुए ॥२॥ जितने सुहृद् और अच्छी तरह पूजने योग्य लोग हैं, वे सब श्रीरघुनाथजीके ही सम्बन्ध और प्रेमसे माने जाते हैं। बस, अब अधिक क्या कहूँ। जिस अञ्जनके लगानेसे आँखें ही फूट जायँ, वह अञ्जन ही किस कामका ? ॥३॥ हे तुलसीदास ! जिसके कारण (जिसके संग या उपदेशसे) श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम हो, वही सब प्रकारसे अपना परम हितकारी, पूजनीय और प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है। हमारा तो यही मत है ॥४॥

[१७५]

जो पै रहनि/लगन रामसों नाहीं ।

तौ नर खर कूकर सूकर सम बृथा जियत जग माहीं ॥१॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबहीके ।

मनुज देह सुर-साधु सराहत, सो सनेह सिय-पीके ॥२॥

सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।

बिनु हरिभजन इँदारुनके फल तजत नहीं करुआई ॥३॥

कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील सरूप सलोने ।

तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥४॥

भावार्थ—जिसकी श्रीरामचन्द्रजीसे प्रीति नहीं है, वह इस संसारमें गदहे, कुत्ते और सुअरके समान वृथा ही जी रहा है ॥१॥ काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख और प्यास तो सभीमें है। पर जिस बातके लिये देवता और सन्तजन इस मनुष्य-शरीरकी प्रशंसा करते हैं,

वह तो श्रीसीतानाथ रघुनाथजीका प्रेम ही है (भगवत्प्रेमसे ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है) ॥२॥ कोई शूरवीर, सुचतुर, माता-पिताकी आज्ञा-में रहनेवाला सुपूत, सुन्दर लक्षणवाला तथा बड़े-बड़े गुणोंसे युक्त भले ही श्रेष्ठ गिना जाता हो परन्तु यदि वह हरिभजन नहीं करता है तो वह इन्द्रा-यणके फलके समान है, जो (सब प्रकारसे देखनेमें सुन्दर होनेपर भी) अपना कड़वापन नहीं छोड़ता ॥३॥ कीर्ति, ऊँचा कुल, अच्छी करनी, बड़ी विभूति, शील और लावण्यमय स्वरूप होनेपर यदि वह प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रेमसे रहित है, तो ये सब गुण ऐसे ही हैं, जैसे बिना नमककी साग-भाजी ॥४॥

[१७६]

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नातो। एते अनादर हूँ तोहि ते न हातो।१।

जोरे नये नाते नेह फोकट फीके। देहके दाहक, गाहक जीके।२।

अपने अपने को सब चाहत नीको। मूल दुहूँको दयालु दूलह सी को।३।

जीवको जीवन प्रानको प्यारो। सुखहूको सुख रामसो बिसारो।४।

कियो करैगो तोसे खलको भलो। ऐसे सुसाहब सों तू कुचाल क्यों चलो।५।

तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै। राढ़उ राउत होत फिरिकै जूझै।६।

भावार्थ—अरे नीच! तूने तो श्रीरामचन्द्रजी सरीखे सुन्दर स्वामीसे न तो प्रेम ही किया और न सम्बन्ध ही जोड़ा। परन्तु इतना अनादर करनेपर भी उन्होंने तुझे नहीं छोड़ा ॥१॥ तूने (जन्म-जन्मान्तरमें) नये-नये नाते और नया-नया प्रेम जोड़ा, जो सब व्यर्थ और नीरस थे तथा (उलटे)

तेरे शरीरके जलानेवाले और प्राणोंके ग्राहक थे ॥२॥ अपना और अपनोंका तो सभी भला चाहते हैं, किन्तु दोनोंकी भलाईके मूल तो एक श्रीजानकी-वल्लभ ही हैं ॥३॥ वह जीवोंके जीवन हैं, प्राणोंके प्यारे हैं और सुखके भी सुख हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको तूने भुला दिया ! ॥४॥ जिन्होंने तेरा सदा भला किया और आगे जो भी भला ही करेंगे, अरे, ऐसे सुन्दर स्वामीके साथ तू इतनी कुचालें क्यों चला ? ॥५॥ रे तुलसी ! यदि तू अब भी समझ जाय तो तेरा भला हो सकता है, क्योंकि बार-बार लड़नेसे कायर भी शूरवीर हो जाता है ॥६॥

[१७७]

जो तुम त्यागो राम हौं तौ नहिं त्यागों।परिहरि पाँय काहि अनुरागों।१।
सुखद सुप्रभु तुम सो जगमाहीं। श्रवन-नयन मन-गोचर नाहीं ॥२॥
हौं जड़ जीव, ईस रघुराया। तुम मायापति, हौं बस माया ॥३॥
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता। हौं कुपूत, तुम हितु पितु-माता ॥४॥
जो पै कहुँ कोउ बूझत बातो। तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥५॥

भावार्थ—हे रामजी ! यदि आप मुझे त्याग भी देंगे, तो भी मैं आपको नहीं छोड़ूँगा। क्योंकि आपके चरणोंको छोड़कर मैं और किसके साथ प्रेम करूँ ? ॥१॥ आपके समान सुख देनेवाला सुन्दर स्वामी इस संसारमें आजतक न कानोंसे सुना है, न आँखोंसे देखा है और न मनसे अनुमानमें ही आता है ॥२॥ हे रघुनाथजी ! मैं जड़ जीव हूँ और आप ईश्वर हैं, आप मायाके स्वामी हैं (माया आपके वशमें है) और मैं मायाके वश होकर रहता हूँ ॥३॥ मैं तो एक कृतघ्न भिखमंगा हूँ, और

आप बड़े उदार स्वामी हैं, मैं आपका कुपूत हूँ और आप हित करनेवाले माता-पिता हैं। भाव यह है, कि लड़का कुपूत होनेपर भी मा-बाप उसका हित ही करते हैं, ऐसे ही आप भी सदा मेरा पालन-पोषण ही किया करते हैं ॥४॥ यदि कहीं कोई भी मेरी बात पूछता, तो यह तुलसीदास बिना ही मोल (उसके हाथ) बिक जाता। (परन्तु आपके सिवा मुझ-सरीखे नीचको कौन रखता है? अतः मैं आपको कभी नहीं छोड़ूँगा) ॥५॥

[१७८]

भयेहूँ उदास राम, मेरे आस रावरी।
आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥ १ ॥
जीवनको दानी घन कहा ताहि चाहिये।
प्रेम-नेमके निबाहे चातक सराहिये ॥ २ ॥
मीनतें न लाभ-लेस पानी पुन्य पीनको।
जल बिनु थल कहा मीचु बिनु मीनको ॥ ३ ॥
बड़े ही की ओट बलि बाँचि आये छोटे हैं।
चलत खरेके संग जहाँ-तहाँ खोटे हैं ॥ ४ ॥
यहि दरबार भलो दाहिनेहु-बामको।
मोको सुभदायक भरोसो राम-नामको ॥ ५ ॥
कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है।
जानत कृपानिधान तुलसीके जीकी है ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे रामजी! आप चाहे मुझसे उदासीन हो जायँ, पर मुझे तो आपकी ही आशा है। (मेरे ऐसा कहनेसे आप नाराज न होइयेगा) आर्त

अथवा स्वार्थी तो पागलोंकी-सी ही बातें किया करते हैं। (भाव यह कि आप जो नित्य अपने जनोंपर कृपा-दृष्टि रखते हैं उनके लिये तो मैं कहता हूँ कि आप चाहे उदासीन हो जायँ और मेरे लिये यह अभिमान-की बात कहता हूँ कि मुझे तो आपकी ही आशा है, यह पागलोंकी-सी बातें ही तो हैं) ॥१॥ जो मेघ पानीका दान करता है, सारे प्राणियोंकी रक्षा करता है उसे किस वस्तुकी कमी है ? पानी देकर जीवनकी रक्षा करनेवाले मेघको क्या चाहिये ? परन्तु प्रेमका अटल नियम निबाहनेके कारण पपीहेकी ही सराहना होती है। भाव यह कि मेघ पपीहेको बिना ही किसी स्वार्थके स्वातिका जल देता है, इसमें उदारता मेघकी ही है, परन्तु दूसरी ओर न ताकनेके कारण सराहना चातककी हुआ करती है २ पवित्र और पुष्ट करनेवाले जलको मछलीसे लेशमात्र भी लाभ नहीं है, पर मछलीके लिये जलको छोड़कर, ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ वह अपने प्राण बचा सके ? भाव यह कि वह जलको छोड़कर कहीं भी जीवित नहीं रह सकती। इसी प्रकार आपको मुझसे कोई लाभ नहीं, परन्तु मैं आपको छोड़कर कहाँ जाऊँ ? आपको अपनी शरणमें रखना भी होगा और तारीफ भी मेरी ही होगी ॥३॥ मैं आपकी बलैया लेता हूँ, देखिये, बड़ोंके सहारे (सदा) छोटे बचते आये हैं, जहाँ-तहाँ खरे सिक्कोंके साथ खोटे भी चला करते हैं। भाव यह है, कि आपके सच्चे भक्त असली सिक्के हैं, और मैं पाखण्डी, नकली सिक्का होनेपर भी आपके नामकी छापसे भवसागरसे तर जाऊँगा ॥४॥ आपके दरबारमें भले-बुरे सभीका कल्याण होता है, चाहे कोई आपके अनुकूल हो वा प्रतिकूल हो (जैसे विभीषण सम्मुख था तथा रावण विमुख था पर दोनों ही मुक्त हो गये)

हे श्रीरामजी! मुझे तो केवल आपके कल्याणकारी नामका ही भरोसा है ॥५॥ हे नाथ! कह देनेसे सब बात बिगड़ जायगी, (सारा भेद खुल जायगा) इससे मनकी मनहीमें रखना अच्छा है; फिर आप तो हे कृपानिधान! तुलसीके मनकी सब जानते ही हैं ॥६॥

राग बिलावल

[१७९]

कहाँ जाउँ, कासों कहौं, कौन सुनै दीनकी।
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीनकी ॥ १ ॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधारके अधार गुनगन तेरे हैं ॥ २ ॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को।
मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को ॥ ३ ॥
मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आधके।
किये बहुमोल तैं करैया गीध-श्राधके ॥ ४ ॥
तुलसीकी तेरे ही बनाये, बलि, बनैगी।
प्रभुकी बिलंब-अंब दोष-दुख जनैगी ॥ ५ ॥

भावार्थ—कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? कौन इस (साधनरूपी धनसे हीन) दीनकी सुनेगा? मुझ-सरीखे सब तरहसे साधनहीनकी गति तो, तीनों लोकोंमें एकमात्र तू ही है ॥१॥ यों तो दुनियामें घर-घर 'जगदीश' भरे हैं (सभी अपनेको ईश्वर कहते हैं) पर जिसके कोई आधार नहीं, उसके

लिये तो एक तेरे गुणसमूहका (गान ही) आधार है। भाव यह कि, तेरे ही गुणोंका गान कर वह संसार-सागरको पार करता है ॥२॥ गजराजको छुड़ानेके लिये गरुड़को छोड़कर कौन दौड़ा था ? जिसने मुझ-जैसे पापोंके भण्डारका भी पालन-पोषण किया, ऐसा एक तुझे छोड़कर, और किसको किस माताने जना है? ॥३॥ मुझ-जैसे क्रूर, कायर, कुपूत और आधी कौड़ीकी कीमतवालोंको भी, हे जटायुके श्राद्ध करनेवाले ! तूने बहुमूल्य बना दिया ॥४॥ बलिहारी ! तुलसीकी (बिगड़ी हुई) बात तेरे ही बनाये बन सकेगी। यदि तूने मेरा उद्धार करनेमें देर की, तो फिर वह देररूपी माता दुःख और दोषरूपी सन्तान ही जनेगी। भाव यह कि, तू कृपा करके शीघ्र उद्धार न करेगा तो मैं पाप और दुःखोंसे ही घिर जाऊँगा ॥५॥

[१८०]

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहिं आपनो।
राय दसरथके तू उथपन-थापनो ॥ १ ॥
साहिब सरनपाल सबल न दूसरो।
तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो ॥ २ ॥
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥ ३ ॥
कौन कियो समाधान सनमान सीलाको।
भृगुनाथ सो रिषी जितैया कौन लीला को ॥ ४ ॥
मातु-पितु-बंधु-हित, लोक-बेदपाल को।
बोलको अचल, नत करत निहाल को ॥ ५ ॥

संग्रही सनेहबस अधम असाधुको।
गीध सबरीको कहौ करिहै सराधु को ॥ ६ ॥
निराधारको अधार, दीनको दयालु को।
मीत कपि-केवट-रजनिचर-भालु को ॥ ७ ॥
रंक, निरगुनी, नीच जितने निवाजे हैं।
महाराज ! सुजन-समाज ते बिराजे हैं ॥ ८ ॥
साँची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है।
सीलसिंधु ! ढील तुलसीकी बेर भई है ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे नाथ, बलिहारी ! एक बार मेरी ओर देखकर मुझे अपना लीजिये। हे श्रीदशरथ-नन्दन ! आप उखड़े हुए जीवोंको फिरसे जमानेवाले हैं ॥१॥ आपके समान कोई दूसरा शरणागतोंका पालनेवाला सर्वशक्तिमान् स्वामी नहीं है। आपका नाम लेते ही ऊसर खेत भी उपजाऊ हो जाता है। भाव यह कि जिनके भाग्यमें सुखका लेश भी नहीं है वे भी आपके नामके जपसे भक्ति-ज्ञानको प्राप्तकर परम आनन्द लाभ करते हैं ॥२॥ आपके वचन और कर्म मेरे मनमें गड़ गये हैं (स्थान-स्थानपर दीनोंके उद्धारकी प्रतिज्ञा, और अजामिल, गणिका आदि दीनोंके उद्धाररूपी कर्म देखकर मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है) और मैंने उन लोगोंको भी देख, सुन और समझ लिया है जो दुनियाँमें बड़े कहे जाते हैं ॥३॥ उनमेंसे किसने शिला बनी हुई अहल्याका शाप दूर कर उसे शान्ति प्रदान की, और किसने लीलासे ही परशुराम-जैसे महाक्रोधी ऋषिको जीत लिया ? (किसीने नहीं) ॥४॥ माता, पिता और भाईके

लिये किसने लोक और वेदकी मर्यादाका पालन किया ? अपने वचनोंका अडिग कौन है ? और प्रणाम करते ही प्रणतको कौन निहाल कर देता है ? (केवल एक श्रीरघुनाथजी ही) ॥५॥ प्रेमके अधीन होकर किसने नीचों और दुष्टोंको इकट्ठा किया, अपनाया ? गीध और शबरीका पिता-माताकी तरह कौन श्राद्ध करेगा ? ॥६॥ जिनके कहीं कोई सहारा नहीं है, उनका आधार कौन है ? दीनोंपर दया करनेवाला कौन है ? और बन्दर, मल्लाह, राक्षस तथा रीछोंका मित्र कौन है ? (सिवा रघुनाथजीके दूसरा कोई नहीं) ॥७॥ हे महाराज ! आपने जितने कंगाल, मूर्ख और नीचोंको निहाल किया है, वे सब ही आज सन्तोंके समाजमें विराजित हो रहे हैं ॥८॥ यह आपकी सच्ची-सच्ची बड़ाई कही गयी है, (एक अक्षर भी) बढ़ाकर नहीं कहा है। किन्तु हे शीलके समुद्र ! तुलसीदासके ही लिये इतनी देर क्यों हो रही है ? ॥९॥

[१८१]

केहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिये ।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिये ॥ १ ॥
सहस सिलातें अति जड़ मति भई है ।
कासों कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है ॥ २ ॥
पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं ।
कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं ॥ ३ ॥
करम-कपीस बालि-बली-त्रास-त्रस्यो हौं ।
चाहत अनाथ-नाथ ! तेरी बाँह बस्यो हौं ॥ ४ ॥

महा मोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं।
त्राहि, तुलसीस! त्राहि, तिहूँ ताप तयो हौं॥ ५॥

भावार्थ—हे कृपासागर! किसी भी तरह मेरी ओर देखो। मुझे और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है, एक तुम्हारा ही पक्का आसरा है॥१॥ मेरी बुद्धि हजार शिलाओंसे भी अधिक जड़ हो गयी है। (अब मैं उसे चैतन्य करनेके लिये) और किससे कहूँ? पत्थरोंको (तुम्हारे सिवा और) किसने मुक्त किया है?॥२॥ जिस प्रकार महर्षि विश्वामित्रने (तुम्हारी देख-रेखमें निर्विघ्न) यज्ञ किया था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे चरणोंमें प्रेमरूपी एक यज्ञ करना चाहता हूँ। किन्तु कलिके पापरूपी दुष्टोंको देखकर मैं बहुत ही भयभीत हो रहा हूँ। (जैसे मारीच, ताड़का आदिसे तुमने विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की थी वैसे ही इन पापोंसे बचाकर मुझे भी चरणकमलोंका प्रेमी बना लो)॥३॥ कुटिल कर्मरूपी बन्दरोंके बलवान् राजा बालिसे मैं बहुत डर रहा हूँ, सो हे अनाथोंके नाथ! जैसे तुमने बालिको मारकर सुग्रीवको अभय कर दिया था, उसी प्रकार मुझे भी अपनी बाहुकी छायामें बसा लो, इन कठिन कर्मोंसे बचाकर अपना लो॥४॥ जैसे रावणने विभीषणको मारा था, उसी प्रकार मुझे भी यह महान् मोह मार रहा है; हे तुलसीके स्वामी! मैं संसारके तीनों तापोंसे जला जा रहा हूँ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो॥५॥

[१८२]

नाथ! गुनगाथ सुनि होत चित चाउ सो।
राम रीझिबेको जानौं भगति न भाउ सो॥ १॥

करम, सुभाउ, काल, ठाकुर न ठाउँ सो ।
सुधन न, सुतन न, सुमन, सुआउ सो ॥ २ ॥
जाँचौं जल जाहि कहै अमिय पियाउ सो ।
कासों कहौं काहू सों न बढ़त हियाउ सो ॥ ३ ॥
बाप ! बलि जाउँ, आपु करिये उपाउ सो ।
तेरेही निहारे परै हारेहू सुदाउ सो ॥ ४ ॥
तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो ।
तेरेही बुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥ ५ ॥
नाम-अवलंबु-अंबु दीन मीन-राउ सो ।
प्रभुसों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो ॥ ६ ॥
सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो ।
तुलसी सुसाहिबहिं दियो है जनाउ सो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! आपके गुणोंकी गाथा सुनकर मेरे चित्तमें चाव-सा होता है, किन्तु हे रामजी ! जिस भक्ति और भावसे आप प्रसन्न होते हैं, उसे मैं नहीं जानता ॥१॥ कारण कि, न तो मेरे कर्म अच्छे हैं, न स्वभाव उत्तम है, और न समय अच्छा है (कलियुग है); न कोई मालिक है, न कहीं ठौर-ठिकाना है, न (साधनरूपी उत्तम) धन है, न (सेवापरायण) शरीर है, न (परमार्थमें लगनेवाला) उत्तम मन और न (भजनसे पवित्र हुई) उत्तम आयु ही है। सारांश, भगवत्प्राप्तिका एक भी साधन मेरे पास नहीं है, सब प्रकारसे निराधार हूँ ॥२॥ जिससे मैं (प्यासके मारे) पानी माँगता हूँ वह उलटा मुझसे ही अमृत पिलानेके

लिये कहता है। मैं अपनी बात किससे कहूँ? किसीसे भी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ती ॥३॥ हे बापजी! बलिहारी! आप ही मेरे लिये तो कोई अच्छा उपाय कर दीजिये। क्योंकि आपके (कृपादृष्टिसे) देखते ही हारनेपर भी अच्छा दाँव हाथ लग जाता है। भाव, बड़े-बड़े पापी भी आपकी कृपासे वैकुण्ठके अधिकारी हो जाते हैं ॥४॥ आप यदि सुझा दें तो अदृश्य वस्तु भी दीखने लगती है, और आपके समझा देनेपर नहीं समझमें आनेवाला (आपका स्वरूप) पदार्थ भी समझमें आ जाता है; अब आप उसे ही समझा दीजिये ॥५॥ देखिये, आपके नामका जो अवलम्बन है, वही तो पानी है और उसमें रहनेवाला मैं दीन मीनोंका राजा हूँ, बड़ा भारी मत्स्य हूँ। मैं जो प्रभुके सामने इसमें कुछ भी बनावटी बात कहता होऊँ, तो जीभ जल जाय ॥६॥ मेरी बात सभी तरहसे बिगड़ चुकी है, केवल एक ही अच्छा बानक बन रहा है, और वह यह, कि तुलसीदासने यह बात अपने दयालु स्वामीको जना दी है। (अब स्वामी आप ही बिगड़ी बनावेंगे) ॥७॥

राग आसावरी

[१८३]

राम! प्रीतिकी रीति आप नीके जनियत है।
बड़ेकी बड़ाई, छोटेकी छोटाई दूरि करै,
ऐसी बिरुदावली, बलि, बेद मनियत है ॥ १ ॥
गीधको कियो सराध, भीलनीको खायो फल,
सोऊ साधु-सभा भलीभाँति भनियत है।

रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत,
जोग ग्यान हूँ तें गरू गनियत है ॥ २ ॥
प्रभुकी कृपा कृपालु ! कठिन कलि हूँ काल,
महिमा समुझि उर अनियत है ।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबन्धु ! द्वारे हठ ठनियत है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! प्रीतिकी रीति आप ही भलीभाँति जानते हैं। बलिहारी ! वेद आपकी विरदावलीको इस प्रकार मान रहे हैं कि आप बड़ेका बड़प्पन (अभिमान), एवं छोटेकी छोटाई (दीनता) को दूर कर देते हैं ॥१॥ आपने जटायु गीधका श्राद्ध किया और शबरीके फल (बेर) खाये; यह बात भी सन्त-समाजमें अच्छी तरह बखानी जाती है कि जिस किसीका आपने आदर किया, लोक और वेद दोनों ही उसका आदर करते हैं। आपका प्रेम, योग तथा ज्ञानसे भी बड़ा माना जाता है ॥२॥ हे कृपालु ! आपकी कृपासे इस कठिन कलिकालमें भी आपकी महिमाको समझकर भक्तजन हृदयमें धारण करते हैं । यद्यपि तुलसी दूसरोंके (विषयोंके) अधीन होनेके कारण (आपके प्रेमसे) अनरस अर्थात् प्रेमहीन हो रहा है, तथापि हे दीनबन्धु ! वह आपके द्वारपर धरना दिये बैठा है (आपकी कृपा-दृष्टि पाये बिना हटनेका नहीं) ॥३॥

१८४]

राम-नामके जपे जाइ जियकी जरनि ।
कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये,
जैसे तम नासिबेको चित्रके तरनि ॥ १ ॥

करम-कलाप परिताप पाप-साने सब,
ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि ।
दंभ, लोभ, लालच, उपासना बिनासि नीके,
सुगति साधन भई उदर भरनि ॥ २ ॥
जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग-ग्यान,
बचन बिसेष बेष, कहूँ न करनि ।
कपट कुपथ कोटि, कहनि-रहनि खोटि,
सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥ ३ ॥
मरत महेस उपदेस हैं कहा करत,
सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि ।
राम-नामको प्रताप हर कहैं, जपैं आप,
जुग जुग जानैं जग, बेदहूँ बरनि ॥ ४ ॥
मति राम-नाम ही सों, रति राम-नाम ही सों,
गति राम-नाम ही की बिपति-हरनि ।
राम-नामसों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक,
तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥ ५ ॥

भावार्थ—श्रीराम-नाम जपनेसे ही मनकी जलन मिट जाती है। इस कलियुगमें (योग-यज्ञादि) दूसरे साधन तो सब वैसे ही व्यर्थ हो गये हैं जैसे अँधेरा दूर करनेके लिये चित्रलिखित सूर्य व्यर्थ है ॥१॥ कर्म तो बहुतेरे दुःख और पापोंमें सने हैं। कर्मोंका करना इस समय ऐसा है, जैसे किसी वृक्षमें बड़े ही सुन्दर फूल फूलें, पर फल लगे

ही नहीं। दम्भ, लोभ और लालचने उपासनाका भलीभाँति नाश कर दिया है। और मोक्षका साधन ज्ञान आज पेट भरनेका साधन हो रहा है। (इस प्रकार कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंकी ही बुरी दशा है) ॥२॥ न तो योग ही बनता है, न समाधि ही उपाधिरहित है, वैराग्य और ज्ञान लम्बी-चौड़ी बातें बनाने और वेष बनानेभरके ही रह गये हैं। करनी कुछ भी नहीं, केवल कथनी है। कपट-भरे करोड़ों कुमार्ग चल पड़े हैं। कहनी और रहनी सभी खोटी हो गयी हैं। सभी अपने-अपने आचरणोंकी सराहना करते हैं ॥३॥ (एक राम-नामकी महिमा रही है) शिवजी गंगाके किनारे काशीकी धर्म-भूमिपर मरते समय जीवको क्या उपदेश देते हैं? वे श्रीराम-नामके प्रतापका वर्णन करते हैं। दूसरोंसे कहते हैं और स्वयं भी जपते हैं। अनेक युगोंसे इसे संसार जानता है और वेद भी कहते चले आये हैं ॥४॥ अब तो राम-नामहीमें अपनी बुद्धिको लगाना चाहिये, राम-नामहीसे प्रेम करना चाहिये और राम-नामहीकी शरण लेनी चाहिये। क्योंकि एक यही साधना जीवकी जन्म-मरणरूप विपत्तियोंको दूर करनेवाली है। हे तुलसी! राम-नामपर विश्वास और दृढ़ प्रेम बनाये रक्खेगा, तो कभी-न-कभी श्रीरामजी अवश्य ही अपने दयालु स्वभावसे तुझपर दया करेंगे ॥५॥

[१८५]

लाज न लागत दास कहावत।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ॥१॥
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जाग बनावत।
मो-सम मंद महाखल पाँवर, कौन जतन तेहि पावत ॥२॥

हरि निरमल, मलग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥३॥
जाकी सरन जाइ कोबिद दारुन त्रयताप बुझावत ।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति, सरगहुँ मिटत न सावत ॥४॥
भव-सरिता कहँ नाउ संत, यह कहि औरनि समुझावत ।
हौं तिनसों हरि ! परम बैर करि, तुम सों भलो मनावत ॥५॥
नाहिंन और ठौर मो कहँ, ताते हठि नातो लावत ।
राखु सरन उदार-चूड़ामनि ! तुलसिदास गुन गावत ॥६॥

भावार्थ—हे हरे ! मुझे (आपका) दास कहलानेमें लज्जा भी नहीं आती ! जो आचरण आपको अच्छा लगता है, उसे मैं बिना किसी विचारके छोड़ देता हूँ। (सन्तोंके आचरण छोड़ देनेमें मुझे पश्चात्तापतक भी नहीं होता। इतनेपर भी मैं आपका दास बनता हूँ) ॥१॥ मुनिगण जिसे सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर भजते हैं, जिसके लिये जप, तप और यज्ञ करते हैं, उस प्रभुको मुझ-जैसा मूर्ख, महान् दुष्ट और पापी कैसे पा सकता है ? ॥२॥ भगवान् तो विशुद्ध हैं और मेरा हृदय पापपूर्ण महामलिन है, मुझे यह असमञ्जस जान पड़ता है। जिस तालाबमें कौए, गीध, बगुले और सूअर रहते हैं वहाँ हंस क्यों आने लगे ? भाव यह कि मेरे काम, क्रोध, लोभ, मोहभरे मलिन हृदयमें भगवान् नहीं आवेंगे। वह तो उन्हीं मुनियोंके हृदय-मन्दिरमें विहार करेंगे जिन्होंने निष्काम कर्म, वैराग्य, भक्ति, ज्ञान आदि साधनोंद्वारा अपने हृदयको निर्मल बना लिया है ॥३॥ जिन (तीर्थों) की शरणमें जाकर ज्ञानके साधक पुरुष सांसारिक तीनों कठिन तापोंको

बुझाते हैं, वहाँ भी जानेपर मुझे तो अहंकार, अज्ञान और लोभ और भी अधिक सतावेंगे, क्योंकि सौतियाडाह स्वर्गमें भी नहीं छूटता, वहाँ भी साथ लगा फिरता है ॥४॥ मैं दूसरोंको यह कहकर समझाता फिरता हूँ, कि 'देखो, संसाररूपी नदीके पार जानेके लिये सन्तजन ही नौका हैं'— किन्तु, हे हरे! मैं (स्वयं) उनसे बड़ी भारी शत्रुता करके आपसे अपना कल्याण चाहता हूँ ॥५॥ (पर ऐसा होनेपर भी कहाँ जाऊँ) मुझे और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है, इसीसे (नालायक होता हुआ भी) आपसे जबरदस्ती सम्बन्ध जोड़ता फिरता हूँ। हे दाताओंमें शिरोमणि रघुनाथजी! यह तुलसीदास आपके गुण गा रहा है, (भलाई-बुराईकी ओर न देखकर अपने दयालु स्वभावसे ही) इसको अपना लीजिये ॥६॥

[१८६]

कौन जतन बिनती करिये।
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ॥१॥
जेहि साधन हरि! द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिये।
जाते बिपति-जाल निसिदिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥२॥
जानत हूँ मन बचन करम पर-हित कीन्हें तरिये।
सो बिपरीत देखि पर-सुख, बिनु कारन ही जरिये ॥३॥
श्रुति पुरान सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये।
निज अभिमान मोह इरिषा बस तिनहिं न आदरिये ॥४॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जातें भवनिधि परिये।
कहौ अब नाथ, कौन बलतें संसार-सोग हरिये ॥५॥

जब कब निज करुना-सुभावतें, द्रवहु तौ निस्तरिये।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिं, कत पचि-पचि मरिये ॥६॥

भावार्थ—हे नाथ ! मैं किस प्रकार आपकी विनती करूँ? जब अपने (नीच) आचरणोंपर विचार करता हूँ और समझता हूँ, तब हृदयमें हार मानकर डर जाता हूँ (प्रार्थना करनेका साहस ही नहीं रह जाता) ॥१॥ हे हरे! जिस साधनसे आप मनुष्यको दास जानकर उसपर कृपा करते हैं उसे तो मैं हठपूर्वक छोड़ रहा हूँ। और जहाँ विपत्तिके जालमें फँसकर दिन-रात दुःख ही मिलता है, उसी (कु) मार्गपर चला करता हूँ ॥२॥ यह जानता हूँ कि मन, वचन और कर्मसे दूसरोंकी भलाई करनेसे संसार-सागरसे तर जाऊँगा; पर मैं इससे उलटा ही आचरण करता हूँ, दूसरोंके सुखको देखकर बिना ही कारण (ईर्ष्याग्निसे) जला जा रहा हूँ ॥३॥ वेद-पुराण सभीका यह सिद्धान्त है कि खूब दृढ़तापूर्वक सत्संगका आश्रय लेना चाहिये, किन्तु मैं अपने अभिमान, अज्ञान और ईर्ष्याके वश कभी सत्संगका आदर नहीं करता, मैं तो सन्तोंसे सदा द्रोह ही किया करता हूँ ॥४॥ (बात तो यह है कि) मुझे सदा वही अच्छा लगता है, जिससे संसार-सागरहीमें पड़ा रहूँ। फिर, हे नाथ ! आप ही कहिये, मैं किस बलसे संसारके दुःख दूर करूँ ? ॥५॥ जब कभी आप अपने दयालु स्वभावसे मुझपर पिघल जायँगे तभी मेरा निस्तार होगा, नहीं तो नहीं। क्योंकि तुलसीदासको और किसीका विश्वास ही नहीं है, फिर वह किसलिये (अन्यान्य साधनोंमें) पच-पचकर मरे ॥६॥

[१८७]

ताहि तें आयो सरन सबेरें।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ ! न मेरें ॥१॥
लोभ-मोह-मद-काम-क्रोध रिपु फिरत रैनि-दिन घेरें।
तिन्हहिं मिले मन भयो कुपथ-रत, फिरै तिहारेहि फेरें ॥२॥
दोष-निलय यह बिषय सोक-प्रद कहत संत श्रुति टेरें।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो, हरि तुम्हरेहि प्रेरें ? ॥३॥
बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरें।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरें ॥४॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरें।
तुलसिदास यह बिपति बागुरौ तुम्हहिं सों बनै निबेरें ॥५॥

भावार्थ—हे नाथ ! (केवल तुम्हारा ही भरोसा है) इसी कारणसे मैं पहलेसे ही तुम्हारी शरणमें आ गया हूँ। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि साधन तो मेरे पास स्वप्नमें भी नहीं हैं (जिनके बलसे मैं संसार-सागरसे पार हो जाता) ॥१॥ मुझे तो लोभ, अज्ञान, घमण्ड, काम और क्रोधरूपी शत्रु ही रात-दिन घेरे रहते हैं, ये क्षणभर भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ते। इन सबके साथ मिलकर यह मन भी कुमार्गी हो गया है। अब यह तुम्हारे ही फेरनेसे फिरेगा ॥२॥ सन्तजन और वेद पुकार-पुकारकर कहते हैं कि संसारके यह सब विषय पापोंके घर हैं और शोकप्रद हैं, यह जानते हुए भी मेरा उन विषयोंमें ही जो इतना अनुराग है, सो हे हरि ! यह तुम्हारी ही प्रेरणासे तो नहीं है ? (नहीं तो मैं जान-

बूझकर ऐसा क्यों करता ?) ॥३॥ (जो कुछ भी हो, तुम चाहो तो) विषको अमृत एवं अग्निको बरफ बना सकते हो और बिना ही जहाजोंके संसार-सागरसे पार कर सकते हो। तुम-सरीखा कृपालु और परम हितकारी स्वामी ढूँढ़नेपर भी कहीं नहीं मिलेगा। (ऐसे स्वामीको पाकर भी मैंने अपना काम नहीं बनाया तो फिर मेरे समान मूर्ख और कौन होगा ?) ॥४॥ इसी बातको हृदयमें जानकर, हे रघुनाथजी ! मैं सब छोड़-छाड़कर तुम्हारे भरोसे आ पड़ा हूँ। तुलसीदासका यह विपत्तिरूपी जाल तुम्हारे ही काटे कटेगा ! ॥५॥

[१८८]

मैं तोहिं अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट-आगार ॥ १ ॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किये बिचार।
ज्यों कदलीतरु-मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार ॥ २ ॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार।
महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोरयो हौं बारहिं बार ॥ ३ ॥
सुनु खल ! छल-बल कोटि किये बस होहिं न भगत उदार।
सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार ॥ ४ ॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार।
सो परि डरै मरै रजु-अहि तें, बूझै नहिं ब्यवहार ॥ ५ ॥
निज हित सुनु सठ ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभुके दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार ॥ ६ ॥

भावार्थ—अरे (मायावी) संसार! अब मैंने तुझे (यथार्थ) जान लिया, तू प्रत्यक्ष ही कपटका घर है, पर अब मुझे भगवान्‌का बल मिल गया है इससे तू (अपने कपटजालमें) मुझको नहीं बाँध सकता, (परमात्माके बलका आश्रय लेते ही परमात्माकी मायासे बना हुआ संसार सर्वथा मिट गया, इसलिये अब मैं संसारके मायावी फन्देमें नहीं आ सकता) ॥१॥ तू देखनेमात्रको ही सुन्दर है, पर विचार करनेपर तो कुछ भी नहीं है, वस्तुतः तेरा अस्तित्व ही नहीं है। जैसे केलेके पेड़को देखो, उसमेंसे कभी गूदा निकलता ही नहीं (कितना ही छीलो, छिलका-ही-छिलका निकलता जायगा। यही दशा संसारकी है ॥२॥ अरे, तेरे लिये मैं अनेक जन्मोंमें भटकता फिरा, अनेक योनियोंमें गया, पर तेरा पार नहीं पाया। तू मुझे महामोहरूपी मृगतृष्णाकी नदीमें बार-बार डुबाता ही रहा ॥३॥ अरे दुष्ट! सुन, तू चाहे करोड़ों प्रकारके छल-बल कर; पर भगवान्‌का परमभक्त तेरे वशमें नहीं हो सकता, तू अपनी (विषयोंकी) सेना-समेत वहीं जाकर डेरा डाल, जिस हृदयमें श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण* भगवान्‌का वास न हो (जिस भक्तके हृदयमें भगवान्‌का वास है वहाँ तेरा क्या काम?) ॥४॥ जो तेरा भेद न जानता हो, उसीके साथ अपनी कपटकी चाल चल। वही रस्सीरूपी साँपसे डरकर मरेगा, जो उसके भेदको न जानता होगा ॥५॥ अरे शठ! अपने हितकी बात सुन, जो तू कुटुम्ब-समेत अपनी खैर चाहता है तो हठ न कर। तुलसीदासके प्रभु श्रीरघुनाथजीके सेवकोंको छोड़कर तू वहीं भाग जा जहाँ अहंकार

---

* इससे सिद्ध है कि गोसाईंजी श्रीराम और श्रीकृष्णमें कोई भेद नहीं मानते थे, जो वास्तविक सिद्धान्त है।

और काम रहते हों (जहाँ राम रहते हैं वहाँ अहंकार तथा काम नहीं; और जहाँ ये नहीं, वहाँ मायाका संसार कैसे रह सकता है?) ॥६॥

राग गौरी

[१८९]

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँ परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ॥ १ ॥
बाँस पुरान साज सब अठकठ, सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद*मंद मोल बिनु डोला रे ॥ २ ॥
बिषम कहार मार-मद-माते चलहिं न पाउँ बटोरा रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥ ३ ॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाउँ बझाऊ रे ।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥ ४ ॥
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँकर भूला रे ।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥ ५ ॥

भावार्थ—अरे भाई ! राम-राम, राम-राम कहते चलो, नहीं तो कहीं संसारकी बेगारमें पकड़े जाओगे तो फिर छूटना अत्यन्त कठिन हो जायगा। (राजाकी बेगारसे दो-चार दिनोंमें छूटा जा सकता है, पर संसारका जन्म-मरणका चक्र तो ज्ञान न होनेतक सदा चलता

---

* 'करमचन्द' बुरे प्रारब्धके लिये व्यंगोक्ति है। 'बड़ी-बड़ी बातें बनाता है, अपने करमचन्दकी करतूत तो देख' लोग ऐसा कहा करते हैं।

ही रहेगा । यदि राम-राम जपता चला जायगा, तो मायाजन्य विषयरूपी शत्रु तुझे बेगारमें न पकड़ सकेंगे। क्योंकि रामके दासपर रामकी माया नहीं चलती) ॥१॥ कुटिल कर्मचन्दने (हमारे पूर्व-जन्म-कृत पाप-कर्मोंके प्रारब्धने) बिना ही मोलके (संसार-चक्रकी कर्मानुसार स्वाभाविक गतिके अनुसार) ऐसा बुरा खटोला (भजनहीन तामसप्रधान मनुष्य-शरीर) हमें दिया है कि जिसके पुराना तो बाँस (अनादिकालीन अविद्या-मोह) लगा है, जिसके साज सब अंटसंट हैं, (चित्तकी तामस विषयाकार वृत्तियाँ हैं, जिनके कारण शरीरसे बुरे कर्म होते हैं—मनुष्य कुमार्गमें जाता है) जो सीधा तिकोन है (केवल अर्थ, काम और सकाम धर्मकी प्राप्तिमें ही लगा हुआ है, जिसे मोक्षका ध्यान ही नहीं है) ॥२॥ जिसके (उठाकर चलनेवाले) कहार विषम हैं और कामके मदमें मतवाले हो रहे हैं (शरीरको चलानेवाली पाँच इन्द्रियाँ हैं, कहारोंकी जोड़ी होनी चाहिये, पाँच होनेसे जोड़ी नहीं है इसीलिये विषम हैं, एक-से नहीं हैं और पाँचों ही इन्द्रियाँ विषय-भोगोंके पीछे मतवाली हो रही हैं। कुकर्मोंके कारण जब शरीर और मन ही तामस विषयाकार हैं तब इन्द्रियाँ विषयोंसे हटी हुई कैसे हों ?) और वे पाँव बटोरकर–समान पैर रखकर नहीं चलते । (इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंकी ओर दौड़ती हैं) इससे कभी ऊँचे कभी नीचे चलनेसे धक्के और झटके लग रहे हैं, इस खींच-तानमें बड़ा ही दुःख हो रहा है। (कभी स्वर्ग या कीर्ति आदिकी इच्छासे धर्म-कार्यमें, कभी भोगोंकी प्राप्तिके लिये संसारके विविध व्यवसायोंमें, कभी कामवश होकर स्त्रियोंके पीछे । सो भी समानभावसे नहीं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन अपने-अपने विषयों-

द्वारा कभी ऊँचे और कभी नीचे जाती हैं, फलस्वरूप जीव महान् क्लेश पाता है) ॥३॥ रास्तेमें काँटे बिछे हैं, कंकड़ पड़े हैं, (विषैली) बेलें लपेटती हैं और झाड़ियाँ उलझा लेती हैं, इसप्रकार जगह-जगह रुकना पड़ता है । (परमात्माको भुलाकर सांसारिक विषयोंके घने जंगलमें दौड़नेवाली इन्द्रियोंको विषय-नाशरूपी काँटे, प्रतिकूल विषयरूपी कंकड़, घर-परिवारकी ममतारूपी लपेटनेवाली बेलें और कामनारूपी उलझन है, जिनसे पद-पदपर रुककर दुःख भोगते हुए चलना पड़ता है ।) फिर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं त्यों-ही-त्यों अपना घर दूर होता चला जा रहा है । (संसारके भोगोंमें ज्यों-ज्यों मन फँसता है त्यों-ही-त्यों भगवत्-प्राप्तिरूप निज-निकेतन दूर होता जाता है) और कोई राह बतानेवाला भी नहीं है । (विषयी पुरुष सन्तोंका संग ही नहीं करते, फिर उन्हें सीधा परमार्थका रास्ता कौन बतावे ? संगवाले तो उलटा ही मार्ग बतलाते हैं) ॥४॥ मार्ग बड़ा कठिन है, (विषयोंके झाड़-झंखाड़ों और पहाड़-जंगलोंसे परिपूर्ण है) साथमें (भजनरूपी) राह-खर्च नहीं है, यहाँ-तक कि अपने गाँवका नामतक भूल गये हैं (भूलकर भी परमात्माका नाम नहीं लेते और परमात्म-स्वरूपपर विचार नहीं करते, अतएव भगवान्‌की कृपा बिना इस शरीरके द्वारा तो परमपदरूपी घर पहुँचना असम्भव ही है); इसलिये हे श्रीरामजी ! अब आप ही कृपा करके इस तुलसीदासके (जन्म-मरणरूपी) संसार-भयको दूर कीजिये ॥५॥

[१९०]

सहज सनेही रामसों तैं कियो न सहज सनेह ।
तातें भव-भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥ १ ॥

ज्यों मुख मुकुर बिलोकिये अरु चित न रहै अनुहारि ।
त्यों सेवतहुँ न आपने, ये मातु-पिता, सुत-नारि ॥ २ ॥
दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत ।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक, तन सेत ॥ ३ ॥
करि बीत्यो, अब करतु है, करिबे हित मीत अपार ।
कबहुँ न कोउ रघुबीर सो नेह निबाहनिहार ॥ ४ ॥
जासों सब नातो फुरै, तासों न करी पहिचानि ।
तातें कछू समुझ्यो नहीं, कहा लाभ कह हानि ॥ ५ ॥
साँचो जान्यो झूठको, झूठे कहँ साँचो जानि ।
को न गयो, को जात है, को न जैहै करि हितहानि ॥ ६ ॥
बद कह्यो, बुध कहत हैं, अरु हौंहुँ कहत हौं टेरि ।
तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हियकी आँखिन हेरि ॥ ७ ॥

भावार्थ—तूने स्वभावसे ही स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे स्वाभाविक स्नेह नहीं किया। इसीसे तू संसारी हो गया है(जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा है), परन्तु अब भी यह शिक्षा सुन ॥१॥ जैसे दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है, पर वह मुख वास्तवमें दर्पणके अन्दर नहीं होता, वैसे ही ये माता, पिता, पुत्र और स्त्री सेवा करते हुए भी अपने नहीं हैं (मायारूपी दर्पणके साथ तादात्म्य होनेसे ही इनमें अपना भाव दीखता है) ॥२॥ (संसारका सम्बन्ध तो स्वार्थका है) जैसे तिलोंमें फूल रख-रखकर उन्हें सुगन्धमय बनाते हैं किन्तु तेल निकाल लेनेपर खलीको व्यर्थ समझ-कर फेंक देते हैं, वैसे ही सम्बन्धियोंकी दशा है (अर्थात् जबतक स्वार्थ-

साधन होता है तबतक संगी रहते हैं और सम्मान करते हैं, फिर कोई बात भी नहीं पूछता)। इस पृथिवीपर ऐसे स्वार्थी भरे पड़े हैं, जिनका मन काला है, और शरीर सफेद है ॥३॥ तूने कितने मित्र बनाये, कितने बना रहा है और कितने अभी बनायेगा; किन्तु श्रीरघुनाथजी-जैसा प्रेमको (सदा एकरस) निभानेवाला मित्र कभी कोई मिलनेका ही नहीं ॥४॥ अरे! जिस (श्रीभगवान्) के कारण ही सारे नाते सच्चे प्रतीत होते हैं, उसके साथ तूने (आजतक) कभी पहचान ही नहीं की! इसीलिये तू अभीतक इस तत्त्वको नहीं समझ पाया कि (वास्तविक) लाभ क्या है और हानि क्या है ॥५॥ जिन्होंने मिथ्या (जगत्) को सत्य और सत्य (परमात्मा) को मिथ्या (असत्) मान रक्खा है, उनमें ऐसा कौन है जो अपने यथार्थ कल्याणका नाश करके (संसारसे) नहीं चला गया, नहीं जा रहा है, और नहीं जायगा (सारांश, ऐसे मूढ़ जीव बिना ही परमात्माको प्राप्त किये व्यर्थ ही मनुष्य-जीवनको खो देते हैं) ॥६॥ वेदोंने कहा है और विद्वान् भी कहते हैं तथा मैं भी पुकारकर कह रहा हूँ, कि तुलसीके स्वामी श्रीरघुनाथजी ही सच्चे हितू हैं। तू तनिक अपने हृदयके नेत्रोंसे देख ॥७॥

[१९१]

एक सनेही साचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेम-कनोड़ो रामसो नहिं दूसरो दयालु ॥१॥
तन-साथी सब स्वारथी, सुर ब्यवहार-सुजान।
आरत-अधम-अनाथ हित को रघुबीर समान ॥२॥
नाद निठुर, समचर सिखी, सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग, दिनकरु बड़े, पयद प्रेम-पथ कूर ॥३॥

जाको मन जासों बँध्यो, ताको सुखदायक सोइ ।
सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ ॥४॥
सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि ।
केहि दिवान दिन दीन को आदर-अनुराग बिसेखि ॥५॥
खग-सबरी पितु-मातु ज्यों माने, कपि को किये मीत ।
केवट भेंट्यो भरत ज्यों, ऐसो को कहु पतित-पुनीत ॥६॥
देइ अभागहिं भागु को, को राखै सरन सभीत ।
बेद-बिदित बिरुदावली, कबि-कोबिद गावत गीत ॥७॥
कैसेउ पाँवर पातकी, जेहि लई नामकी ओट ।
गाँठी बाँध्यो दाम तो, परख्यो न फेरि खर-खोट ॥८॥
मन मलीन, कलि किलबिषी होत सुनत जासु कृत काज ।
सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब-निवाज ॥९॥

भावार्थ—सच्चे स्नेही तो केवल एक कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। प्रेमका कृतज्ञ रामजीके समान कोई दूसरा दयालु नहीं है ॥१॥ इस शरीर-से सम्बन्ध रखनेवाले सभी स्वार्थी हैं, देवता व्यवहारमें चतुर हैं (जितनी सेवा करोगे, उतना ही फल देंगे। और यदि कुछ बिगड़ गया, तो सारा किया-कराया व्यर्थ कर देंगे)। दुखी, नीच और अनाथका हित करनेवाला श्रीरघुनाथजीके समान दूसरा कौन है? (कोई भी नहीं) ॥२॥ (अब प्रेमियोंकी दशा देखिये) राग अथवा संगीतका स्वर निर्दय होता है (उसीके कारण बेचारा हिरण जालमें फँसकर मारा जाता है)। अग्नि सबके साथ समान व्यवहार करनेवाली है, (बेचारे पतंगको उसीमें पड़कर

भस्म होना पड़ता है) जल भी प्रेमके निबाहनेमें वीर नहीं है (मछली तो उसके बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रहती, पर वह ऐसा है कि उसको मछलीके बिना कोई दुःख नहीं होता) । चन्द्रमा (आजन्म) रोगी है (उसका प्रेमी चकोर तो उसपर मुग्ध होकर अंगारे चुगता है किन्तु चन्द्रमा उसपर तनिक भी तर्स नहीं खाता)। सूर्य बड़प्पनमें भूल रहा है, (कमलकी तो कली-कली उसे देखकर खिल उठती है पर वह उसे नीच समझकर क्षणभरमें ही सुखा डालता है) और मेघ तो प्रेम-पंथके लिये बड़ा ही निर्दय है (बेचारे चातकको तरसाता ही नहीं, उसपर गरज-गरजकर ओले बरसाता है और बिजली गिराता है) ॥३॥ (पर क्या किया जाय) जिसका मन जिससे बँध गया, उसके लिये वही सुख देनेवाला होता है । (दुःखको भी सुख मान लेता है); किन्तु (मेरी दृष्टिमें) श्रीरघुनाथजी-सरीखा सरल, सुशील स्वामी दूसरा नहीं है ॥४॥ सेवा सुनते ही उसपर 'सही' कर देनेवाला—सेवा मान लेनेवाला दूसरा कौन है ? और अपराध देखकर भी उनपर कौन खयाल नहीं करता ? किसके दरबारमें दीनोंका सम्मान विशेष प्रेमसे किया जाता है ? ॥५॥ पक्षी (जटायु) और शबरीको किसने पिता और माताके समान माना ? बन्दरों (सुग्रीव आदि)को किसने अपना मित्र बनाया ? गुह निषादसे तो अपने सगे भाई भरतकी तरह हृदयसे लगाकर मिले; भला बताओ तो, पापियोंको पवित्र करनेवाला ऐसा दूसरा कौन है ? (कोई नहीं) ॥ ६ ॥ अभागेको कौन भाग्यवान् बनाता है ? डरे हुओंको कौन अपनी शरणमें रखता है ? वेदोंमें किसकी यश-गाथा गायी जा रही है, और कवि एवं विद्वान् किसके गीत गा रहे हैं ? (भगवान् रामचन्द्र ही एक ऐसे दीनबन्धु भक्तवत्सल

हैं) ॥७॥ जिसने उनके नाम (राम) का आश्रय लिया, चाहे वह कैसा ही नीच और पापी क्यों न हो, उसे श्रीरामने इस तरह अपना लिया, जैसे कोई (मिले हुए) धनको (तुरन्त) गाँठमें बाँध लेता है, और उसके खरे या खोटेपनको भी नहीं परखता ॥८॥ जो ऐसा मलिन मनवाला है कि जिसके कलियुगमें किये हुए कर्मोंको सुनकर सुननेवाले भी पापी हो जाते हैं, उस तुलसीदासको भी उन्होंने अपना दास मान लिया। श्रीरघुनाथजी ऐसे ही गरीबनिवाज हैं ॥९॥

[१९२]

जो पै जानकिनाथ सों नातो नेहु न नीच ।
स्वारथ-परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥ १ ॥
धरम बरन आश्रमनिके पैयत पोथिही पुरान ।
करतब बिनु बेष देखिये, ज्यों सरीर बिनु प्रान ॥ २ ॥
बेद- बिहित / बिदित साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि ।
राम-प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर-सरिता बिनु बारि ॥ ३ ॥
नाना पथ निरबानके, नाना बिधान बहु भाँति ।
तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-नाम दिन-राति ॥ ४ ॥

भावार्थ—अरे नीच ! यदि श्रीजानकीनाथ रामचन्द्रजीसे तेरा प्रेम और नाता नहीं है, तो तेरे स्वार्थ और परमार्थ कैसे सिद्ध होंगे ? इस अवस्थामें तो कुटिल कलियुगने तुझको बीचमें ही ठग लिया, (जिससे लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ गये) ॥१॥ (भगवान्‌के प्रेमसे विहीन लोगोंके

लिये) वर्ण और आश्रमके धर्म केवल पोथियों और पुराणोंमें ही लिखे पाये जाते हैं। उनके अनुसार कर्तव्य कोई नहीं करता, ऐसे कर्तव्य-हीन कोरे भेष वैसे ही हैं जैसे विना प्राणोंके शरीर हों। (उनसे कोई लाभ नहीं) ॥२॥ सुनते हैं कि वेदोंमें जितने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध (यज्ञ आदि) साधन हैं, वे सब अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारोंको देनेवाले हैं; किन्तु विना श्रीराम-प्रेमके उन सबका जानना-मानना वैसा ही है, जैसे बिना पानीके तालाब और नदियाँ। सारांश यह कि भगवत्-प्रेम-विहीन सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं ॥३॥ मुक्तिके अनेक मार्ग हैं और भाँति-भाँतिके साधन हैं, किन्तु हे तुलसी ! तू तो मेरे कहनेसे दिन-रात केवल राम-नामका ही जप किया कर (तेरा तो इसीसे कल्याण हो जायगा) ॥४॥

[१९३]

अजहुँ आपने रामके करतब समुझत हित होइ।
कहँ तू, कहँ कोसलधनी, तोको कहा कहत सब कोइ ॥१॥
रीझि निवाज्यो कबहिं तू, कब खीझि दई तोहिं गारि।
दरपन बदन निहारिकै, सुबिचारि मान हिय हारि ॥२॥
बिगरी जनम अनेककी सुधरत पल लगै न आधु।
'पाहि कृपानिधि' प्रेमसों कहे को न राम कियो साधु ॥३॥
बालमीकि-केवट-कथा, कपि-भील-भालु-सनमान।
सुनि सनमुख जो न रामसों, तिहि को उपदेसहि ग्यान ॥४॥
का सेवा सुग्रीवकी, का प्रीति-रीति-निरबाहु।
जासु बंधु बध्यो ब्याध ज्यों, सो सुनत सोहात न काहु ॥५॥

भजन बिभीषनको कहा, फल कहा दियो रघुराज ।
राम गरीब-निवाजके बड़ी बाँह-बोलकी लाज ॥६॥
जपहि नाम रघुनाथको, चरचा दूसरी न चालु ।
सुमुख, सुखद, साहिब, सुधी, समरथ, कृपालु, नतपालु ॥७॥
सजल नयन, गदगद गिरा, गहबर मन, पुलक सरीर ।
गावत गुनगन रामके केहिकी न मिटी भव-भीर ॥८॥
प्रभु कृतग्य सरबग्य हैं, परिहरु पाछिली गलानि ।
तुलसी तोसों रामसों कछु नई न जान-पहिचानि ॥९॥

भावार्थ—अब भी यदि तू अपनी (नीच करतूतोंको) और श्रीरामजीके (दयासे पूर्ण) करतबोंको समझ ले, तो तेरा कल्याण हो सकता है; कहाँ तू (रामविमुख, विषयोंमें लगा हुआ जीव) और कहाँ (अहैतुकी दयाके समुद्र) कोशलपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ! तुझे सब लोग क्या कहते हैं ? (कि यह रामका भक्त है । भक्त और भगवान्‌में कोई भेद नहीं होता । ऐसा कहलाना क्या तेरी करतूतोंका फल है ?) ॥१॥ अरे, जरा (विवेकरूपी) दर्पणमें (अपने मनरूपी) मुखको तो देख कि कब तो श्रीरामजीने प्रसन्न होकर तुझपर कृपा की है और कब गुस्सेमें आकर तुझे गालियाँ दी हैं ? (विचारनेसे तुझे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि श्रीरामने तो सदा कृपा ही की है, जो कुछ दोष है, सो तेरा ही है । भगवान् गुस्से होकर गालियाँ देने लगें तो जीवका निस्तार ही कैसे हो ?) फिर (अपनी करतूतोंके लिये) अपनी हार मान (न तो यह समझ कि मेरी करनीसे मैं भक्त कहलाया हूँ और न उनपर दोषारोपण ही कर कि भक्त होनेपर भी वे मेरा

उद्धार क्यों नहीं करते?) ॥२॥ अरे, (उनको उद्धार करते देर ही क्या लगती है) अनेक जन्मोंकी बिगड़ी हुई दशा सुधारनेमें उन्हें आधा पल भी नहीं लगता। 'हे कृपानिधान! मेरी रक्षा कीजिये'—प्रेमसे इतना कहते ही ऐसा कौन पापी है जिसको श्रीरामचन्द्रजीने (सच्चा) साधु नहीं बना दिया? ॥३॥ वाल्मीकि और गुह निषादकी कथा तथा सुग्रीव, हनुमान्, शबरी, रीछ जाम्बवान् आदिके आदर-सत्कारकी बात सुनकर भी जो श्रीरामजीके शरण नहीं हुआ, उस (मूर्ख)को कौन ज्ञानका उपदेश कर सकता है? ॥४॥ सुग्रीवने कौन-सी सेवा की, और कौन-सी प्रीतिकी रीति निवाही थी? (राज्य पाकर वह तो श्रीरामजीके कार्यको भूल गया!) पर उसके भी भाई बालिको (अपने ऊपर कलंक लेकर भी) व्याधकी नाईं मार डाला। इस प्रकार मारनेकी बात सुनकर (भक्तोंके अतिरिक्त और) किसीको भी वह अच्छी नहीं लगती ॥५॥ विभीषणने कौन-सा भजन किया था? किन्तु रघुनाथजीने उसे, उसके बदलेमें क्या फल दिया? (लंकाका महान् साम्राज्य और अपना अचल प्रेम।) असलमें, गरीबनिवाज श्रीरामचन्द्रजीको (शरणागतके) रक्षा करनेके वचनकी बड़ी लाज है। (शरण आये हुएके पिछले कर्मोंकी ओर वे देखते ही नहीं) ॥६॥ इसलिये तू रघुनाथ-जीका ही नाम जपा कर, दूसरी चर्चा ही न चलाया कर, क्योंकि सुन्दर, सुख देनेवाले, बुद्धिमान्, समर्थ, कृपासागर और शरणागतकी रक्षा करनेवाले स्वामी एक वही हैं ॥ ७ ॥ ऐसा कौन है जिसने आँखोंमें आँसू भरकर, गद्गद वाणीसे, प्रेमपूर्ण चित्तसे तथा पुलकित होकर श्रीरामचन्द्रजीकी गुणा-वलिका गान किया हो, और उसका सांसारिक कष्ट (जन्म-मरण) नहीं छूट गया हो? ॥८॥ पश्चात्ताप करना छोड़ दे। प्रभु रामचन्द्रजी उपकार मानने-

वाले और सभी बाहर-भीतरकी,आगे-पीछेकी बातोंको जाननेवाले हैं (उनसे तेरी कोई करनी छिपी नहीं है)। तुलसीदास ! रामजीसे तेरी कुछ नयी जान-पहचान नहीं है। (उनपर दृढ़ भरोसा रख) ॥९॥

[१०५]

जो अनुराग न राम सनेही सों।
तौ लह्यो लाहु कहा नर-देही सों ॥१॥
जो तनु धरि, परिहरि सब सुख, भये सुमति राम-अनुरागी।
सो तनु पाइ अघाइ किये अघ, अवगुन-उदधि अभागी ॥२॥
ग्यान-बिराग, जोग-जप, तप-मख, जग मुद मग नहिं थोरे।
राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि-हिलोरे ॥३॥
लोक बिलोकि, पुरान-बेद सुनि, समुझि-बूझि गुरु ग्यानी।
प्रीति-प्रतीति राम-पद-पंकज सकल-सुमंगल-खानी ॥४॥
अजहुँ जानि जिय, मानि हारि हिय, होइ पलक महँ नीको।
सुमिरु सनेहसहित हित रामहिं, मानु मतो तुलसीको ॥५॥

भावार्थ—यदि परम स्नेही श्रीरामचन्द्रजीके प्रति प्रेम नहीं है, तो नर-शरीर धारण करनेसे लाभ ही क्या हुआ ? (भगवान्‌में अनन्य प्रेम होना ही तो मनुष्य-जीवनका परम लाभ है) ॥१॥ जिस शरीरको धारण कर शुद्ध बुद्धिवाले पुरुष सारे संसारी सुखोंको (विषवत्) त्यागकर श्रीरामजीके प्रेमी बनते हैं, उस (दुर्लभ) शरीरको भी पाकर, अरे महानीच अभागे ! तूने पेट भर-भरकर पाप ही किये ! ॥२॥ जगत्‌में ज्ञान, वैराग्य, योग, जप, तप, यज्ञ आदि आनन्द (मोक्ष) के मार्गोंकी कमी नहीं है; किन्तु बिना

श्रीरामजीके प्रेमके ये सारे साधन वैसे ही व्यर्थ हैं, जैसे मृगतृष्णाके समुद्रकी लहरें ॥३॥ संसारको देखकर, पुराणों और वेदोंको सुनकर तथा ज्ञानी-गुरुजनोंसे समझ-बूझकर श्रीरामजीके चरणारविन्दोंमें प्रेम और विश्वास करना ही समस्त कल्याणोंकी खानि है ॥४॥ यदि अब भी तूने मनमें समझ लिया और अपने हृदयमें हार मान ली, (अभिमान छोड़कर शरण हो गया) तो एक क्षणमें ही तेरा कल्याण हो जायगा । प्रेमपूर्वक (सच्चे) हितकारी श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर, तुलसीदासका यह सिद्धान्त मान ले ॥५॥

[१९५]

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं । कीजै कृपा आपनी नाईं ॥ १ ॥
परमारथ सुरपुर-साधन सब स्वारथ सुखद भलाई ।
कलि सकोप लोपी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई ॥ २ ॥
जहँ जहँ चित चितवत हित, तहँ नित नव बिषाद अधिकाई ।
रुचि-भावती भभरि भागहि, समुहाहिं अमित अनभाई ॥ ३ ॥
आधि-मगन मन,ब्याधि-बिकल तन, बचन मलीन झुठाई ।
एतेहुँ पर तुमसों तुलसीकी प्रभु सकल सनेह सगाई ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मेरे नाथ श्रीरामजी ! मैं आपपर बलि जाता हूँ । आप अपने स्वभावसे ही मुझपर कृपा कीजिये ॥१॥ परमार्थके, स्वर्गके तथा सांसारिक स्वार्थके सुख देनेवाले और कल्याण-कारक जितने (शम, दम, तप, यज्ञ आदि) उपाय हैं, उन सबकी रीतियोंको कलियुगने क्रोध करके लुप्त कर दिया है, और अपनी (दम्भ, कपट, निन्दा आदि) दुःखदायक

कुचालोंको चला दिया है ॥२॥ जहाँ-जहाँ यह मन अपना हित देखता है, वहीं नित्य नये दुःख बढ़ते ही जाते हैं। रुचिको अच्छी लगनेवाली बातें दूरसे ही डरकर भाग जाती हैं और जिनको मन नहीं चाहता वे ही अपार चीजें सामने आ जाती हैं। अर्थात् सुखके लिये चेष्टा करनेपर भी अपार दुःख ही आते हैं ॥३॥ मन चिन्ताओंमें डूब रहा है, शरीर रोगोंके मारे व्याकुल है, और वाणी झूठी तथा मलिन हो रही है (सदा असत्य, कठोर और कुवाच्य ही बोलती है)। किन्तु यह सब होते हुए भी हे नाथ! आपके साथ इस तुलसीदासका सम्बन्ध और प्रेम ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। (धन्य हैं जो इस प्रकारके अधमके साथ भी प्रेमका सम्बन्ध स्थायी रखते हैं।) ॥४॥

[१९६]

काहेको फिरत मन, करत बहु जतन,
मिटै न दुख बिमुख रघुकुल-बीर।
कीजै जो कोटि उपाइ, त्रिबिध ताप न जाइ,
कह्यो जो भुज उठाय मुनिबर कीर ॥ १ ॥
सहज टेव बिसारि तुही धौं देखु बिचारि,
मिलै न मथत बारि घृत बिनु छीर।
समुझि तजहि भ्रम, भजहि पद-जुगम,
सेवत सुगम, गुन गहन गँभीर ॥ २ ॥
आगम निगम ग्रंथ, रिषि-मुनि, सुर-संत,
सब ही को एक मत सुनु, मतिधीर।

तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु,
जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर ॥ ३ ॥

भावार्थ—अरे मन ! तू किसलिये बहुत-से प्रयत्न करता फिरता है ? जबतक तू श्रीरघुकुल-शिरोमणि रामजीसे विमुख है तबतक (दूसरे कितने भी साधनोंसे तेरा दुःख नहीं मिटेगा)। भगवद्विमुख करोड़ों उपाय क्यों न करे, पर उसके दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों ताप नष्ट नहीं हो सकते, यह बात मुनि-श्रेष्ठ शुकदेवजीने भुजा उठाकर कही है ॥१॥ अपने स्वभावकी टेवको छोड़कर—श्रीराम-विमुखताकी आदत छोड़कर एकाग्र चित्तसे तू ही विचारकर देख कि कहीं पानीके मथनेसे, विना दूधके घी मिल सकता है ? (इसी प्रकार विषयोंमें रत रहनेसे कभी सुख नहीं मिल सकता)। इस बातको समझकर भ्रमको छोड़ दे, और श्रीरामचन्द्रजीके उन युगल चरणोंका भजन कर, जो सेवासे सुलभ हैं और सद्गुणोंके गम्भीर वन हैं, अर्थात् जिन चरणोंकी सेवा करनेसे विवेक, वैराग्य, शान्ति, सुख आदि अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥ बुद्धि स्थिर करके शास्त्रों, वेदों, अन्य ग्रन्थों, ऋषियों, मुनियों, देवताओं और सन्तोंका जो एक निश्चित सिद्धान्त है, उसे सुन (वह सिद्धान्त यही है कि सब आशाओंको छोड़कर श्रीभगवान्‌के शरण होना चाहिये)। हे तुलसीदास ! यद्यपि गंगाका तट निकट है, तो भी विना स्वामीके पशु प्यासा ही मरा जाता है (इसी प्रकार यद्यपि भगवत्-प्राप्तिरूप परमसुख सहज ही मिल सकता है पर भगवान्‌की शरण हुए विना वह दुर्लभ हो रहा है) ॥३॥

[१९७]

नाहिंन चरन-रति, ताहि तें सहौं बिपति,
कहत श्रुति सकल मुनि मतिधीर।
बसै जो ससि-उछंग सुधा-स्वादित कुरंग,
ताहि क्यों भ्रम निरखि रबिकर-नीर ॥ १ ॥
सुनिय नाना पुरान, मिटत नाहिं अग्यान,
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर।
बँधत बिनहिं पास सेमर-सुमन-आस
करत चरत तेइ फल बिनु हीर ॥ २ ॥
कछु न साधन-सिधि, जानौं न निगम-बिधि,
नहिं जप-तप, बस मन, न समीर।
तुलसिदास भरोस परम करुना-कोस,
प्रभु हरिहैं बिषम भवभीर ॥ ३ ॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है, इसीसे मैं विपत्तियोंको भोग रहा हूँ, (मेरा ही नहीं) वेदों और समस्त बुद्धिमान् मुनियों-का (भी) यही कहना है। क्योंकि जो हिरण चन्द्रमाकी गोदमें बैठा अमृतका स्वाद ले रहा है, उसे भला मृगतृष्णाके जलमें भ्रम क्यों होगा? (जिस जीवने श्रीराम-पद-कमलोंके प्रेमानन्दका अनुभव कर लिया वह मिथ्या संसारी सुखोंमें क्यों भूलेगा?) ॥१॥ जैसे पक्षी (तोता) पढ़ता तो सब है, पर समझता कुछ नहीं है, वैसे ही बिना समझे अनेक पुराण सुननेसे अज्ञान नहीं मिटता। (अज्ञानी) तोता बिना ही फन्देके स्वयं बँध जाता है,

आप ही चौंगली पकड़कर लटक रहता है; वह (मूर्ख तोता) सेमरके फूलकी आशा करता है; पर ज्यों ही उसमें चोंच मारता है, उसे बिना गूदेका फल मिलता है अर्थात् रुईके सिवा उसमें खानेके लिये कुछ भी नहीं मिलता, तब पछताता है (इसी प्रकार मनुष्य विषयरूपी चौंगली पकड़कर आप ही बँधा रहता है तथा विषयोंसे सुखी होनेकी आशासे उनके बटोरनेमें लगा रहता है, परन्तु बिछुड़ते ही दुखी हो जाता है) ॥२॥ न तो मेरे पास कोई साधन है और न मुझे कोई सिद्धि ही प्राप्त है। न मैं वैदिक विधियोंको ही जानता हूँ, न मुझे जप-तप करना आता है और न प्राणायामसे ही मैंने मन वशमें किया है। इस तुलसीदासको तो करुणाके भण्डार भगवान् रामचन्द्रजीका ही एकमात्र भरोसा है। वही इसकी भयानक सांसारिक विपत्तिको दूर करेंगे, जन्म-मरणसे मुक्त करेंगे ॥३॥

राग भैरवी

[१९८]

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते ॥ १ ॥
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते ।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥ २ ॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।
अतहुँ तोहिं तजैंगे पामर ! तू न तजै अबही ते ॥ ३ ॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते ।
बुझै न/कि काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते ॥ ४ ॥

भावार्थ—अरे मन! (मनुष्य-जन्मकी आयुका यह) सुअवसर बीत जानेपर तुझे पछताना पड़ेगा। इसलिये इस दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर कर्म, वचन और हृदयसे भगवान्‌के चरण-कमलोंका भजन कर ॥१॥ सहस्रबाहु और रावण आदि (महाप्रतापी) राजा भी बलवान् कालसे नहीं बच सके, उन्हें भी मरना पड़ा। जिन्होंने 'हम हम' करते हुए धन और धाम सँभाल-सँभालकर रक्खे थे, वे भी अन्त समय यहाँसे खाली हाथ ही चले गये (एक कौड़ी भी साथ न गयी) ॥२॥ पुत्र, स्त्री आदिको स्वार्थी समझ, इन सबसे प्रेम न कर। अरे अधम! जब ये सब तुझे अन्त समयमें छोड़ ही देंगे, तो तू इन्हें अभीसे क्यों नहीं छोड़ देता? (इनका मोह छोड़कर अभीसे भगवानमें प्रेम क्यों नहीं करता?) ॥३॥ अरे मूर्ख! (अज्ञान-निद्रासे) जाग, अपने स्वामी (श्रीरघुनाथजी) से प्रेम कर और हृदयसे (सांसारिक विषयोंसे सुखकी) दुराशाको त्याग दे, (विषयोंमें सुख है ही नहीं, तब मिलेगा कहाँसे?) हे तुलसीदास! जैसे अग्नि बहुत-सा घी डालनेसे नहीं बुझती (अधिक प्रज्वलित होती है), वैसे ही यह कामना भी ज्यों-ज्यों विषय मिलते हैं त्यों-ही-त्यों बढ़ती जाती है। (यह तो सन्तोषरूपी जलसे ही बुझ सकती है) ॥४॥

[१९९]

काहेको फिरत मूढ़ मन धायो।

तजि हरि-चरन-सरोज सुधारस, रबिकर-जल लय लायो ॥ १ ॥

त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो।

गृह, बनिता, सुत, बंधु भये बहु, मातु-पिता जिन्ह जायो ॥ २ ॥

जाते निरय-निकाय निरंतर, सोइ इन्ह तोहि सिखायो ।
तुव हित होइ, कटै भव-बंधन, सो मगु तोहि न बतायो ॥३॥
अजहुँ बिषय कहँ जतन करत, जद्यपि बहुबिधि डहँकायो ।
पावक-काम भोग-घृत तें सठ, कैसे परत बुझायो ॥४॥
बिषयहीन दुख, मिले बिपति अति, सुख सपनेहुँ नहिं पायो ।
उभय प्रकार प्रेत-पावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो ॥५॥
छिन-छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु बृथा गँवायो ।
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि, काल-उरग जग खायो ॥६॥

भावार्थ—अरे मूर्ख मन ! किसलिये दौड़ा-दौड़ा फिरता है ? श्रीहरिके चरणकमलोंके अमृत-रसको छोड़कर (विषयरूपी) मृगतृष्णाके जलमें क्यों लौ लगा रहा है ॥१॥ पशु-पक्षी, देवता, मनुष्य, राक्षस और अन्यान्य सभी संसारी योनियोंमें तू भटक आया। इन सब योनियोंमें तेरे बहुत-से घर, स्त्री, पुत्र, भाई और तुझे उत्पन्न करनेवाले माता-पिता हो चुके हैं ॥२॥ इन सबने तुझे वही विषय-भोगोंका प्रेम सिखाया, जिसके करनेसे सदा अनेक नरकोंमें जाना पड़ता है। वह मार्ग कभी नहीं बताया, जिसपर चलनेसे तेरा संसारी वन्धन कट जाय—तेरी जन्म-मरणसे मुक्ति हो जाय, और तेरा परम कल्याण हो, मोक्षकी प्राप्ति हो ॥३॥ इस प्रकार यद्यपि तू कई तरहसे छला जा चुका है, फिर भी अबतक तू उन्हीं विषयोंके ही लिये जतन कर रहा है ! (बार-बार दुःख-भोगकर भी फिर उन्हींमें मन लगाता है) परन्तु अरे दुष्ट ! (तनिक विचार तो कर) कामना-रूपी अग्निमें भोगरूपी घी डालनेसे वह कैसे शान्त होगी ? (जितनी ही

११

भोगोंकी प्राप्ति होगी, कामनाकी अग्नि उतनी ही अधिक भड़केगी) ॥४॥ जब विषयोंकी प्राप्ति नहीं हुई तब तुझे बड़ा दुःख हुआ, (उनके नाशसे और उनके मिल जानेपर भी) बड़ी विपत्ति प्राप्त हुई, स्वप्नमें भी सुख नहीं मिला। इसलिये वेदोंने इस विषयरूपी धनको, दोनों ही प्रकारसे, भूतकी आगके समान दुःखप्रद बतलाया है (मतलब यह कि विषयी लोगोंको न तो विषयकी प्राप्तिमें सुख होता है, और न अप्राप्तिमें ही) ॥५॥ अरे! तेरा जीवन क्षण-क्षणमें क्षीण हो रहा है, इस दुर्लभ मनुष्य-शरीरको तूने व्यर्थ ही खो दिया। अतएव, हे तुलसीदास! तू संसारी सुखकी आशा छोड़कर केवल श्रीहरिका भजन कर। सावधान, कालरूपी साँप संसारको खाये जा रहा है (न जाने, कब किस घड़ी तू भी कालका कलेवा हो जाय) ॥६॥

[२००]

ताँबे सो पीठि मनहुँ तन पायो।
नीच, मीच जानत न सीस पर, ईस निपट बिसरायो ॥१॥
अवनि-रवनि, धन-धाम, सुहृद-सुत, को न इन्हहिं अपनायो ?
काके भये, गये सँग काके, सब सनेह छल-छायो ॥२॥
जिन्ह भूपनि जग-जीति, बाँधि जम, अपनी बाँह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हे, तू गिनती कब आयो ॥३॥
देखु बिचारि, सार का साँचो, कहा निगम निजु गायो।
भजहिं न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि, जेहि महेस मन लायो ॥४॥

भावार्थ—अरे जीव! मानो तूने ताँबेसे मढ़ा हुआ शरीर पाया है! (तभी तो कच्चे घड़ेके समान फूटनेवाले, पानीके बुदबुदेके समान

बात-की-बातमें नाश हो जानेवाले नश्वर शरीरको अजर-अमर मानकर भोगोंमें लीन हो रहा है) और तूने परमात्माको बिल्कुल ही भुला दिया। अरे नीच ! तू यह नहीं जानता कि मौत तेरे सिरपर नाच रही है ! ॥१॥ पृथ्वी, स्त्री, धन, मकान, मित्र और पुत्रको किसने नहीं अपनाया ? किन्तु (आजतक) ये किसके हुए ? (मरते समय) किसके साथ गये ? इन सबके प्रेममें केवल कपट भरा है ॥२॥ जिन राजाओंने दुनियाभरको जीतकर, यमराजको भी कैद कर अपने अधीन कर लिया था, उनका भी कालने जब एक दिन कलेवा कर डाला, तब तेरी तो गिनती ही क्या है ? ॥३॥ विचार कर देख, सच्चा सार क्या है ? और वेदोंने निश्चयरूपसे क्या कहा है ? हे तुलसी ! यह समझकर अब भी तू उस श्रीरामको नहीं भजता, जिसमें श्रीशिवजीने अपना मन लगा रक्खा है ॥४॥

[२०१]

लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥१॥
जो सुख सुरपुर-नरक, गेह-बन आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥२॥
पर-दारा, पर-द्रोह, मोहबस किये मूढ़ मन भाये।
गरभबास दुखरासि जातना तीब्र बिपति बिसराये ॥३॥
भय-निद्रा, मैथुन-अहार, सबके समान जग जाये।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गवाँये ॥४॥

गई न निज-पर-बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाये।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य-शरीर पानेसे क्या लाभ हुआ जब कि वह कभी, स्वप्नमें भी, मन, वाणी और शरीरसे दूसरेके काम नहीं आया ॥१॥ विषय-सम्बन्धी जो सुख स्वर्ग, नरक, घर और वनमें विना ही बुलाये, आप-से-आप आ जाता है, उस सुखके लिये, अरे मन ! तू अनेक प्रकारके उपाय कर रहा है ! समझानेपर भी नहीं समझता ॥२॥ हे मूढ़ ! तूने अज्ञानके वश होकर परायी स्त्रीके लिये और दूसरोंसे वैर करनेके लिये मनमाने आचरण किये । गर्भमें महान् दुःख, दारुण कष्ट और विपत्ति भोगी थी उसे भूल गया (यह नहीं सोचा कि इन मनमाने कु-कर्मोंसे फिर वही गर्भवासके दुःख भोगने पड़ेंगे) ॥३॥ डर, नींद, मैथुन और भोजन आदि तो संसारमें जन्म लेनेवाले सभी जीवोंमें एक-से हैं । परन्तु तूने तो देवताओंको भी दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर उससे भी भगवान्‌का भजन नहीं किया और अहंकार और घमण्डमें उसे खो दिया ॥४॥ जिनकी मेरे-तेरेकी भेदबुद्धि नष्ट नहीं हुई और शुद्ध अन्तःकरणसे जिन्होंने श्रीराममें चित्तको लीन नहीं किया उन्हें, हे तुलसीदास ! ऐसा यह (मनुष्य-शरीरका) सुअवसर निकल जानेपर फिर पछतानेसे क्या मिलेगा ? (इसलिये चेतकर अभी भगवान्‌के भजनमें लग जाना चाहिये) ॥५॥

[२०२]

काजु कहा नरतनु धरि सारयो ।
पर-उपकार सार श्रुतिको जो, सो धोखेहु न बिचारयो ॥१॥

द्वैत मूल, भय-सूल, सोक-फल, भवतरु टरै न टारयो।
रामभजन-तीछन कुठार लै सो नहिं काटि निवारयो ॥२॥
संसय-सिंधु नाम-बोहित भजि निज आतमा न तारयो।
जनम अनेक बिवेकहीन बहु जोनि भ्रमत नहिं हारयो ॥३॥
देखि आनकी सहज संपदा द्वेष-अनल मन-जारयो।
सम,दम,दया दीन-पालन, सीतल हिय हरि न सँभारयो ॥४॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम बचन बिसारयो।
तुलसिदास यहि आस, सरन राखिहि जेहि गीध उधारयो ॥५॥

भावार्थ—तूने मनुष्य-शरीर धारणकर कौन-सा कार्य सिद्ध किया ? जो परोपकार वेदोंका सार है, उसे तूने भूलकर भी नहीं बिचारा ॥१॥ यह संसाररूपी वृक्ष, जिसकी द्वैत अर्थात् भेदबुद्धि जड़ है, जिसमें भयरूपी काँटे हैं और दुःख जिसका फल है, हटानेपर भी नहीं हटता (क्योंकि जबतक इसकी द्वैतरूपी अज्ञानकी जड़ नहीं कटती तबतक इसका हटना असम्भव है)। यह केवल रामजीके भजनरूपी तेज कुल्हाड़ीसे ही कटता है, परन्तु तूने भजन करके उसे नहीं काटा ॥२॥ संशय (अज्ञान) रूपी समुद्रसे पार जानेके लिये राम-नाम नौकारूप है, सो उसका सेवन कर तूने अपने आत्माको नहीं तारा। अनेक जन्मतक, ज्ञानहीन रहकर बहुत-सी योनियोंमें घूमता हुआ भी तू अबतक नहीं थका ॥३॥ दूसरोंकी सहज सम्पत्ति देखकर द्वेषरूपी अग्निमें मनको जलाता रहा (हाय! उसके धनका नाश क्यों नहीं होता ? इसी द्वेषाग्निसे जलता रहा)। शम, दम, दया और दीनोंका पालन करते हुए हृदयको शान्त कर भगवान्‌का

स्मरण नहीं किया ॥४॥ तूने मनसे, कर्मसे और वचनसे अपने (सच्चे) स्वामी, गुरु, पिता और मित्र उन श्रीरघुनाथजीको भुला दिया। हे तुलसीदास! अब तो यही आशा है कि जिसने जटायु गीधको तार दिया था, वही तुझे भी अपनी शरणमें रक्खेंगे ॥५॥

[२०३]

श्रीहरि-गुरु-पद-कमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान ॥१॥
परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम-मिलन अति दूरि।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरिपूरि ॥२॥
दुइज द्वैत-मति छाड़ि चरहि महि-मंडल धीर।
बिगत मोह-माया-मद हृदय बसत रघुबीर ॥३॥
तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद।
गुन सुभाव त्यागे बिनु दुरलभ परमानंद ॥४॥
चौथि चारि परिहरहु बुद्धि-मन-चित-अहँकार।
बिमल बिचार परमपद निज सुख सहज उदार ॥५॥
पाँचइ पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप।
इन्ह कर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव-कूप ॥६॥
छठ षटबरग करिय जय जनकसुता-पति लागि।
रघुपति-कृपा-बारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि ॥७॥
सातैं सप्तधातु-निरमित तनु करिय बिचार।
तेहि तनु केर एक फल, कीजै पर-उपकार ॥८॥

आठइँ आठ प्रकृति-पर निरबिकार श्रीराम।
केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिं बहु काम ॥ ९ ॥
नवमी नवद्वार-पुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख लीन्ह ॥१०॥
दसइँ दसहु कर संजम जो न करिय जिय जानि।
साधन बृथा होइ सब मिलहिं न सारँगपानि ॥११॥
एकादसी एक मन बस कै सेवहु जाइ।
सोइ ब्रत कर फल पावै आवागमन नसाइ ॥१२॥
द्वादसि दान देहु अस, अभय होइ त्रैलोक।
परहित-निरत सो पारन बहुरि न ब्यापत सोक ॥१३॥
तेरसि तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवंत।
मन-क्रम-बचन-अगोचर, ब्यापक, ब्याप्य, अनंत ॥१४॥
चौदसि चौदह भुवन अचर-चर-रूप गोपाल।
भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जग-जाल ॥१५॥
पूनों प्रेम-भगति-रस हरि-रस जानहिं दास।
सम, सीतल, गत-मान, ग्यानरत, बिषय-उदास ॥१६॥
त्रिबिध सूल होलिय जरै, खेलिय अब फागु।
जो जिय चहसि परमसुख, तौ यहि मारग लागु ॥१७॥
श्रुति-पुरान-बुध-संमत चाँचरि चरित मुरारि।
करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥१८॥
संसय-समन, दमन दुख, सुखनिधान हरि एक।
साधु-कृपा बिनु मिलहिं न, करिय उपाय अनेक ॥१९॥

भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतनके चरन।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन ॥२०॥

भावार्थ—हे मन ! तू अभिमान छोड़कर भगवत्-रूपी श्रीगुरुके चरणारविन्दोंका भजन कर। जिनकी सेवा करनेसे आनन्दघन भगवान् श्रीहरिकी प्राप्ति हो जाती है ॥१॥ जैसे प्रतिपदा (पक्षमें सबसे पहला दिन है) उसी प्रकार (सर्व साधनोंमें) प्रथम प्रेम है। प्रेमके बिना श्रीरामजीका मिलना बहुत दूरकी बात है। यद्यपि वे बहुत ही निकट, सबके हृदयमें ही पूर्णरूपसे निवास करते हैं॥२॥ धीर भावसे (अचञ्चल चित्तसे) द्वितीयाके समान दूसरा साधन यह है, कि द्वैत-बुद्धि (ईश्वर और जीवमें भेद-बुद्धि) छोड़कर (समदृष्टिसे) समस्त पृथ्वी-मण्डलमें (निश्चिन्त होकर) विचरण करना चाहिये। मोह, माया और घमण्डसे रहित हृदयमें सदा श्रीरघुनाथजी निवास करते हैं ॥३॥ तृतीयाके समान तीसरा उपाय यह है, कि परम पुरुष, लक्ष्मीकान्त श्रीमुकुन्द भगवान् तीनों गुणोंसे परे हैं। अतएव (सत्त्व, रज और तम) त्रिगुणमयी प्रकृतिका त्याग कर देना चाहिये। ऐसा किये बिना परमानन्दकी प्राप्ति दुर्लभ है (जबतक पुरुष प्रकृतिमें स्थित है तभीतक वह जीव है और तभीतक सुख-दुःखका भोक्ता है। इस प्रकृतिमेंसे निकलकर स्व-स्थ—परमात्मारूपी स्व-रूपमें स्थित होनेसे ही मोक्षरूप परमानन्द मिलता है) ॥४॥ चतुर्थीके समान (भगवत्-प्राप्तिका) चौथा साधन यह है कि बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार—इनके समुदायरूप 'अन्तःकरण' का त्याग कर देना चाहिये (जबतक शरीर है

तबतक अन्तःकरण तो रहेगा ही, इसके त्यागका अर्थ यही है कि इसके साथ जो तादात्म्य हो रहा है उसे त्यागकर इसका द्रष्टा बन जाय। अथवा इसे भगवान्‌के अर्पण करके इसके द्वारा केवल भगवत्-सम्बन्धी कार्य ही करे)। ऐसा करनेसे निर्मल विवेकका उदय होगा, तब अपने आत्म-स्वरूपरूपी उदार आनन्दघन परम पदकी प्राप्ति होगी ॥५॥ पञ्चमीके अनुसार पाँचवाँ साधन यह है कि स्पर्श, रस, शब्द, गन्ध और रूप-इन पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंके कहनेमें अर्थात् इनके अधीन होकर न चलना चाहिये, क्योंकि इनके वश होनेसे जीवको संसाररूपी अँधेरे-गहरे कुएँमें गिरना पड़ेगा, (जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ना होगा) ॥६॥ षष्ठीके समान छठा उपाय यह है कि श्रीजानकी-नाथ श्रीरामजीकी प्राप्तिके लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य-इन छओं शत्रुओंको जीत लेना चाहिये। श्रीरामकी कृपारूपी जल बिना लोभरूपी अग्नि नहीं बुझती (भगवत्कृपा जीवपर सदा है ही, अतः उस कृपाका अनुभव कर इन लोभादि शत्रुओंको मारना चाहिये) ॥७॥ सप्तमीके समान सातवाँ साधन यह है, कि सात धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र) से बने हुए इस (अपवित्र, क्षणभङ्गुर परन्तु दुर्लभ मनुष्य-) शरीरपर विचार करना चाहिये। इस शरीरका केवल एक यही फल है, कि इससे परोपकार ही किया जाय ॥८॥ अष्टमीके समान आठवाँ उपाय यह है, कि निर्विकारस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी अष्टधा जड़ (अपरा) प्रकृति (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार) से परे हैं। अतएव जबतक हृदयमें नाना प्रकारकी कामनाएँ बनी हुई हैं तबतक वे कैसे मिल सकते हैं? ॥९॥ नवमीके समान नवाँ

साधन यह है कि जिसने इस नौ दरवाज़ेकी नगरी अर्थात् नौ छेदवाले शरीरमें रहकर अपने आत्माका कल्याण नहीं किया, वह अनेक योनियोंमें भटकता हुआ नाना प्रकारके दारुण दुःखोंको प्राप्त होगा (इसलिये आत्माके कल्याणके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये) ॥१०॥ दशमीके समान दसवाँ साधन यह है, कि जिसने दसों इन्द्रियोंका संयम करना नहीं जाना, इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया, उसके सारे साधन निष्फल हो जाते हैं और उस इन्द्रियोंके दास, असंयमी मनुष्यको भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥११॥ एकादशीके समान ग्यारहवाँ साधन यह है कि मनको वशमें करके एक श्रीभगवान्‌की ही सेवा करनी चाहिये। इसीसे (परमार्थरूपी एकादशी) व्रतका जन्म-मरणके नाशरूप (परम) फल मिलता है। अर्थात् वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है ॥१२॥ द्वादशीके दिन दान दिया जाता है, अतः बारहवाँ साधन यह है कि ऐसा (भगवत्-प्रीत्यर्थ निष्काम बुद्धिसे) दान देना चाहिये जिससे तीनों लोकोंसे भय न रहे (भगवत्प्राप्ति हो जाय)। उस द्वादशीरूपी बारहवें साधनका पारण यही है कि सदा परोपकारमें लगे रहना चाहिये। (इस दान और पारणसे) फिर शोक नहीं व्यापता ॥१३॥ त्रयोदशीके समान तेरहवाँ साधन यह है कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंको त्यागकर भगवान्‌का भजन करना चाहिये (भाव यह कि नित्य-निरन्तर, सोते-जागते, श्रीभगवद्-भजन ही करना चाहिये)। भगवान् मन, कर्म और वाणीसे जाननेमें नहीं आते, क्योंकि (बर्फमें जलकी भाँति) वे ही सबमें व्याप्त हैं और (स्वप्नके दृश्योंकी भाँति) स्वयं ही व्याप्य हो रहे हैं तथा असीम, अनन्त हैं (उनको तो वही जान

सकता है जिसको कृपापूर्वक वे जनाते हैं, उनकी कृपाका अनुभव नित्य-निरन्तर होनेवाले भजनसे होता है, अतः तीनों अवस्थाओंमें भजन ही करना चाहिये) ॥१४॥ चतुर्दशीके समान गो-पाल (इन्द्रियोंके नियन्ता) भगवान् चराचररूपसे चौदहों भुवनोंमें रम रहे हैं। परन्तु जबतक, जीवकी भेद-बुद्धि दूर नहीं होती तबतक श्रीरघुनाथजी संसार-रूपी जालको नहीं काटते, जीवको जन्म-मरणसे नहीं छुड़ाते (संसार-बन्धनसे छूटना हो तो अभेद-बुद्धिसे भगवानको भजना चाहिये) ॥१५॥ पूर्णमासीके समान (भगवानकी प्राप्तिका) पन्द्रहवाँ साधन, जो सर्वोत्कृष्ट और पूर्ण है, यह है कि प्रेम-भक्तिके रसमें सराबोर होकर भक्तको श्रीहरिका रस—भगवान्का परम रहस्यमय तत्त्व जानना चाहिये। इसीसे वह सर्वत्र समदर्शी, शान्त, अहंकाररहित, ज्ञानस्वरूप और विषयोंसे उदासीन हो सकता है ॥१६॥ (यहाँ गोसाईंजीने फाल्गुन-मासकी पूर्णमासीका वर्णन किया है। यह पूर्णमासी और महीनोंकी पूर्णमासीसे कहीं अधिक है, इस आनन्दमयी होलीकी फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन) दैहिक, दैविक, भौतिक—इन तीनों तापोंकी होली जलाकर भगवान्के साथ (प्रेमकी) खूब फाग खेलनी चाहिये (यही परम आनन्दकी अवस्था है)। यदि तू इस परमानन्दकी इच्छा करता है तो इसी मार्गपर चल (इन्हीं साधनोंमें लग जा) ॥१७॥ वेद, पुराण और विद्वानोंका यही एक मत है कि भगवान्की लीलाओंका गान ही होलीके गीत हैं। (खूब हरिकीर्तन करना चाहिये)। इन सब साधनोंपर विचार करके संसार-सागरसे तर जाना चाहिये। फिर कभी (भूलकर भी) यमलोकमें ले जानेवाली विषयोंकी धारामें नहीं पड़ना चाहिये ॥१८॥ सारे

सन्देहोंके नाश करनेवाले, दुःखोंके दूर करनेवाले और सुखके निधान केवल एक श्रीहरि ही हैं। चाहे जितने ही उपाय कर लो, सन्तोंकी कृपाके बिना वे नहीं मिल सकते (अतः सन्त-कृपा ही सर्व साधनोंमें प्रधान है) ॥१९॥ संसाररूपी समुद्रसे तरनेके लिये सन्तोंके पवित्र चरण ही नौका हैं। हे तुलसीदास! (इस नौकापर चढ़कर अर्थात् सन्तोंके चरणोंकी सेवा करनेसे) दुःखोंके नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बिना ही परिश्रमके मिल जायँगे ॥२०॥

राग कान्हरा

[२०४]

जो मन लागै रामचरन अस।
देह-गेह-सुत-बित-कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस ॥१॥
द्वंद्वरहित, गतमान, ग्यानरत, बिषय-बिरत खटाइ नाना कस।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न, कहु, क्यों न होंहि बस ॥२॥
सर्वभूत-हित, निर्ब्यलीक चित, भगति-प्रेम दृढ़ नेम, एकरस।
तुलसिदास यह होइ तबहिं जब द्रवै ईस, जेहि हतो सीसदस ॥३॥

भावार्थ—जो यह मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें वैसे ही लग जाय, जैसे कि यह बिना ही किसी प्रयत्नके स्वभावसे ही शरीर, घर, पुत्र, धन

१ 'कस' शब्द 'कांस्यक' या 'कांस्य' का अपभ्रंश मालूम होता है, कांस्यक पीतलको और कांस्य ताँवा-राँगा मिली हुई धातुको कहते हैं, इन दोनोंके पात्रोंमें ही खटाई विगड़ जाती है।

और स्त्रीमें मग्न हो जाता है ॥१॥ तो वह द्वन्द्वों (सुख-दुःख आदि) से रहित हो जाय, उसका अभिमान दूर हो जाय, वह ज्ञानमें तल्लीन हो जाय और विषयोंसे वैसे ही विरक्त हो जाय जैसे कि पीतल या ताँबा-राँगा मिली हुई धातुके बर्तनमें रक्खी हुई नाना प्रकारकी खटाइयोंसे उनके कड़वी हो जानेके कारण (मन हट जाता है)। (ऐसे अधिकारी भक्तपर) आनन्दघन चतुरशिरोमणि कोसलनाथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर क्यों न उसके अधीन हो जायँ ? ॥२॥ (जो जीव भगवच्चरणारविन्दोंमें इस प्रकार प्रेम करेगा वह महापुरुष ही) सब प्राणियोंके हितमें संलग्न, निर्विकार चित्तवाला, एकरस भक्तिप्रेम और भगवदीय नियमोंमें दृढ़ होता है; परन्तु हे तुलसीदास ! यह दशा तभी प्राप्त होती है, जब रावणके मारनेवाले स्वामी (श्रीरामजी) प्रसन्न होकर कृपा करते हैं ॥३॥

[२०५]

जौ मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु ।
तौ तज विषय-बिकार, सार भज, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु ॥१॥
सम, संतोष, बिचार बिमल अति,सतसंगति, ये चारि दृढ़ करि धरु ।
काम-क्रोध अरु लोभ-मोह-मद, राग-द्वेष निसेष करि परिहरु ॥२॥
श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु ।
नयननि निरखि कृपा-समुद्र हरि अग-जग-रूप भूप सीताबरु ॥३॥
इहै भगति, बैराग्य-ग्यान यह, हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु ।
तुलसिदास सिव-मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु ॥४॥

भावार्थ—हे मन ! यदि तू भगवत्‌रूपी कल्पवृक्षका सेवन करना चाहता है, तो विषयोंके विकारको छोड़कर सार-रूप श्रीराम-नामका भजन कर और जो मैं कहता हूँ उसे अब भी कर (अभीतक कुछ बिगड़ा नहीं) ॥१॥ समता, सन्तोष, निर्मल विवेक और सत्संग—इन चारोंको दृढ़तापूर्वक धारणकर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान एवं राग और द्वेषको बिल्कुल ही छोड़ दे, इनका लेशमात्र भी न रहे ॥२॥ कानोंसे भगवत्कथा सुन, मुखसे (राम) नाम जपा कर, हृदयमें श्रीहरिका ध्यान किया कर, मस्तकसे प्रणाम तथा हाथोंसे भगवान्‌की सेवा किया कर। नेत्रोंसे कृपासागर चराचर विश्वमय महाराज जानकीवल्लभ रामचन्द्रजीके दर्शन किया कर ॥३॥ यही भक्ति है, यही वैराग्य है, यही ज्ञान है और इसीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, अतएव तू इसी शुभ व्रतका आचरण कर। हे तुलसीदास ! यही शिवजीका बतलाया हुआ मार्ग है। इस (कल्याणमय) मार्गपर चलनेसे स्वप्नमें भी भय नहीं रहता (मनुष्य परमात्माको प्राप्तकर अभय हो जाता है) ॥४॥

[२०६]

नाहिन और कोउ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति-सम बिपति-निवारन।
काको सहज सुभाउ सेवकबस, काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥
जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपालु, भगत-चिंतामनि, बिरद पुनीत, पतितजन-तारन ॥२॥
सुमिरत सुलभ, दास-दुख सुनि हरि चलत तुरत, पटपीत सँभार न।
साखि पुरान-निगम-आगम सब, जानत द्रुपद-सुता अरु बारन ॥३॥

जाको जस गावत कबि-कोबिद, जिन्हके लोभ-मोह, मद-मार न।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु, कोसलपति मुनिबधू-उधारन ॥४॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीके समान विपत्तियोंका दूर करनेवाला तथा शरण लेने योग्य कोई दूसरा नहीं है। ऐसा किसका सरल स्वभाव है जो अपने सेवकोंके वशमें रहता हो? शरणागत भक्तोंपर किसका अहैतुक प्रेम है? ॥१॥ श्रीरघुनाथजी अपने दासके ज़रा-से भी गुणको सुमेरु पर्वतके सदृश महान् मानते हैं, और उसके करोड़ों दोषोंको देखकर भी उन्हें भूल जाते हैं। क्योंकि वे बड़े ही कृपालु, भक्तोंके (मनोरथको पूर्ण करनेवाले) चिन्तामणिस्वरूप, पवित्र करनेके विरदवाले और पतितोंको (संसार-सागर-से) उद्धार कर देनेवाले हैं ॥२॥ स्मरण करते ही, सहज ही मिल जाते हैं और अपने दासके दुःखको सुनकर इतनी जल्दी (दुःख दूर करनेके लिये) दौड़े आते हैं कि (देर होनेके भयसे) वे अपने पीताम्बरतकको नहीं सँभालते। इस बातके साक्षी पुराण, वेद, शास्त्र हैं, द्रौपदी और गजेन्द्र (आदि अच्छी तरह) जानते हैं ॥३॥ जिनके लोभ, मोह, मद और काम नहीं हैं, ऐसे कवि और ज्ञानी महात्मा जिनका यश गाते हैं, हे तुलसीदास! सारी (लोक-परलोककी) आशाओंको छोड़कर, अहल्याके उद्धार करनेवाले उन प्रभु श्रीकोशलनाथका ही तू भजन कर ॥४॥

[२०७]

भजिबे लायक, सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिन।
आनँदभवन, दुखदवन, सोकसमन रमारमन गुन गनत सिराहिं न १

आरत, अधम, कुजाति, कुटिल, खल, पतित,सभीत, कहूँ जे समाहिं न।
सुमिरत नाम बिबसहूँ बारक पावत सो पद, जहाँ सुर जाहिं न ॥२॥
जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर, बिरत जे परम सुगतिहु लुभाहिं न।
तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस, कारुनीक जो अनाथहिं दाहिन३

भावार्थ—भजन करने योग्य, सुख देनेवाला और शरणमें रखनेवाला स्वामी श्रीरघुनाथजीके समान दूसरा कोई नहीं है। उन आनन्दधाम, दुःखोंके नाश करनेवाले, शोकके हरनेवाले, लक्ष्मीरमण भगवान्‌के गुण गिनते-गिनते कभी पूरे नहीं होते ॥१॥ जो दुखी, नीच, अन्त्यज, कपटी, दुष्ट, पापी और भयभीत कहीं भी आश्रय नहीं पा सकते वे भी विवश होकर एक बार ही श्रीरामनाम-स्मरण कर उस (परम) पदपर पहुँच जाते हैं, जहाँ देवता भी नहीं जा सकते ॥२॥ जिनके चरणरूपी कमलोंमें ऐसे वैराग्य-सम्पन्न मुनिरूपी भ्रमर लुभाये रहते हैं, जिन्हें परमसुन्दर गति मोक्षतकका लोभ नहीं है। हे शठ तुलसीदास ! तू उस अनाथोंपर सदा कृपा करने-वाले (परम) करुणामय प्रभुका भजन क्यों नहीं करता ? ॥३॥

राग कल्याण

[२०८]

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं।
त्रिबिध बिधि अमित अवलोकि अघ आपने,
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥१॥

बिरचि हरिभगतिको बेष बर टाटिका,
कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं ।
नामलगि लाइ लासा ललित-बचन कहि,
ब्याध ज्यों बिषय-बिहँगनि बझावौं ॥२॥
कुटिल सतकोटि मेरे रोम पर वारियहि,
साधु गनतीमें पहलेहि गनावौं ।
परम बर्बर खर्ब गर्ब-पर्बत चढ़्यो,
अग्य सर्बग्य, जन-मनि जनावौं ॥३॥
साँच किधौं झूठ मोको कहत कोउ-
कोउ राम ! रावरो, हौं तुम्हरो कहावौं ।
बिरदकी लाज करि दास तुलसिहिं देव !
लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ॥४॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आपको मैं किस तरह विनती कहकर सुनाऊँ ? तीन तरहके (मन, वचन और कर्मसे उत्पन्न) अपरिमित प्रकारोंसे किये जानेवाले अपने पापोंकी ओर देखकर जब मैं आपके शरणमें सम्मुख आना चाहता हूँ तब संकोचके मारे सिर नीचा हो जाता है ॥१॥ भगवद्भक्तोंका भेष बनाकर मानो सुन्दर (धोखेकी) टट्टी बनाता हूँ और कपटरूपी हरे-हरे पत्तोंसे उसे छा देता हूँ । आपके (राम) नामकी लग्गी लगाकर, मधुर वचनोंका लासा लगा देता हूँ ! और फिर बहेलियेकी भाँति विषय-रूपी पक्षियोंको फाँस लेता हूँ । (लोगोंकी दृष्टिमें तिलक, माला, कण्ठी, राम-नामके गुणगान करनेवाला और मधुर वाणी बोलनेवाला महात्मा भक्त

बना फिरता हूँ, परन्तु मन-ही-मन विषयोंका चिन्तन करता हुआ उन्हींकी ताकमें लगा रहता हूँ) ॥२॥ मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि मेरे एक रोमपर सौ करोड़ पापी निछावर किये जा सकते हैं, पर तो भी अपनेको सन्तोंकी गिनतीमें सबसे पहले गिनवाना चाहता हूँ, सन्त-शिरोमणि बननेका दावा रखता हूँ। मैं बड़ा ही असभ्य और नीच हूँ, परन्तु घमण्डरूपी पहाड़पर चढ़ा बैठा हूँ। इसीसे तो मूर्ख होनेपर भी अपनेको सर्वज्ञ और भक्तश्रेष्ठ बतलाता हूँ ॥३॥ हे भगवन् ! कह नहीं सकता कि झूठ है या सच, पर कोई-कोई मेरे लिये यह कहते हैं कि 'यह रामजीका है' और मैं भी आपहीका कहलाया चाहता हूँ। हे देव ! इससे अब अपने बानेकी लाज रखकर इस तुलसीदासको अपना ही लीजिये (क्योंकि जब आपका कहलाकर भी दुष्ट ही रहूँगा तो आपके विरदकी लाज कैसे रहेगी ?) अब टालमटोल न कीजिये ॥४॥

[२०९]

नाहिनै नाथ ! अवलंब मोहि आनकी ।
करम-मन-बचन पन सत्य करुनानिधे,
एक गति राम ! भवदीय पदत्रानकी ॥ १ ॥
कोह-मद-मोह-ममतायतन जानि मन,
बात नहि जाति कहि ग्यान-बिग्यानकी ।
काम-संकलप उर निरखि बहु बासनहिं,
आस नहि एकहू आँक निरबानकी ॥ २ ॥

बेद-बोधित करम धरम बिनु अगम अति,
जदपि जिय लालसा अमरपुर जानकी।
सिद्ध-सुर-मनुज-दनुजादि सेवत कठिन,
द्रवहिं हठजोग दिये भोग बलि प्रानकी ॥ ३ ॥
भगति दुरलभ परम, संभु-सुक-मुनि-मधुप,
प्यास पदकंज-मकरंद-मधुपानकी।
पतित-पावन सुनत नाम बिश्रामकृत,
भ्रमित पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमानकी ॥ ४ ॥
नरक-अधिकार मम घोर संसार-तम-
कूपकहिं, भूप! मोहि सक्ति आपानकी।
दासतुलसी सोउ त्रास नहि गनत मन,
सुमिरि गुह गीध गज ग्याति हनुमानकी ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे नाथ! मुझे और किसीका आसरा नहीं है। हे करुणानिधान! मन, वचन और कर्मसे मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा है कि मुझे केवल एक आपकी जूतियोंका ही सहारा है ॥१॥ मेरा मन क्रोध, अभिमान, अज्ञान और ममताका स्थान है; इसलिये ज्ञान-विज्ञानकी बात तो उसके लिये कही ही नहीं जा सकती। हृदयमें अनेक कामनाओंके संकल्प और नाना प्रकारकी (विषय-) वासनाएँ देखकर मोक्षकी तो एक अंश भी आशा नहीं है ॥२॥ यद्यपि (कर्म-धर्म-हीन होकर भी) मेरे मनमें स्वर्ग जानेकी बड़ी लालसा लग रही है, पर वेदोक्त कर्म-धर्म किये बिना स्वर्गकी प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है। इसके सिवा सिद्ध, देवता,

मनुष्य एवं राक्षसोंकी सेवा भी बड़ी कठिन है। ये लोग तभी प्रसन्न होंगे जब इनके लिये हठयोग किया जाय, यज्ञका भाग दिया जाय और प्राणोंकी बलि चढ़ायी जाय। (यह सब भी मुझसे नहीं हो सकता, अतएव इन लोगोंकी कृपाकी आशा करना भी व्यर्थ है) ॥३॥ भक्ति (तो मुझ-सरीखे मनुष्यके लिये) परम दुर्लभ है; क्योंकि शिव, शुकदेव तथा मुनिरूप भौंरे भी आपके चरण-कमलोंके मधुर मकरन्दको पीनेके लिये सदा प्यासे ही बने रहते हैं (इस रसको पीते-पीते जब वे भी नहीं अघाते तब मुझ-जैसा नीच तो किस गिनतीमें है?) हाँ, आपका नाम अवश्य ही पतितोंको पावन करनेवाला तथा शान्ति (मोक्ष) देने-वाला सुना जाता है; किन्तु चित्तमें अभिमानकी गाँठें पड़ी रहनेके कारण (राम-नामके साधनसे भी) मन फिर भ्रम जाता है। (मैं इतना बड़ा समझदार और विद्वान् होकर मामूली राम-नाम लूँ, इस अभिमानके मारे राम-नामसे भी वञ्चित रह जाता हूँ) ॥४॥ हे महाराज! इन सब बातोंको देखते मेरा तो, बस, नरकमें ही जानेका अधिकार है, मेरे कर्मोंसे तो मैं घोर संसाररूपी अँधेरे कुएँमें पड़ा रहने योग्य ही हूँ, किन्तु इतनेपर भी मुझे आपका ही बल है। यह तुलसीदास अपने मनमें गुह, जटायु, गजेन्द्र और हनुमान्‌की जाति याद करके संसारके उस (जन्म-मरण) भयको कुछ भी नहीं समझता (अन्त्यज, पशु और पक्षियोंतकका उद्धार हो गया है तब मेरा क्यों न होगा? अर्थात् अवश्य होगा) ॥५॥

[२१०]

और कहँ ठौरु रघुबंस-मनि! मेरे।
पतित-पावन प्रनत-पाल असरन-सरन,
बाँकुरे बिरुद बिरुदैत केहि केरे ॥१॥

समुझि जिय दोस अति रोस करि राम जो,
करत नहिं कान बिनती बदन फेरे।
तदपि ह्वै निडर हौं कहौं करुना-सिंधु,
क्योंऽब रहि जात सुनि बात बिनु हेरे ॥२॥
मुख्य रुचि होत बसिबेकी पुर रावरे,
राम! तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे।
अगम अपबरग, अरु सरग सुकृतैकफल,
नाम-बल क्यों बसौं जम-नगर नेरे ॥३॥
कतहुँ नहिं ठाउँ, कहँ जाउँ कोसलनाथ!
दीन बितहीन हौं, बिकल बिनु डेरे।
दास तुलसिहिं बास देहु अब करि कृपा,
बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ॥४॥

भावार्थ—हे रघुवंशमणि! मेरे लिये (आपके चरणोंको छोड़कर) और कहाँ ठौर है? पापियोंको पवित्र करनेवाले, शरणागतोंका पालन करनेवाले एवं अनाथोंको आश्रय देनेवाले एक आप ही हैं। आपका-सा बाँका बाना किस बानेवालेका है? (किसीकाभी नहीं)॥१॥ हेरघुनाथजी! मेरे अपराधों-को मनमें समझकर, अत्यन्त क्रोधसे यद्यपि आप मेरी विनतीको नहीं सुनते और मेरी ओरसे अपना मुँह फेरे हुए हैं, तथापि मैं तो निर्भय होकर, हे करुणाके समुद्र! यही कहूँगा कि मेरी बात सुनकर (मेरी दीन पुकार सुनकर) मेरी ओर देखे बिना आपसे कैसे रहा जाता है? (करुणाके सागर-से दीनकी आर्त पुकार सुनकर कैसे रहा जाय?) ॥२॥ (यदि आप मेरी

मनोकामना पूछते हैं, तो सुनिये) सबसे प्रधान रुचि तो मेरी आपके परम-धाममें जाकर निवास करनेकी है; किन्तु हे नाथ ! उस मेरी रुचिको काम, क्रोध, लोभ और मोह आदिने घेर रक्खा है (इनके आक्रमणसे वह कामना दब जाती है)। मोक्ष तो दुर्लभ है, स्वर्ग मिलना भी कठिन है, क्योंकि वह केवल पुण्योंके फलसे ही मिलता है (मैंने कोई उत्तम कर्म तो किये नहीं, फिर स्वर्ग कैसे मिले ?) अब रही यमपुरी (नरक) सो उसके समीप भी आपके नामके बलसे नहीं जा सकता (राम-नाम लेनेवालेको यमराज अपनी पुरीके निकट ही नहीं आने देते) ॥३॥ (इससे) अब मुझे कहीं भी रहनेके लिये स्थान नहीं रहा, आप ही बताइये कहाँ जाऊँ ? हे कोशलनाथ ! मैं निर्धन और दीन हूँ (धनी होता, तो कहीं घर ही बनवा लेता), आश्रय-स्थानके न होनेसे व्याकुल हो रहा हूँ। इससे हे नाथ ! इस तुलसीदासको कृपाकर उसी गाँवमें रहनेकी जगह दे दीजिये जिसमें गजेन्द्र, जटायु, व्याध (वाल्मीकि) आदि रहते हैं ॥४॥

[२११]

कबहुँ रघुबंसमनि ! सो कृपा करहुगे ।
जेहि कृपा ब्याध, गज, बिप्र, खल नर तरे,
तिन्हहिं सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे ॥१॥
जोनि बहु जनमि किये करम खल बिबिध बिधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहि धरहुगे ।
दीनहित ! अजित सरबग्य समरथ प्रनतपाल
चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे ॥२॥

मोह-मद-मान-कामादि खल-मंडली
सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे।
जोग-जप-जग्य-बिग्यान ते अधिक अति,
अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥३॥
मंदजन-मौलिमनि सकल, साधन-हीन,
कुटिल मन, मलिन जिय जानि जो डरहुगे।
दासतुलसी बेद-बिदित बिरुदावली
बिमल जस नाथ! केहि भाँति बिस्तरहुगे ॥४॥

भावार्थ—हे रघुवंशमणि! कभी आप मुझपर भी वही कृपा करेंगे, जिसके प्रतापसे व्याध (वाल्मीकि), गजेन्द्र, ब्राह्मण अजामिल और अनेक दुष्ट संसारसागरसे तर गये? हे नाथ! क्या आप मुझे भी उन्हीं पापियोंके समान समझकर मेरा भी उद्धार करेंगे? ॥१॥ अनेक योनियोंमें जन्म ले-लेकर मैंने नाना प्रकारके दुष्ट-कर्म किये हैं। आप मेरे नीच आचरणोंकी बात तो हृदयमें न लायँगे? हे दीनोंका हित करनेवाले! क्या आप किसीसे भी न जीते जाने, सबके मनकी बात जानने, सब कुछ करनेमें समर्थ होने, और शरणागतोंकी रक्षा करने आदि अपने गुणोंका कोमल स्वभावसे अनुसरण करेंगे? (अर्थात् अपने इन गुणोंकी ओर देखकर, मेरे पापोंसे नहीं घिना कर, मेरे मनकी बात जानकर अपनी सर्वशक्तिमत्तासे मुझ शरणमें पड़े हुएका उद्धार नहीं करेंगे?) ॥२॥ मेरे हृदयमें अज्ञान, अहंकार, मान, काम आदि दुष्टोंकी जो मण्डली बस रही है, उसे परिवारसहित समूल नष्ट करके क्या आप मेरे असह्य दुःखोंको दूर करेंगे? और क्या

आप योग, जप, यज्ञ और विज्ञानकी अपेक्षा निर्मल और अधिक महत्त्व-वाली अपनी भक्तिको देकर मेरे हृदयमें परमानन्द भर देंगे ? ॥३॥ यदि आप इस तुलसीदासको नीचोंका शिरोमणि, सब साधनोंसे रहित, कुटिल एवं मलिन मनवाला मानकर अपने मनमें कुछ डरेंगे (कि इतने बड़े पापीका उद्धार करनेसे कदाचित् हमपर लोग अन्यायीपनका दोषारोपण करें) तो हे नाथ! फिर आप अपनी वेदविख्यात विरदावली तथा निर्मल कीर्ति-का विस्तार कैसे करेंगे ? (यदि आपको अपने बानेकी लाज है, तो मेरा उद्धार अवश्य ही कीजिये) ॥४॥

राग केदारा

[२१२]

रघुपति बिपति-दवन ।
परम कृपालु, प्रनत-प्रतिपालक, पतित-पवन ॥१॥
कूर, कुटिल, कुलहीन, दीन, अति मलिन जवन ।
सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन ॥२॥
गज-पिंगला-अजामिल-से खल गनै धौं कवन ।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन ॥३॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजी विपत्तियोंको दूर करनेवाले हैं। आप बड़े ही कृपालु, शरणागतोंके प्रतिपालक और पापियोंको पवित्र करनेवाले हैं ॥१॥ निर्दयी, दुष्ट, नीच जाति, ग़रीब और बड़े ही मलिन म्लेच्छतकको, राम-नामका स्मरण करते ही आपने अपने परम-धामको भेज दिया ॥२॥ गजेन्द्र, पिंगला वेश्या, अजामिल आदि (विषयोंमें मतवाले) दुष्टोंको कौन

गिने (न जाने इनके समान कितने पापियोंको अपना धाम दे दिया) हे तुलसीदास ! बात तो यह है कि जानकी-नाथ प्रभु रामचन्द्रजीने किस-किसको मुक्त नहीं कर दिया, (जिसने शरण ली, उसीको मुक्ति दे दी, फिर मुझे क्यों न देंगे ?) ॥३॥

[२१३]

हरि-सम आपदा-हरन ।
नहि कोउ सहज कृपालु दुसह दुख-सागर-तरन ॥ १ ॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन ।
दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ-धरन ॥ २ ॥
द्रुपदसुताको लग्यो दुसासन नगन करन ।
'हा हरि पाहि' कहत पूरे पट बिबिध बरन ॥ ३ ॥
इहै जानि सुर-नर-मुनि-कोबिद सेवत चरन ।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ॥ ४ ॥

भावार्थ—भगवान् श्रीहरिके समान विपत्तियोंका हरनेवाला, सहज ही कृपा करनेवाला और दुःसह दुःखरूपी समुद्रसे तारनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥१॥ जब गजराज अपना बल (क्षीण हुआ) देखकर (भेंटके लिये) कमलका फूल ले आपकी शरणमें गया तब उसके दीन वचन सुनकर सुदर्शनचक्र ले आप गरुड़को वहीं छोड़ तुरन्त ही (पैदल दौड़ते हुए) चले आये ॥२॥ जब (भरी सभामें) दुष्ट दुःशासन द्रौपदीका वस्त्र उतारने लगा, तब केवल उसके इतना कहनेपर ही कि 'हाय ! भगवन्, मेरी रक्षा कीजिये' आपने विविध रंगोंकी साड़ियोंका ढेर लगा दिया ॥३॥ (आपकी इसी दीनवत्सलताको) जानकर देवता,

मनुष्य, मुनि और विद्वान् आपके चरणोंकी सेवा करते हैं। राजा नृगका उद्धार करनेवाले भगवान्ने किसको अभय नहीं किया? (जो उनकी शरणमें गया, उसीको अभय कर दिया) ॥४॥

राग कल्याण

[२१४]

ऐसी कौन प्रभुकी रीति?
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥ १ ॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥ २ ॥
काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह।
जगत-पिता बिरंचि जिन्हके चरनकी रज लीन्ह ॥ ३ ॥
नेमतें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि।
कियो लीन सु आपुमें हरि राज-सभा मँझारि ॥ ४ ॥
ब्याध चित दै चरन मार्यो मूढ़मति मृग जानि।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥ ५ ॥
कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥ ६ ॥

भावार्थ—(भगवान्के सिवा) और किस स्वामीकी ऐसी रीति है जो अपने विरदके लिये पवित्र जीवोंको छोड़कर पामरोंपर प्रेम करता हो? ॥१॥ राक्षसी पूतना स्तनोंमें विष लगाकर उन्हें (भगवान् कृष्ण-

को) मारने गयी थी, किन्तु कृपालु यादवेन्द्र श्रीकृष्णने उसे माताकी-सी गति प्रदान की (उसका उद्धार कर दिया) ॥२॥ आपने काममोहित गोपियोंपर ऐसी अतुल कृपा की कि जगत्पिता ब्रह्माने भी उनके चरणोंकी धूलि (अपने मस्तकपर) चढ़ायी ॥३॥ जो शिशुपाल नियमसे प्रतिदिन गिन-गिनकर गालियाँ देता था उसको आपने राजाओंकी सभामें (पाण्डवोंके राजसूय-यज्ञमें) सबके देखते-देखते अपनेमें ही मिला लिया ॥४॥ मूर्ख बहेलियेने तो मृग समझकर आपके चरणमें निशाना लगाकर (बाण) मारा, पर उसे भी आपने अपनी दयालुताकी बान प्रकट करके सदेह अपने परमधामको भेज दिया ॥५॥ (इस प्रकारके जीवोंने) जिन्होंने पुण्य और पाप दोनों ही किये हैं उनके लिये तो क्या कही जाय ? (क्योंकि उनका तो सद्गति पानेका कुछ-न-कुछ अधिकार ही था) किन्तु उन्होंने प्रत्यक्ष पापमूर्ति तुलसीको भी तो शरणमें रख लिया है (इसीसे उनकी बान प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती है) ॥६॥

[२१५]

श्रीरघुबीरकी यह बानि ।
नीचहू सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥ १ ॥
परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि ?
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेमको पहिचानि ॥ २ ॥
गीध कौन दयालु, जो बिधि रच्यो हिंसा सानि ?
जनक ज्यों रघुनाथ ताकहँ दियो जल निज पानि ॥ ३ ॥

प्रकृति-मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुन-खानि ।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥ ४ ॥
रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि ।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि ॥ ५ ॥
कौन सुभग सुसील बानर, जिनहिं सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥ ६ ॥
राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिनदानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥ ७ ॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीकी ऐसी ही आदत है कि वे मनमें विशुद्ध और अनन्य प्रेम समझकर नीचके साथ भी स्नेह करते हैं॥१॥ (प्रमाण सुनिये) गुह निषाद महान् नीच और पापी था, उसकी क्या इज्जत थी ? किन्तु भगवान्‌ने उसका (अनन्य और विशुद्ध) प्रेम पहचानकर उसे पुत्रकी तरह हृदयसे लगा लिया ॥२॥ जटायु गीध, जिसे ब्रह्माने हिंसामय ही बनाया था, कौन-सा दयालु था ? किन्तु रघुनाथजीने अपने पिताके समान उसको अपने हाथसे जलाञ्जलि दी ॥३॥ शबरी स्वभावसे ही मैली-कुचैली, नीच जातिकी और सभी अवगुणोंकी खानि थी; परन्तु (उसकी विशुद्ध और अनन्य प्रीति देखकर) उसके हाथके फल स्वाद बखान-बखानकर आपने बड़े प्रेमसे खाये ॥४॥ राक्षस एवं शत्रु विभीषणको शरणमें आया जानकर आपने उठकर उसे भरतकी भाँति ऐसे प्रेमसे हृदयसे लगा लिया कि उस प्रेमविह्वलतामें आप अपने शरीरकी सुध-बुध भी भूल गये ॥५॥ बन्दर कौन-से सुन्दर और

शील-स्वभावके थे ? जिनका नाम लेनेसे भी हानि हुआ करती है, उन्हें भी आपने अपना मित्र बना लिया और अपने घरपर लाकर उनका सब प्रकार आदर-सत्कार किया ॥६॥ (इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध है, कि) श्रीरामचन्द्रजी स्वभावसे ही कृपालु, कोमल स्वभाववाले, गरीबोंके हितू और सदा दान देनेवाले हैं। अतएव हे तुलसी ! तू तो कुटिलता और कपट छोड़कर ऐसे प्रभु श्रीरामजीका ही (विशुद्ध और अनन्य प्रेमसे सदा) भजन किया कर ॥७॥

[२१६]

हरि तजि और भजिये काहि ?
नाहिनै कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि ॥ १ ॥
कनककसिपु बिरंचिको जन करम मन अरु बात ।
सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो कालके घर जात ॥ २ ॥
संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिये दस सीस ।
करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥ ३ ॥
और देवनकी कहा कहौं, स्वारथहिके मीत ।
कबहु काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत ॥ ४ ॥
को न सेवत देत संपति लोकहू यह रीति ।
दासतुलसी दीनपर एक राम ही की प्रीति ॥ ५ ॥

भावार्थ—भगवान् श्रीहरिको छोड़कर और किसका भजन करें ? श्रीरघुनाथजीके समान ऐसा कोई भी नहीं है जिसकी दीन शरणागतों-पर ममता हो ॥१॥ (प्रमाण सुनिये) हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीका कर्म,

मन और वचनसे भक्त था, किन्तु ब्रह्माने (उसके कालको जानते हुए भी) उसे पुत्र (प्रह्लाद) को ताड़ना देते समय नहीं रोका (और फलस्वरूप) वह यमलोक चला गया। यदि वे पहलेसे उसे रोक देते तो बेचारा क्यों मरता ? ॥२॥ संसार जानता है कि रावण शिवजीका भक्त था और उसने कई बार अपने सिर काट-काटकर शिवजीको अर्पित किये थे, किन्तु जब वह श्रीरघुनाथजीके साथ वैर करने लगा तब आपने उसे स्वप्नमें भी न रोका (यह जानते थे कि श्रीरामजीके साथ वैर करनेसे यह मारा जायगा) ॥३॥ (जब ब्रह्माजी और शिवजीका यह हाल है तब) और देवताओंकी तो बात ही क्या कही जाय? वे तो स्वार्थके मित्र हैं ही। उनमेंसे किसीने भी कभी भयभीत शरणागतकी रक्षा नहीं की ॥४॥ सेवा करनेसे कौन धन नहीं देता है ? (सभी देते हैं)। यह तो दुनियाकी चाल ही है। किन्तु हे तुलसीदास ! दीनोंपर तो एक श्रीरघुनाथजीका ही स्नेह है। (वे बिना ही सेवाके किये केवल शरण होते ही अपना लेते हैं, देवताओंकी भाँति सर्वांगपूर्ण अनुष्ठानकी अपेक्षा नहीं करते) ॥५॥

[२१७]

जो पै दूसरो कोउ होइ।
तौ हौं बारहि बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ॥ १ ॥
काहि ममता दीनपर, काको पतितपावन नाम।
पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम ॥ २ ॥
रहे संभु बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक।
सोक-सरि बूड़त करीसहि दई काहु न टेक ॥ ३ ॥

विपुल-भूपति-सदसि महँ नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि'।
सकल समरथ रहे, काहु न बसन दीन्हों ताहि ॥ ४ ॥
एक मुख क्यों कहौं करुनासिंधुके गुन-गाथ ?
भक्तहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ! ॥ ५ ॥
आपसे कहुँ सौंपिये मोहि जो पै अतिहि घिनात।
दासतुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! यदि कोई दूसरा (मुझे शरणमें रखनेवाला) होता, तो मैं बार-बार रोकर अपना दुःख आपको ही क्यों सुनाता ? ॥१॥ (आपको छोड़कर) दीनोंपर किसकी ममता है, पतितपावन किसका नाम है ? और महापापी अजामिलको (पुत्रके धोखेसे आपका नारायण नाम लेनेपर), किसने अपना परम धाम दे दिया ? (ऐसे एक आप ही हैं और कोई नहीं है) ॥२॥ शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि अनेक लोकपाल थे; पर शोकरूपी नदीमें डूबते हुए गजराजको किसीने भी नहीं बचाया (आपहीको गरुड़ छोड़कर दौड़ना पड़ा) ॥३॥ जब बहुतसे राजाओंकी सभामें (नरके अवतार) अर्जुनकी स्त्री द्रौपदीने (दुःशासनद्वारा सताये जानेपर) कहा कि 'हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये'—उस समय वहाँ सभी समर्थ थे, पर किसीने उसे वस्त्र नहीं दिया (आपने ही वस्त्रावतार धारणकर उस अबलाकी लाज रक्खी) ॥४॥ करुणा-सागर ! आप करुणा-समुद्रके करुणापूर्ण गुणोंकी कथाएँ एक मुँहसे कैसे कहूँ ? हे कोशलाधीश ! आपने भक्तोंके लिये अवतार धारणकर क्या-क्या नहीं किया ? (भक्तोंके हितके लिये सभी कुछ किया) ॥५॥ यदि

आप मुझसे बहुत ही घिनाते हैं, तो मुझे किसी ऐसेके हाथ सौंप दीजिये जो आपके ही समान हो, (नहीं तो) यह तुलसीदास और किसी तरह भी आपके चरणोंको छोड़कर क्यों जाने लगा ? भाव यह कि मैं तो आपहीके चरणोंकी शरणमें रहूँगा ॥६॥

[२१८]

कबहिं देखाइहौ हरि चरन ।
समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल-करन ॥ १ ॥
सरद-भव सुंदर तरुनतर अरुन-बारिज बरन ।
लच्छि-लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥ २ ॥
गंग-जनक अनंग-अरि-प्रिय कपट-बटु बलि-छरन ।
बिप्रतिय नृग बधिकके दुख-दोस दारुन दरन ॥ ३ ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृंद-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन-तरन ॥ ४ ॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे हरे ! क्या कभी आप अपने उन पवित्र चरणोंका दर्शन करायेंगे जो समस्त क्लेशों और कलियुगके सभी पापोंके नाश करनेवाले और सम्पूर्ण कल्याणके कारण हैं ? ॥१॥ जिन (चरणों) का रंग शरद् ऋतुमें उत्पन्न, सुन्दर और तुरन्तके खिले हुए लाल-लाल कमलोंके समान है, जिन्हें श्रीलक्ष्मीजी अपनी सुन्दर हथेलियोंसे दबाया करती हैं,

और जो अतुलनीय शोभामय हैं ॥२॥ जो गंगाके पिता हैं (जिन चरणों-से गंगाकी उत्पत्ति हुई है), कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीके प्यारे हैं, तथा जिन्होंने कपट-ब्रह्मचारीका रूप धारणकर राजा बलिको छला है, जिन्होंने (गौतम) ब्राह्मणकी स्त्री अहल्याको और राजा नृगको (शापसे छुड़ाकर परम सुख दिया) और हिंसक निषादके सारे दुःख और घोर पाप दूर कर दिये ॥३॥ सिद्ध, देवता और मुनियोंके समूह जिनकी सदा वन्दना किया करते हैं; जो सभीको सुख और शरण देने-वाले हैं, एक बार भी जिनका हृदयमें ध्यान करनेसे भक्त स्वयं तर जाता है तथा दूसरोंको तारनेवाला बन जाता है ॥४॥ हे कृपासागर सुचतुर रघुनाथजी ! आप शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले हैं। यह तुलसीदास अब आपके उन चरणोंके दर्शनकी आशारूपी प्यासके मारे मर रहा है। (शीघ्र ही अपने चरण-कमल दिखाकर इसकी रक्षा कीजिये) ॥५॥

[२१९]

द्वार हौं भोर ही को आजु ।
रटत रिरिहा आरि और न, कौर ही तें काजु ॥ १ ॥
कलि कराल दुकाल दारुन, सब कुभाँति कुसाजु ।
नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़मेंकी खाजु ॥ २ ॥
हहरि हियमें सदय बूझयो जाइ साधु-समाजु ।
मोहुसे कहुँ कतहुँ कोउ, तिन्ह कह्यो कोसलराजु ॥ ३ ॥

दीनता-दारिद दलै को कृपाबारिधि बाज़ु।
दानि दसरथरायके, तू बानइत सिरताज़ु॥ ४॥
जनमको भूखो भिखारी हौं गरीबनिवाज़ु।
पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज़ु॥ ५॥

भावार्थ—हे भगवन्! आज सबेरेसे ही मैं आपके दरवाजेपर अड़ा बैठा हूँ। रें-रें करके रट रहा हूँ, गिड़गिड़ाकर माँग रहा हूँ, मुझे और कुछ नहीं चाहिये। बस, एक कौर टुकड़ेसे ही काम बन जायगा। (ज़रा-सी कृपादृष्टिसे ही मैं पूर्णकाम हो जाऊँगा) ॥१॥ (यदि आप यह कहें कि कोई उद्यम क्यों नहीं करता? गिड़गिड़ाकर भीख क्यों माँगता है, तो इसका उत्तर यही है कि) इस भयंकर कलियुगमें (उत्तम साधनरूपी उद्यमका) बड़ा ही दारुण दुर्भिक्ष पड़ गया है, जितने उद्यम और उपाय-साधन हैं, सभी बुरे हैं। कोई-सा भी निर्विघ्न पूरा नहीं होता, इससे आपसे भीख माँगना ही मैंने उचित समझा है। (कलियुगी) मनुष्योंकी करतूत तो नीच है (दिनरात विषयोंके लिये ही पापमें रत रहते हैं) और उनका मन ऊँचा है (चाहते हैं सच्चा सुख मिले, परन्तु सच्चा मोक्ष-रूप सुख बिना भगवत्कृपा हुए मिलता नहीं), कोढ़की खाज (खुजलाते समय सुख मिलता है, पर पीछे मवाद निकलनेपर जलन पैदा हो जाती है उसी) के समान (इन्द्रियोंके साथ विषयका संयोग होनेपर आरम्भमें तो सुख भासता है, परन्तु परिणाममें महादुःख होता है। इसलिये विषय केवल दुःखदायी ही हैं, इसी बातको समझकर मैंने किसी भी उद्यममें मन नहीं लगाया और) ॥२॥ हृदयमें डरकर कृपालु सन्त-समाजसे पूछा कि कहिये,

मुझ-सरीखे (उद्यमहीनको) भी कोई शरणमें लेगा? सन्तोंने (एक स्वरसे) यही उत्तर दिया कि एक कोशलपति महाराज श्रीरामचन्द्रजी ही (ऐसों-को शरणमें) रख सकते हैं ॥३॥ हे कृपाके समुद्र! आपको छोड़कर दीनता और दरिद्रताका नाश कौन कर सकता है? हे दशरथनन्दन! दानियोंका बाना रखनेवालोंमें आप श्रेष्ठ हैं ॥४॥ मैं जन्मका भूखा गरीब भिखमंगा, हे गरीबनिवाज! आपके द्वारपर आकर पड़ा हूँ। बस, अब इस तुलसीको भक्तिरूपी अमृतके समान सुन्दर भोजन पेटभर खिला दीजिये (अपने चरणोंमें ऐसी भक्ति दे दीजिये कि फिर दूसरी कोई कामना ही न रह जाय) ॥५॥

[२२०]

करिय सँभार, कोसलराय!
और ठौर न और गति, अवलंब नाम बिहाय ॥ १ ॥
बूझि अपनी आपनो हितु आप बाप न माय।
राम! राउर नाम गुर, सुर, स्वामि, सखा, सहाय ॥ २ ॥
रामराज न चले मानस-मलिनके छल छाय।
कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय ॥ ३ ॥
लेत केहरिको बयर ज्यों भेक हनि गोमाय।
त्योंहि राम-गुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥ ४ ॥

अकनि याके कपट-करतब, अमित अनय-अपाय ।
सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहि पछिताय ॥ ५ ॥
कृपासिंधु ! बिलोकिये, जन-मनकी साँसति साय ।
सरन आयो, देव ! दीनदयालु ! देखन पाय ॥ ६ ॥
निकट बोलि न बरजिये, बलि जाउँ, हनिय न हाय ।
देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनिके न्याय ॥ ७ ॥
अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष-कषाय ।
बीर सुमिरि समीरको घटिहै चपल चित चाय ॥ ८ ॥
विनय सुनि बिहँसे अनुजसों बचनके कहि भाय ।
'भली कही' कह्यो लषन हूँ हँसि, बने सकल बनाय ॥ ९ ॥
दई दीनहिं दादि, सो सुनि सुजन-सदन बधाय ।
मिटे संकट-सोच, पोच-प्रपंच, पाप-निकाय ॥ १० ॥
पेखि प्रीति-प्रतीति जनपर अगुन अनघ अमाय ।
दासतुलसी कहत मुनिगन, 'जयति जय उरुगाय' ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे कोशलराज ! मेरी रक्षा कीजिये । आपके नामको छोड़कर मुझे न तो कहीं और ठौर-ठिकाना है, और न किसीका सहारा ही है (मेरी तो बस, आपके नामतक ही दौड़ है) ॥१॥ आप स्वयं समझ-बूझकर अपने सेवकोंका ऐसा कल्याण कर देते हैं, जैसा (सगे) माता-पिता भी नहीं करते (माता-पिता भी मोक्षसुख नहीं दे सकते) । हे श्रीरामजी ! आपका नाम ही मेरा गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और सहायक है ॥२॥ हे नाथ ! आपके 'राम-राज्य' में मलिन मनवाले (कलिकाल)

के कपटकी छाया भी नहीं पड़ सकती; किन्तु यह कायर कलिकाल उसी क्रोधके कारण मुझ मरे हुएको भी अपनी चोटोंसे घायल कर रहा है। (इसे इतना भी तो भय नहीं कि मैं 'रामराज्य' में बस रहा हूँ) ॥३॥ जैसे गीदड़ मेढ़कको मारकर सिंहके वैरका बदला लेना चाहता है, वैसे ही यह मुझे आपका दास जानकर मुझपर गहरी चोट कर रहा है (दुःख तो इसको आपसे है, क्योंकि जिसका मन आपके राज्यमें बसता है, उसमें यह प्रवेश नहीं कर पाता; परन्तु आपपर तो इसका जोर चलता नहीं, मुझ-सरीखे क्षुद्र दासको सता रहा है) ॥४॥ भगवान्के परमधाममें आनन्द-पूर्वक निवास करनेवाले महाराज परीक्षितके मनमें भी इसकी कपट-भरी करतूतों, असंख्य अनीतियों और (साधुओंके मार्गमें डाले गये) अनेक विघ्न-बाधाओंको सुनकर पछतावा हो रहा है (इसीलिये कि इसे पकड़कर हमने क्यों जीता छोड़ दिया ?) ॥५॥ हे कृपासागर ! तनिक कृपादृष्टि कीजिये, जिससे इस दासके मनकी पीड़ा शान्त हो जाय। हे दीनदयालो ! हे देव ! मैं आपके चरणोंका दर्शन करनेके लिये आपकी शरण आया हूँ ॥६॥ यदि आप (दयावश) उस (कलियुग) को पास बुलाकर रोकना नहीं चाहते, या उसकी 'हाय-हाय' की पुकार सुनकर उसे मारना नहीं चाहते, तो मैं आपकी बलैया लेता हूँ (आप तनिक हनुमान्जीको ही संकेत कर दीजिये, आपका इशारा पाकर) वे इसकी ओर वैसे ही देखेंगे, जैसे सिंह गायके मुखकी ओर देखता है ॥७॥ (इस प्रकार कलियुगकी कुटिल करनीके कारण) जब हनुमान्जी लाल मुँह, टेढ़ी भौंहें और पीली आँखोंको क्रोधसे लाल कर लेंगे, तब पवनकुमार वीरवर

हनुमान्‌जीका स्मरण कर इस चञ्चल चित्तवाले (कलि) का सारा चाव चम्पत हो जायगा (वह अपनी सारी शक्ति भूल जायगा) ॥८॥ मेरी यह विनती सुनकर श्रीरघुनाथजी मुसकराये और अपने छोटे भाई लक्ष्मणको इन बातोंका तात्पर्य समझाया (कि, देखो, तुलसी कैसा चतुर है!) लक्ष्मणजीने हँसकर कहा कि ठीक ही तो कहता है। बस, इस प्रकार मेरी सारी बात बन गयी ॥९॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इस गरीबका न्याय कर दिया। यह सुनकर सन्तोंके घर बधाई बजने लगी। दुःख, चिन्ता, छल-कपट और पापके समूह सब नष्ट हो गये ॥१०॥ निर्गुण (श्रीरामजीकी) अपने दासपर ऐसी अलौकिक (त्रिगुणमयी लौकिक प्रीति नहीं) पवित्र और मायारहित प्रेम और विश्वास देखकर, हे तुलसीदास! मुनिलोग कहने लगे कि 'विपुल कीर्तिवाले भगवान्‌की जय हो, जय हो' ॥११॥

[२२१]

नाथ! कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिनराति।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु! जानि न जाति ॥ १ ॥
सुगुन, ग्यान-बिराग-भगति, सु-साधननिकी पाँति।
भजे बिकल बिलोकि कलि अघ-अवगुननिकी थाति ॥ २ ॥
अति अनीति-कुरीति भइ भुइँ तरनि हू ते ताति।
जाउँ कहँ? बलि जाउँ, कहूँ न ठाउँ, मति अकुलाति ॥ ३ ॥
आप सहित न आपनो कोउ, बाप! कठिन कुभाँति।
स्यामघन! सींचिये तुलसी, सालि सफल सुखाति ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे नाथ! मैं दीन दिनरात आपकी कृपाकी ही बाट देखता रहता हूँ। हे दीनदयालो! पता नहीं, आपकी वह कृपा मुझपर कब होगी? ॥१॥ (दैवीसम्पदाके) सद्‌गुण, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदि सुन्दर साधनोंके समूह कलियुगको देखते ही व्याकुल होकर भाग गये। रह गये, पापों और दुर्गुणोंके समूह ॥२॥ बड़े-बड़े अन्यायों और अनाचारोंसे पृथ्वी सूर्यसे भी अधिक गरम हो गयी है (यहाँ सिवा जलनेके शान्तिका कोई साधन ही नहीं रहा) अब मैं कहाँ जाऊँ? मैं आपकी बलैया ले रहा हूँ। मुझे और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। मेरी बुद्धि बड़ी ही व्याकुल हो रही है ॥३॥ हे बापजी! इस अपनी देहके सहित कोई भी अपना नहीं है (किसका सहारा लूँ)। सभी कठोर दुराचारी दिखायी देते हैं। हे घनश्याम! यह तुलसीरूपी फूली-फली धानकी खेती सूखी जा रही है, अब भी मेघ बनकर (कृपा-जलकी वर्षासे) इसे सींच दीजिये ॥४॥

[२२२]

बलि जाउँ, और कासों कहौं?

सदगुनसिंधु स्वामि सेवक-हितु कहुँ न कृपानिधि-सो लहौं ॥ १ ॥

जहँ जहँ लोभ-लोल लालचबस निजहित चित चाहनि चहौं।

तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं ॥ २ ॥

काल-सुभाउ-करम बिचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं।

मोको तौ सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौं ॥ ३ ॥

उचित अनाथ होइ दुखभाजन भयो नाथ! किंकर न हौं।

अब रावरो कहाइ न बूझिये, सरनपाल! साँसति सहौं ॥ ४ ॥

महाराज ! राजीवबिलोचन ! मगन-पाप-संताप हौं ।
तुलसी प्रभु ! जब तब जेहि तेहि बिधि राम निबाहे निरबहौं ॥ ५ ॥

भावार्थ–प्रभो, बलिहारी! (मैं अपने दुःख) और किसे सुनाऊँ ? आपके सदृश सद्‌गुणोंका समुद्र, सेवकोंका कल्याण करनेवाला और कृपानिधान स्वामी अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता ॥१॥ जहाँ-जहाँ लोभ और लालच-वश चञ्चल चित्तमें अपने कल्याणकी कामना करता हूँ, वहाँ-वहाँसे मैं इस तरह निराश हो लौट आता हूँ, जैसे सूर्यको देखते ही उल्लू भटकता हुआ आकर वृक्षके कोटरमें घुस जाता है (जहाँ जिसके पास जाता हूँ, वहीं दुःखकी आग तैयार मिलती है) ॥२॥ जब यह सुनता हूँ कि काल, स्वभाव और कर्म विचित्र फल देनेवाले हैं, तब सिर धुन-धुन कर रह जाता हूँ, क्योंकि मेरे लिये तो ये तीनों सदा एक-से ही हैं, मैं तो सदा ही दुःसह और दारुण दाहसे जला करता हूँ ॥३॥ हे नाथ ! मैं अबतक अपनेको अनाथ समझकर दुःखोंका पात्र बन रहा था सो उचित ही था, क्योंकि मैं आपका दास नहीं बना था; किन्तु हे शरणागत-रक्षक ! अब आपका (दास) कहाकर भी मैं दुःख भोग रहा हूँ, इसका कारण समझ-में नहीं आ रहा है ॥४॥ हे महाराज ! हे कमलनेत्र ! मैं पाप-सन्तापमें डूब रहा हूँ। हे प्रभो ! तुलसीदासका तभी निर्वाह हो सकता है, जब आप ही जिस-किसी प्रकारसे उसका निर्वाह करेंगे ॥५॥

[२२३]

आपनो कबहुँ करि जानिहौ ।
राम गरीबनिवाज राज-मनि, बिरद-लाज उर आनिहौ ॥ १ ॥

सील-सिंधु, सुंदर, सब लायक, समरथ, सदगुन-खानि हौ।
पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु, प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ॥ २॥
बेद-पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन-दानि हौ।
कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौ॥ ३॥
आरत-दीन-अनाथनिके हित मानत लौकिक कानि हौ।
है परिनाम भलो तुलसीको सरनागत-भय भानि हौ॥ ४॥

भावार्थ—हे नाथ! क्या कभी आप मुझे अपना समझेंगे? हे राम! आप गरीबनिवाज और राजाधिराज हैं। क्या आप कभी अपने विरदकी लाजका मनमें विचार करेंगे?॥ १॥ आप शीलके समुद्र हैं, सुन्दर हैं, सब कुछ करनेयोग्य हैं, समर्थ हैं और सभी सद्गुणोंकी खान हैं। हे प्रभो! आपने शरणागतोंका पालन किया है, कर रहे हैं और करेंगे। क्या इस (तुच्छ) शरणागतका प्रेम भी पहिचानेंगे? ॥२॥ वेद और पुराण कह रहे हैं, तथा संसार भी जानता है कि आप दीनोंपर दया करनेवाले और प्रति-दिन उन्हें कल्याण-दान देनेवाले हैं। बाध्य होकर कहना ही पड़ता है, मैं आपकी बलैया लेता हूँ, आपने मानो मेरी बार अपनी आदतको ही भुला दिया है ॥३॥ आप दीन, दुखियों और अनाथोंके हितू होनेपर भी क्या संसारका (यह) भय मान रहे हैं? (कि ऐसे पापीको अपनानेसे कहीं कोई अन्यायी न कह दे।) जो कुछ भी हो, तुलसीदासका तो अन्तमें कल्याण ही होगा, क्योंकि आप शरणागतके भयको भञ्जन करनेवाले हैं ॥४॥

[२२४]

रघुबरहि कबहुँ मन लागिहै ?
कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै॥ १॥

जानत गरल अमिय बिमोहबस, अमिय गनत करि आगि है।
उलटी रीति-प्रीति अपनेकी तजि प्रभुपद अनुरागिहै॥ २॥
आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम-प्रेम-पगि पागिहै।
ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामिसों पाइहै जो मुँह माँगिहै॥ ३॥
तू यहि बिधि सुख-सयन सोइहै, जियकी जरनि भूरि भागिहै।
राम-प्रसाद दासतुलसी उर राम-भगति-जोग जागिहै॥ ४॥

भावार्थ—अरे मन! क्या कभी तू श्रीरघुनाथजीसे भी लगेगा? रे कुटिल! तू कुमार्ग, बुरी चाल, दुर्बुद्धि, बुरी कामनाएँ और छल-कपट कब छोड़ेगा? ॥१॥ तू बड़े भारी अज्ञानके वश होकर (विषयरूपी) विषको तो अमृत मान रहा है और (भगवान्के भजनरूपी) अमृतको आगके समान (दुःखदायी) समझ रहा है! अपनी इस उलटी रीति और विषयोंकी प्रीतिको त्यागकर तू श्रीरामजीके चरणोंमें कब प्रेम करेगा? ॥२॥ कब तू राम-नामके सुन्दर अक्षर और कोमल अर्थरूपी लड्डुओंको श्रीरघुनाथजीके प्रेमरूपी चाशनीमें पागेगा? भाव यह कि क्या तू प्रेमपूरित हृदयसे कभी अर्थसहित श्रीराम-नामका जप करेगा? जो तू इस तरह अपने स्वामीके गुणोंको गा-गाकर उन्हें रिझा लेगा, तो तुझे मुँह-माँगा पदार्थ मिल जायगा ॥३॥ इस प्रकार (करनेसे) तू (मोक्षकी) सुख-सेजपर सदाके लिये सो जायगा और तेरे मनकी (अविद्याजनित) बड़ी भारी जलन (आत्यन्तिक रूपसे) भाग जायगी। हे तुलसीदास! श्रीरामजीकी कृपासे तेरे हृदयमें श्रीरामजीका प्रेमरूप भक्तियोग सिद्ध हो जायगा ॥४॥

[२२५]

भरोसो और आइहै उर ताके ।
कै कहुँ लहै जो रामहि-सो साहिब, कै अपनो बल जाके ॥ १ ॥
कै कलिकाल कराल न सूझत, मोह-मार-मद छाके ।
कै सुनि स्वामि-सुभाउ न रह्यो चित, जो हित सब अँग थाके ॥ २ ॥
हौं जानत भलिभाँति अपनपौ, प्रभु-सो सुन्यो न साके ।
उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर, भले भये करतब काके ॥ ३ ॥
मोको भलो राम-नाम सुरतरु-सो, रामप्रसाद कृपालु कृपाके ।
तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय-बबाके ॥ ४ ॥

भावार्थ—उसीके मनमें किसी दूसरेका भरोसा होगा, जिसे या तो कहीं श्रीरामचन्द्रजीके समान कोई दूसरा मालिक मिल गया हो,या जिसके अपने साधन आदिका बल हो (मुझे न तो कोई ऐसा मालिक ही मिला है, और न किसी प्रकारका साधन-बल ही है) ॥१॥ अथवा जिसे अज्ञान, काम और अभिमानमें मतवाला हो जानेके कारण कराल कलिकाल न सूझता हो, अथवा जिसके चित्तपर सब प्रकारसे (साधन करके, और इधर-उधर भटककर) थके हुए लोगोंके हितकारी स्वामी रामचन्द्रजीका (दीन और शरणागतवत्सल) स्वभाव सुननेपर भी उसका स्मरण न रहा हो । मुझे तो अपने स्वामीके दयालु स्वभावका सदा ध्यान बना रहता है) ॥२॥ (तथा) मैं अपने (क्षुद्र) पुरुषार्थको भी भलीभाँति जानता हूँ, एवं मैंने श्रीरघुनाथजीके अतिरिक्त और किसी स्वामीकी ऐसी कीर्त्ति भी नहीं सुनी (जो इस तरह महापापी शरणागतोंको अपना लेता हो) । पत्थरकी

(अहल्या), भील, पक्षी (जटायु), मृग (मारीच) और राक्षस (विभीषण) इन सबोंमें किसके कर्म शुभ थे? (किन्तु भगवान्‌ने इन सबका उद्धार कर दिया) ॥३॥ मेरे लिये तो एक राम-नाम ही कल्पवृक्ष हो गया है, और वह कृपालु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे हुआ है। (इसमें भी मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं है)। अब तुलसी इस अनुग्रहके कारण ऐसा सुखी और निश्चिन्त है, जैसे कोई बालक अपने माता-पिताके राज्यमें होता है ॥४॥

[२२६]

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ॥ १ ॥
करम उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावनके अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो ॥ २ ॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो ॥ ३ ॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो-नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो ॥ ४ ॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥ ५ ॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिसे दूसरेका भरोसा हो, सो करे। मेरे लिये तो इस कलियुगमें एक राम-नाम ही कल्पवृक्ष है, जिसमें कल्याणरूपी फल फला

है। भाव यह कि राम-नामसे ही मुझे तो यह भगवत्-प्रेम प्राप्त हुआ है ॥१॥ यद्यपि कर्म, उपासना और ज्ञान, ये वैदिक सिद्धान्त सभी सब प्रकारसे सच्चे हैं, किन्तु मुझे तो, सावनके अन्धेकी भाँति, जहाँ देखता हूँ वहाँ हरा-ही-हरा रंग दीखता है। (एक राम-नाम ही सूझ रहा है) ॥२॥ मैं कुत्तेकी नाईं (अनेक जूँठी) पत्तलोंको चाटता फिरा, पर कभी मेरा पेट नहीं भरा। आज मैं नाम-स्मरण करनेसे अमृतरस परोसा हुआ देखता हूँ। (मैंने अनेक देवभोग्य भोग भोगे, परन्तु कहीं तृप्ति नहीं हुई। पूर्ण, नित्य, परमानन्द कहीं नहीं मिला। अब श्रीराम-नामका स्मरण करते ही मैं देख रहा हूँ, कि मुक्तिका थाल मेरे सामने परोसा रक्खा है अर्थात् ब्रह्मानन्दरूप मोक्षपर तो मेरा अधिकार ही हो गया। परोसी थालीके पदार्थको जब चाहूँ तब खा लूँ, इसी प्रकार मोक्ष तो जब चाहूँ तभी मिल जाय। परन्तु मैं तो मुक्त पुरुषोंकी कामनाकी वस्तु श्रीराम-प्रेम-रसका पान कर रहा हूँ।) ॥३॥ मेरे लिये राम-नाम स्वार्थ और परमार्थ दोनोंका ही साधक है, (मुक्तिरूपी स्वार्थ और भगवत्प्रेमरूपी परम अर्थ दोनों ही मुझे श्रीराम-नामसे मिल गये)। यह बात 'हाथी है या मनुष्य' की-सी दुविधा भरी नहीं है (क्योंकि मुझे तो प्राप्त है)। मैंने सुना है कि इसी नामके प्रभावसे बन्दरोंकी सेना पत्थरोंका पुल बनाकर समुद्रको पार कर गयी थी ॥४॥ जहाँ जिसका प्रेम और विश्वास है, वहीं उसका काम पूरा हुआ है (इसी सिद्धान्तके अनुसार) मेरे तो माँ-बाप ये दोनों अक्षर—'र' और 'म'—हैं। मैं तो इन्हींके आगे बालहठसे अड़ रहा हूँ, मचल रहा हूँ ॥५॥ यदि मैं कुछ भी छिपाकर कहता होऊँ, तो भगवान् शिवजी साक्षी हैं, मेरी जीभ जलकर या गलकर गिर जाय। (यह 'कवि-कल्पना' या अत्युक्ति नहीं

है, सच्ची स्थितिका वर्णन है) यही समझमें आया कि अपना कल्याण एक राम-नामसे ही हो सकता है ॥६॥

[२२७]

नाम राम रावरोई हित मेरे ।
स्वारथ-परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे ॥ १ ॥
जननी-जनक तज्यो जनमि,करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे ।
मोहुँसों कोउ-कोउ कहत रामहि को, सो प्रसंग केहि केरे ॥ २ ॥
फिर्यौ ललात बिनु नाम उदर लगि,दुखउ दुखित मोहि हेरे ।
नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं बबुर बहेरे ॥ ३ ॥
साधत साधु लोक-परलोकहि, सुनि गुनि जतन घनेरे ।
तुलसीके अवलंब नामको, एक गाँठि कइ फेरे ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे रामजी ! आपका नाम ही मेरा तो कल्याण करनेवाला है । यह बात मैं हाथ उठाकर स्वार्थके और परमार्थके सभी संगी-साथियोंसे (परिवारके लोगोंसे और साधकोंसे) पुकारकर कहता हूँ (घोषणा कर रहा हूँ) ॥१॥ माता-पिताने तो मुझे उत्पन्न करके ही छोड़ दिया था, ब्रह्माने भी अभागा और कुछ बेढब-सा बनाया था । फिर भी कोई-कोई मुझे 'रामका' (दास) कहते हैं, यह किस अभिप्रायसे कहते हैं ? (यह राम-नामका ही प्रताप है) ॥२॥ जब मैं राम-नामके शरण नहीं हुआ था तब मैं पेट भरनेको (द्वार-द्वारपर) ललचाता फिरता था । मेरी ओर देखकर दुःखको भी दुःख होता था (मेरी ऐसी बुरी दशा थी) । श्रीरामकी कृपासे पहले मेरे लिये जो बबूल और

बहेड़ेके वृक्ष थे, उन्हीं पेड़ोंसे मुझे अब आमके फल मिल रहे हैं। (जहाँ जगत् दुःखोंसे भरा भासता था वहाँ आज सब 'सीय-राम-रूप' दीखनेके कारण वही सुखमय हो गया है) ॥३॥ सन्तजन तो (शास्त्रोंको) सुनकर और (उसके अनुसार) मनन कर अनेक साधनोंसे अपना लोक और परलोक बना लेते हैं, परन्तु तुलसीके तो एक राम-नामका ही अवलम्बन है। जैसे गाँठ तो एक ही होती है, लपेटे चाहे जितने हों (इसी प्रकार साधन चाहे जितने हों, सबका आधार तो एक राम-नाम ही है) ॥४॥

[२२८]

प्रिय रामनामतें जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि-मध्य-परिनामो ॥ १ ॥
सकुचत समुझि नाम-महिमा मद-लोभ-मोह-कोह-कामो।
राम-नाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥ २ ॥
नाम-प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो।
जो सुनि सुमिरि भाग-भाजन भइ सुकृतसील भील-भामो ॥ ३ ॥
बालमीकि-अजामिलके कछु हुतो न साधन सामो।
उलटे पलटे नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो ॥ ४ ॥
रामतें अधिक नाम-करतब, जेहि किये नगर-गत गामो।
भये बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदाससे बामो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिसे श्रीरामजी भी राम-नामकी अपेक्षा अधिक प्यारे नहीं हैं (यदि कोई कहे कि तुम्हें राम मिल जायँगे, पर राम-नाम छोड़ना

होगा, तो वह इस बातको भी स्वीकार नहीं करता; वह कहता है कि यदि श्रीरामके मिलनेसे राम-नाम छोड़ना पड़े तो मुझे श्रीरामके मिलनेकी आवश्यकता नहीं है। मुझे तो उनका नाम ही सदा चाहिये। ऐसे नाम-प्रेमीसे राम कितना प्रेम करते हैं, सो तो केवल राम ही जानते हैं; गोसाइंजी कहते हैं कि जो इस प्रकार राम-नामका मतवाला है) उसका इस कराल कलिकालमें, आदि, मध्य और अन्त, तीनों ही कालोंमें (कल्याण होगा) ॥१॥ नामकी महिमा समझकर अभिमान, लोभ, अज्ञान, क्रोध और काम सकुचा जाते हैं, सामने नहीं आते। जो सज्जन सदा राम-नामका जप करते रहते हैं, उनपर कड़ी धूप भी छाया कर देती है (महान्-से-महान् दुःख भी सुखरूप बन जाते हैं) ॥२॥ यदि कोई कहे कि नामके प्रभावसे पत्थरमें कमल उत्पन्न हो गया, तो उसे भी सच ही समझना चाहिये (क्योंकि राम-नामके प्रभावसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है) जिस नामको सुनने और स्मरण करनेसे भीलनी शबरी भी परम भाग्यवती तथा शील और पुण्यमयी बन गयी (उससे क्या नहीं हो सकता?) ॥३॥ वाल्मीकि और अजामिलके पास तो कोई भी साधनकी सामग्री नहीं थी, किन्तु उन्होंने भी उलटे-पुलटे राम-नामके माहात्म्यसे घुँघचियोंसे जवाहरात जीत लिये (परम रत्न परमात्माको प्राप्त कर लिया) ॥४॥ नामकी शक्ति श्रीरघुनाथजीसे भी अधिक है, (क्योंकि श्रीरामजी इस नामसे ही वशमें होते हैं) इस राम-नामने ग्रामीण मनुष्योंको चतुर नागरिक बना दिया (असभ्योंको परम पुनीत महात्मा बना दिया)। जिसे जपकर तुलसीदास-सरीखे बुरे जीव भी डंकेकी चोट अच्छे हो गये (फिर कहनेको क्या रह गया?) ॥५॥

[२२९]

गरैगी जीह जो कहौं औरको हौं ।
जानकी-जीवन ! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौरको हौं ॥१॥
तीनि लोक, तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोरको हौं ।
तुमसों कपट करि कलप-कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोरको हौं ॥२॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा भौंरको हौं ।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल, बड़े ठेकाने ठौरको हौं ॥३॥

भावार्थ—यदि मैं कहूँ कि मैं रामजीको छोड़कर किसी दूसरेका हूँ, तो मेरी यह जीभ गल जाय। हे श्रीजानकी-जीवन ! मैं तो इस संसारमें जन्म-जन्ममें आपके ही टुकड़ोंसे (जूठनसे) जी रहा हूँ ॥१॥ तीनों लोकोंमें तथा तीनों कालोंमें (पृथ्वी, पाताल और स्वर्गमें एवं भूत, वर्तमान और भविष्यत्‌में) आपकी बराबरीका सुहृद् (अहैतुक प्रेमी) दूसरा कहीं नहीं दिखायी दिया। यदि मैं आपके साथ कपट करता होऊँ, तो कल्प-कल्पान्तरतक घोर नरकका कीड़ा होऊँ ॥२॥ क्या हुआ, जो कलियुगने मिलकर मेरे मनको भँवरका भौंतुवा बना दिया? भाव यह कि जैसे भौंतुवा जलमें रहता हुआ भी जलके ऊपर ही तैरता रहता है, उसमें डूब नहीं सकता, वैसे ही कलिने यद्यपि मुझे भव-नदीमें डाल दिया है, तथापि मैं आपके प्रतापसे इस विषय-प्रवाहमें बहूँगा नहीं, ऊपर-ही-ऊपर तैरता रहूँगा। विषयोंका मुझपर कोई असर नहीं होगा। तुलसीदास इसी भरोसेपर सदा शान्त रहता है कि वह बड़े ठौर-ठिकानेका है (श्रीरामजीके दरबारका गुलाम है। कलियुग-सरीखे टुच्चे उसका क्या कर सकते हैं ?) ॥३॥

[२३०]

अकारन को हितू और को है।
बिरद 'गरीब-निवाज' कौनको, भौंह जासु जन जोहै ॥१॥
छोटो-बड़ो चहत सब स्वारथ, जो बिरंचि बिरचो है।
कोल कुटिल, कपि-भालु पालिबो कौन कृपालुहि सोहै ॥२॥
काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि बिछोहै।
को तुलसीसे कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साईं द्रोहै ॥३॥

भावार्थ—बिना ही कारण हित करनेवाला (श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर) दूसरा कौन है? ग़रीबोंको निहाल कर देनेका विरद किसका है कि जिसकी (कृपामयी) भृकुटीकी ओर भक्त ताका करते हैं ॥१॥ छोटे या बड़े जो भी ब्रह्माके रचे हुए हैं वे सभी अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, (बिना स्वार्थके कोई किसीका हित नहीं करता)। भला, भील, बन्दर और रीछ आदिका पालन-पोषण करना (श्रीरामजीके सिवा) दूसरे किस कृपालु स्वामीको शोभा देता है? ॥२॥ ऐसा किसका नाम है जिसे आलस्य या क्रोधके साथ भी लेनेपर पाप और अवगुण दूर हो जाते हैं? (श्रीराम-नाम ही ऐसा है)। जिसने मूर्खतावश सदा अपने स्वामीसे द्रोह किया है, उस तुलसी-सरीखे नीच सेवकको भी अपना लिया (इससे अधिक अकारण हित करना और क्या होगा?) ॥३॥

[२३१]

और मोहि को है, काहि कहिहौं?
रंक-राज ज्यों मनको मनोरथ, केहि सुनाइ सुख लहिहौं ॥१॥

जम-जातना, जोनि-संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं ।
मोको अगम, सुगम तुमको प्रभु, तउ फल चारि न चहिहौं ॥२॥
खेलिबेको खग-मृग, तरु-कंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं ।
यहि नाते नरकहुँ सचु, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं ॥३॥
इतनी जिय लालसा दासके, कहत पानही गहिहौं ।
दीजै बचन कि हृदय आनिये 'तुलसीको पन निर्बहिहौं' ॥४॥

भावार्थ—हे नाथ ! मेरे दूसरा कौन है, मैं (अपने मनकी बात तुम्हें छोड़कर) और किससे कहूँगा ? मेरे मनकी कामना रंकके राजा होने-जैसी है; हूँ तो मैं निपट साधनहीन, पर चाहता हूँ मोक्षसे भी परेका परमात्म-प्रेमसुख । (इस स्थितिमें तुम-सरीखे दयालुको छोड़कर अपना) वह मनोरथ किसे सुनाकर सुख प्राप्त करूँ ? दूसरा कौन मेरी बात सुनकर पूरी करेगा ? ॥१॥ यम-यातना अर्थात् नारकीय क्लेश एवं अनेक योनियोंमें दारुण दुःख सहे हैं और सहूँगा । (मुझे इसकी कुछ भी परवा नहीं है) हे प्रभो ! मुझे अर्थ,धर्म, काम और मोक्षकी भी लालसा नहीं है;यद्यपि मेरे लिये ये दुर्लभ हैं, पर तुम चाहो तो इनको सहजमें ही दे सकते हो ॥२॥ हे रामजी ! (मेरी मनोकामना तो कुछ दूसरी ही है) मैं तो तुम्हारे हाथके खिलौनेके रूपमें पक्षी, पशु, वृक्ष और कंकर-पत्थर होकर ही रहना चाहता हूँ । इस नातेसे मुझे (घोर) नरकमें भी सुख है और इसके बिना मैं मोक्ष प्राप्त करनेपर भी दुःखसे जलता रहूँगा (मोक्ष नहीं चाहिये; रक्खो चाहे नरकमें, परन्तु अपने हाथका खिलौना बनाकर रक्खो । वह खिलौना चाहे चेतन हो या जड़ पेड़-पत्थर हो, मुझे

उसीमें परम सुख है) ॥३॥ इस दासके मनमें बस एक यही कामना है कि यह सदा तुम्हारी जूती पकड़े रहे (शरणमें पड़ा रहे) । या तो मुझे वचन दे दो (कि हम तेरी यह कामना पूरी कर देंगे) अथवा इस बातको मनमें निश्चय कर लो कि हम तुलसीका यह प्रण निवाह देंगे ॥४॥

[२३२]

दीनबंधु दूसरो कहँ पावों ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइ है ? केहि दीनता सुनावों ॥१॥
प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक, जहँ-जहँ चितहिं डोलावों ।
इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही, कहि भ्रम कहा गवावों ॥२॥
गोपद बुड़िबे जोग करम करौं, बातनि जलधि थहावों ।
अति लालची, काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावों ॥३॥
तुलसी प्रभु जियकी जानत सब, अपनो कछुक जनावों ।
सो कीजै, जेहि भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावों ॥४॥

भावार्थ—(तुम-सा) दीनबन्धु दूसरा कहाँ पाऊँगा ? हे नाथ ! तुमको छोड़कर पराये (भक्तके) दुःखसे दुखी होनेवाला दूसरा कौन है ? फिर अपनी दीनताका दुखड़ा किसके आगे रोता फिरूँ ? ॥१॥ जहाँ-जहाँ मैं अपने मनको डुलाता हूँ, वहाँ-वहाँ कहीं तो ऐसे स्वामी मिलते हैं जिनके दया नहीं है, और कहीं ऐसे मिलते हैं जो दयालु तो हैं, पर अयोग्य (असमर्थ) हैं । यह सुन-समझकर चुप ही रह जाता हूँ, क्योंकि ऐसोंके सामने कुछ कहकर अपना भरम ही क्यों खोऊँ ? (भेद भी खुल जायगा

और कुछ होगा भी नहीं) ॥२॥ कर्म तो ऐसे नीच किया करता हूँ कि गायके खुरमें डूब जाऊँ (चुल्लूभर पानीमें डूब मरूँ), पर बातें बनाकर समुद्रकी थाह ले रहा हूँ ! (कोरी कथनी-ही-कथनी है, करनी रत्तीभर भी नहीं है) मेरा मन बड़ा ही लालची है और कामका गुलाम है, परन्तु मुखसे तुम्हारा दास बनता फिरता हूँ ॥३॥ हे प्रभु ! आप तुलसीके मनकी तो सभी (बुरी-भली) बातें जानते हैं, तो भी मैं अपनी कुछ बातें बतलाना चाहता हूँ। अब तो—कुछ ऐसा उपाय कीजिये जिससे कपट छोड़कर (शुद्ध हृदयसे) आपके द्वारपर पड़ा-पड़ा केवल आपके गुण ही गाया करूँ ॥४॥

[२३३]

मनोरथ मनको एकै भाँति ।
चाहत मुनि-मन-अगम सुकृत-फल, मनसा अघ न अघाति ॥१॥
करमभूमि कलि जनम, कुसंगति, मति बिमोह-मद-माति ।
करत कुजोग कोटि, क्यों पैयत परमारथ-पद सांति ॥२॥
सेइ साधु-गुरु, सुनि पुरान-श्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति ।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु-सो, ज्यों दरपन मुख-कांति ॥३॥

भावार्थ—मनका मनोरथ भी एक (विलक्षण) ही प्रकारका है। वह इच्छा तो करता है ऐसे पुण्योंके फलकी जो मुनियोंके मनको भी दुर्लभ है, किन्तु पाप करनेसे उसकी इच्छा कभी पूरी नहीं होती (करूँ पाप और चाहूँ सर्वश्रेष्ठ पुण्यका फल, यह कैसे हो सकता है ?) ॥१॥ कर्म-भूमि भारतवर्षमें होनेपर भी, कलियुगमें जन्म, नीचोंकी संगति, अज्ञान तथा

घमण्डसे मतवाली बुद्धि एवं करोड़ों बुरे-बुरे कर्म--इन सबके कारण परम पद और शान्ति कैसे मिल सकती है? ॥२॥ सन्तों और गुरुकी सेवा करने तथा वेद और पुराणोंके सुननेसे परम शान्तिका ऐसा निश्चय हो जाता है जैसे सारंगी बजते ही राग पहचान लिया जाता है। हे तुलसी! प्रभु रामचन्द्रजीका स्वभाव तो अवश्य ही कल्पवृक्षके समान है (जो उनसे माँगा जाता है, वही मिल जाता है) किन्तु, साथ ही वह ऐसा है, जैसे दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब। जिस प्रकार अच्छा या बुरा जैसा मुँह बनाकर दर्पणमें देखा जायगा, वह वैसा ही दिखायी देगा, इसी प्रकार भगवान् भी तुम्हारी भावनाके अनुसार ही फल देंगे ॥३॥

[२३४]

जनम गयो बादिहिं बर बीति।
परमारथ पाले न पर्‌यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥१॥
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौबन जुवतिन लियो जीति।
रोग-बियोग-सोग-श्रम-संकुल बड़ि बय बृथहि अतीति ॥२॥
राग-रोष-इरिषा-बिमोह-बस रुची न साधु-समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुबरके, भइ न रामपद-प्रीति ॥३॥
हृदय दहत पछिताय-अनल अब, सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि बिरदकी रीति ॥४॥

भावार्थ—सुन्दर (मनुष्य) जीवन व्यर्थ ही बीत गया। तनिक भी परमार्थ पल्ले नहीं पड़ा। दिनों-दिन अनीति बढ़ती ही गयी ॥१॥ लड़कपन तो खेलते-खाते बीत गया, जवानीको स्त्रियोंने जीत लिया और

बुढ़ापा, रोग, (स्त्री-पुत्रादिके) वियोग, शोक तथा परिश्रमसे परिपूर्ण होनेके कारण वृथा बीत गया ॥२॥ राग, क्रोध, ईर्ष्या और मोहके कारण सन्तोंकी सभा अच्छी नहीं लगी, और (सत्सङ्गके अभावसे) न तो श्रीरघुनाथजीकी गुणावलीहीको कहा-सुना तथा न श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम ही हुआ ॥३॥ असहनीय संसारके भयको सुनकर अब यह हृदय पश्चात्तापरूपी आगसे जला जा रहा है, अब इस तुलसीके लिये अपने विरदकी रीतिको सोच-समझकर जो कुछ भी प्रभुसे बन पड़े सो करें ॥४॥

[२३५]

ऐसेहि जनम-समूह सिराने ।
प्राननाथ रघुनाथ-से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥१॥
जे जड़ जीव कुटिल, कायर, खल, केवल कलिमल-साने ।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरितें अधिक करि माने ॥२॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पायँ पिराने ।
सदा मलीन पंथके जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने ॥३॥
यह दीनता दूर करिबेको अमित जतन उर आने ।
तुलसी चित-चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥४॥

भावार्थ—इसी प्रकार अनेक जन्म (व्यर्थ) बीत गये । प्राणनाथ रघुनाथजी-सरीखे स्वामी छोड़कर दूसरोंके चरणोंकी सेवा करता रहा ! ॥१॥ जो मूर्ख जीव कुटिल, कायर और दुष्ट हैं तथा जो केवल कलिके पापोंसे सने हुए हैं, उनकी प्रशंसा करते-करते मुँह सूख गया

है और उनको भगवान्‌से भी अधिक समझ रक्खा है ॥२॥ सुखके लिये निरन्तर करोड़ों उपाय करते-करते कभी पैर नहीं दुखे (दिन-रात विषय-भोगोंके सुखोंमें इधर-उधर भटकता फिरा)। हृदय रास्तेके जलकी भाँति सदा मैला ही बना रहा, कभी निर्मल अथवा स्थिर नहीं हुआ ॥३॥ इस दीनताको दूर करनेके लिये अगणित उपाय मनमें सोचे, पर हे तुलसी ! चिन्तामणि (श्रीरघुनाथजी) को पहचाने बिना चित्तकी चिन्ता नहीं मिट सकती (परमात्माका और उनकी सुहृदताका ज्ञान होनेसे ही चिन्ताओंका नाश होगा) ॥४॥

[२३६]

जो पै जिय जानकी-नाथ न जाने।
तौ सब करम-धरम श्रमदायक ऐसेइ कहत सयाने ॥१॥
जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बेद-पुरान बखाने।
पूजा लेत, देत पलटे सुख हानि-लाभ अनुमाने ॥२॥
काको नाम धोखेहू सुमिरत पातकपुंज पराने।
बिप्र-बधिक, गज-गीध कोटि खल कौनके पेट समाने ॥३॥
मेरु-से दोष दूरि करि जनके, रेनु-से गुन उर आने।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहुँ अयाने ॥४॥

भावार्थ—अरे जीव ! यदि तूने श्रीजानकीनाथ रघुनाथजीको (तत्त्वसे) नहीं जाना तो तेरे सब कर्म, धर्म केवल परिश्रम ही देनेवाले हैं। (उनसे कोई असली लाभ नहीं होगा) बुद्धिमान् पुरुषोंने ऐसा ही कहा है। (श्रीरामचन्द्रजीको तत्त्वसे जान लेनेमें ही सारे कर्म-धर्मोंकी

सिद्धि है) ॥१॥ वेद और पुराण कहते हैं कि जितने देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और योगके ज्ञाता हैं वे सब पूजा लेकर उसके बदलेमें (नाशवान् सांसारिक विषय-) सुख देते हैं और ऐसा भी वे अपनी हानि और लाभका विचार करके करते हैं ॥२॥ आपके सिवा (ऐसा) किसका नाम है जिसका धोखेसे भी स्मरण करनेसे पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं? अजामिल ब्राह्मण, वाल्मीकि व्याध, गजराज, जटायु गीध आदि करोड़ों दुष्ट किसके अन्दर समा गये? (आपने ही उनको स्वीकार कर अपना परम धाम दे दिया) ॥३॥ जो अपने सेवकोंके सुमेरु पहाड़के समान (बड़े-बड़े) अपराधोंको भुलाकर उनके रजके कणके समान (जरा-जरा-से) गुणोंको अपने हृदयमें रख लेते हैं, हे तुलसी-दास! हे मूर्ख! सारी आशा छोड़कर तू उन्हींको क्यों नहीं भजता? ॥४॥

[२३७]

काहे न रसना, रामहि गावहि?
निसिदिन पर-अपवाद बृथा कत रटि-रटि राग बढ़ावहि ॥१॥
नरमुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि॥२॥
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि, सुनत श्रवन दै भावहि।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति, करन कलंक नसावहि ॥३॥
जातरूप मति, जुगुति रुचिर मनि रचि-रचि हार बनावहि।
सरन-सुखद रबिकुल-सरोज-रबि राम-नृपहि-पहिरावहि ॥४॥

वाद-बिबाद, स्वाद तजि भजि हरि, सरस चरित चित लावहि।
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥५॥

भावार्थ—अरी जीभ ! तू श्रीरामजीका गुणगान क्यों नहीं करती? दिन-रात दूसरोंकी निन्दा कर क्यों व्यर्थ ही आसक्ति बढ़ा रही है? ॥१॥ मनुष्यके मुखरूपी सुन्दर और पवित्र मन्दिरमें बसकर क्यों उसे लजा रही है? (विषयकी बातें छोड़कर श्रीराम-नाम क्यों नहीं लेती?) चन्द्रमाके पास रहती हुई भी अमृतको छोड़कर क्यों मृगतृष्णाके जलके लिये दौड़ रही है? (श्रीराम-नामरूपी अमृतका पान क्यों नहीं करती?) ॥२॥ संसारके भोगोंकी बातें कलियुगरूपी कुमुदिनीके (विकसित करनेके) लिये चाँदनीके सदृश है, उसे खूब कान लगाकर प्रेमपूर्वक सुना करती है। अरी जीभ! उस विषय-चर्चाको रोककर श्रीहरिके सुन्दर यशका गान कर, जिससे कानोंका कलंक दूर हो (विषयोंकी बातें निरन्तर सुनते-सुनते कान कलंकी हो गये हैं, उनका यह कलंक भगवत्कथाके श्रवण करनेसे ही दूर होगा) ॥३॥ बुद्धिरूपी सुवर्ण और युक्तिरूपी सुन्दर मणियोंका रच-रचकर एक हार तैयार कर और उस हारको शरणागतोंको सुख देनेवाले सूर्यकुलरूपी कमलके (प्रफुल्लित करनेवाले) सूर्य महाराज रामचन्द्रजीको पहिना। (विशुद्ध बुद्धि और उत्तम युक्तियोंद्वारा निश्चय करके श्रीहरिका नाम-गुण-कीर्तन कर) ॥४॥ वाद-विवाद तथा स्वादको छोड़कर श्रीहरिका भजन कर और उनकी रसीली लीलामें लौ लगा। यदि तू ऐसा करेगी तो तुलसीदास संसार-सागरसे पार हो जायगा (जन्म-मरणसे मुक्त हो जायगा) और तू भी तीनों लोकोंमें पवित्र कीर्तिको प्राप्त होगी ॥५॥

[२३८]

आपनो हित रावरेसों जो पै सूझै ।
तौ जनु तनुपर अछत सीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै ॥१॥
निज अवगुन, गुन राम ! रावरे लखि-सुनि मति-मन रूझै ।
रहनि-कहनि-समुझनि तुलसीकी को कृपालु बिनु बूझै ॥२॥

भावार्थ—हे नाथ ! यदि इस जीवको अपना कल्याण आपके द्वारा होता दीख पड़े, तो यह जबतक शरीरपर सिर है तबतक (बिना सिरके) कबन्धकी 'तरह क्यों लड़ता फिरे ? (भगवान्‌की कृपाका भरोसा नहीं है, इसीसे तो सिर रहते हुए ही—सिरपर भगवान्‌के रहते हुए ही-यह अपनेको मस्तकहीन मानकर-भगवान्‌को भुलाकर—अन्धेकी ज्यों सुखके लिये हर किसीसे लड़ रहा है। परन्तु मस्तक विना—भगवान्‌के आधार विना-न तो लड़कर जीत ही सकेगा और न कल्याण ही होगा)॥१॥ अपने अवगुण और आपके देवदुर्लभ गुणोंको देख-सुनकर, हे रामजी ! मेरी बुद्धि और मन रुक जाते हैं । संकोच होता है कि ऐसे मलिन कर्मोंवाला मैं आप सच्चिदानन्दघनके सामने कैसे जाऊँ । हे कृपालो ! तुलसीका आचरण, कथन और रहस्य आपको छोड़कर और कौन समझ सकता है ? (आप इस दीनकी सारी स्थिति जानते हैं, अपनी कृपादृष्टिसे ही इसका उद्धार कीजिये) ॥२॥

[२३९]

जाको हरि दृढ़ करि अंग कर्‍यो ।
सोइ सुसील, पुनीत, बेदबिद, बिद्या-गुननि भर्‍यो ॥१॥

उतपति पांडु-सुतनकी करनी सुनि सतपंथ डरयो ।
ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जस सुनि-सुनि लोक तरयो ॥२॥
जो निज धरम बेद-बोधित सो करत न कछु बिसरयो ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उधरयो ॥३॥
ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जरयो ।
अजर-अमर, कुलिसहुँ नाहिंन बध, सो पुनि फेन मरयो ॥४॥
बिप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं बिगरयो ।
उनको कियो सहाय बहुत, उरको संताप हरयो ॥५॥
गनिका अरु कंदरपतें जगमहँ अघ न करत उबरयो ।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि-भवन धरयो ॥६॥
केहि आचरन भलो मानैं प्रभु सो तौ न जानि परयो ।
तुलसिदास रघुनाथ-कृपाको जोवत पंथ खरयो ॥७॥

भावार्थ—जिसे श्रीहरिने दृढ़तापूर्वक हृदयसे लगा लिया, वही सुशील है, पवित्र है, वेदका ज्ञाता है और समस्त विद्या एवं सद्‌गुणोंसे भरा हुआ है (जिसपर भगवान् कृपा करते हैं, सारे सद्‌गुण अपना गौरव बढ़ानेके लिये उसके अन्दर आप ही आ जाते हैं) ॥१॥ पाण्डुके पुत्रोंकी उत्पत्ति और उनकी करतूतको सुनकर सन्मार्गतक डर गया था; किन्तु वे ही श्रीहरि-कृपासे, तीनों लोकोंमें पूजनीय हो गये और उनका पवित्र यश सुन-सुनकर लोग तर गये ॥२॥ जिस राजा नृगने वेद-विहित स्वधर्मके पालनमें तनिक भी कसर नहीं की थी और जो बिना ही किसी दोषके गिरगिट होकर कुएँमें पड़ा हुआ था, उसको आपने हाथ पकड़कर

बाहर निकाल लिया और उसका उद्धार कर दिया (गिरगिटकी योनिसे छुड़ाकर दिव्यलोकको भेज दिया) ॥३॥ सारे ब्रह्माण्डको भस्म कर देनेमें समर्थ (अश्वत्थामाके) ब्रह्मास्त्रसे भी राजा (परीक्षित) गर्भमें नहीं जला और अजर एवं अमर (नमुचि) दैत्य जो वज्रसे भी नहीं मरा था, वह फेनसे मर गया ॥४॥ अजामिल ब्राह्मण और इन्द्रके (आचरणोंमें) ऐसी कौन-सी बात थी जो न बिगड़ी हो, किन्तु आपने उनकी बड़ी सहायता की और उनके हृदयका सन्ताप हर लिया ॥५॥ (पिंगला) वेश्या और कामदेवने जगत्‌में ऐसा कौन-सा पाप है जो नहीं किया हो, किन्तु भगवान्‌ने उनका चरित्र पवित्र समझकर उन्हें अपने हृदय-मन्दिरमें स्थान दिया ॥६॥ भगवान् किस आचरणसे प्रसन्न होते हैं, यह समझमें नहीं आता। तुलसीदास तो बस, खड़ा-खड़ा केवल श्रीरघुनाथजीकी कृपाकी बाट देख रहा है ॥७॥

[२४०]

सोइ सुकृती, सुचि साँचो जाहि राम ! तुम रीझे ।
गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गये, लै कासी प्रयाग कब सीझे ॥१॥
कबहुँ न डग्यो निगम-मगतें पग, नृग जग जानि जिते दुख पाये ।
गजधौं कौन दिछित, जाके सुमिरत लै सुनाभ बाहन तजि धाये ॥२॥
सुर-मुनि-बिप्र बिहाय बड़ कुल, गोकुल जनम गोपगृह लीन्हो ।
बायों दियो बिभव कुरुपतिको, भोजन जाइ बिदुर-घर कीन्हो ॥३॥
मानत भलहि भलो भगतनितें, कछुक रीति पारथहि जनाई ।
तुलसी सहज सनेह राम बस, और सबै जलकी चिकनाई ॥४॥

भावार्थ—हे रामजी ! जिसपर आप प्रसन्न हो गये, वही सच्चा पुण्यात्मा है और वही पवित्र है। वेश्या (पिंगला), गीध (जटायु) और बहेलिया (वाल्मीकि) जो परम धाम वैकुण्ठको चले गये, उन्होंने कब प्रयागमें जाकर तप किया और कण्डोंकी आगमें जलकर मरे ? ॥१॥ राजा नृग कभी वेदोक्त मार्गसे नहीं डिगा था, किन्तु संसार जानता है, उसने कितने दुःख भोगे (गिरगिटकी योनि पाकर हजारों वर्ष कुएँमें पड़ा सड़ता रहा !) और वह हाथी कहाँका दीक्षित था, जिसके एक बार याद करते ही आप अपने वाहन गरुड़को छोड़कर सुदर्शन-चक्र लिये दौड़े आये ? ॥२॥ देवता, मुनि और ब्राह्मणोंके ऊँचे कुलको छोड़कर आपने गोकुलमें एक गोप (नन्दजी) के घरमें जन्म लिया। कौरव-पति राजा दुर्योधनके ऐश्वर्यको ठुकराकर आपने (दीन) विदुरके घर जाकर (साग-भाजीका) भोजन किया ॥३॥ भगवान् अपने अनन्य प्रेमी भक्तोंके साथ बहुत भला मानते हैं। इस अनन्य प्रेम-भक्ति-की रीति कुछ-कुछ आपने अर्जुनको बतायी थी। हे तुलसीदास ! श्रीरामजी तो सरल स्वाभाविक विशुद्ध प्रेमके अधीन हैं, दूसरे जितने साधन हैं वे ऐसे हैं, जैसे पानीकी चिकनाई ! (पानी पड़नेपर, थोड़ी देरके लिये शरीर चिकना-सा मालूम होता है, पर सूखनेपर फिर ज्यों-का-त्यों रूखा हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे साधनोंसे कामनाकी पूर्ति होनेपर क्षणिक सुख तो मिलता है, परन्तु दूसरी कामना उत्पन्न होते ही मिट जाता है) ॥४॥

[२४१]

तब तुम मोहूसे सठनिको हठि गति न देते ।
कैसेहु नाम लेइ कोउ पामर, सुनि सादर आगे ह्वै लेते ॥१॥
पाप-खानि जिय जानि अजामिल जमगन तमकि तये ताको भे ते ।
लियो छुड़ाइ, चले कर मींजत, पीसत दाँत गये रिस-रेते ॥२॥
गोतम-तिय, गज, गीध, बिटप, कपि, हैं नाथहिं नीके मालुम जेते ।
तिन्ह तिन्ह काजनि
तिन्हके काज साधु-समाजु तजि कृपासिंधु तब तब उठिगे ते ॥३॥
अजहुँ अधिक आदर येहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते ।
मेरे पासंगहु न पूजिहैं, ह्वै गये, हैं, होने खल जेते ॥४॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते ।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै, सहि न जात मोपै परिहास एते ॥५॥

भावार्थ—(जब अनेक दुष्टोंको परम गति दी है) तब आप मुझ-सरीखे दुष्टोंको हठपूर्वक परम पद क्यों नहीं देते ? कोई भी पापी कैसे ही आपका नाम लेता हो, सुनते ही आप बड़े आदरके साथ उसे आगे होकर (अपनी गोदमें ले) लेते हैं, फिर मेरे ही लिये ऐसा क्यों नहीं करते ? ॥१॥ अजामिलको यमदूतोंने अपने मनमें पापोंकी खान समझ, तमककर भय दिखाते हुए उसे कष्ट दिया, किन्तु आपने उसे (मरते समय धोखेसे 'नारायण' नाम लेनेपर ही) उनके हाथसे छुड़ा लिया। यमदूत हाथ मलते और क्रोधके मारे दाँत पीसते हुए खाली हाथ ही लौट गये ॥२॥ गौतम-की स्त्री (अहल्या), गजराज, गीध (जटायु), वृक्ष (यमलार्जुन) और बन्दर (सुग्रीव) आदि कैसे थे सो नाथको अच्छी तरह मालूम है,

परन्तु जब उन सबका काम पड़ा, तब आप सन्त-समाजको भी छोड़कर (उनकी सहायताके लिये) वहाँसे चल दिये ॥३॥ आज भी इस आपके दरवाज़ेपर ऐसोंका ही अधिक आदर है और न जाने कितने पापी नित्य पवित्र बनाये जाते हैं। ऐसा होते हुए भी अबतक मेरी सुनाई क्यों नहीं हुई? क्या मैं कम पापी हूँ? संसारमें जितने दुष्ट हुए हैं, हैं और होंगे, वे सब तो मेरे पसंगेमें भी पूरे न होंगे ॥४॥ अबतक तो मैं आपके करतबकी ओर टक लगाये देख रहा था, (बाट देखता था कि मेरा भी उद्धार कभी कर देंगे)। परन्तु आपने इधर कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिये बस, अब तुलसीदास आपके नामका पुतला* बाँधेगा, क्योंकि मुझसे अब इतना उपहास सहन नहीं होता ॥५॥

[२४२]

तुमसम दीनबंधु, न दीन कोउ मोसम, सुनहु नृपति रघुराई ।
मोसम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुमसम हरि! न हरन कुटिलाई ॥१॥
हौं मन-बचन-करम पातक-रत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई ।
हौं अनाथ, प्रभु! तुम अनाथ-हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥२॥
हौं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम-पुराननि गाई ।
हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई ॥३॥

* जब नटोंको खेल दिखानेपर कुछ नहीं मिलता, तब वे कपड़ेका पुतला बनाकर बाँसपर लटकाये हुए कहते फिरते हैं कि देखो यह कैसा अनुदार है। इससे लज्जित होकर उनको कुछ-न-कुछ दे ही देता है। इसी तरह मैं भी एक पुतला बनाकर लिये फिरूँगा। लोग पूछेंगे, तो यही उत्तर दूँगा कि यह अयोध्याधिप महाराज श्रीरामचन्द्रजी हैं! इससे आपको लाज लगेगी तब आप ही अपनावेंगे।

तुम सुखधाम राम श्रम-भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध श्रम पाई ।
यह जिय जानि दास तुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥४॥

भावार्थ—हे महाराज रामचन्द्रजी ! आपके समान तो कोई दीनोंका कल्याण करनेवाला बन्धु नहीं है और मेरे समान कोई दीन नहीं है। मेरी बराबरीका संसारमें कोई कुटिलोंका शिरोमणि नहीं है और हे नाथ ! आपके बराबर कुटिलताका नाश करनेवाला कोई नहीं है ॥१॥ मैं मनसे, वचनसे और कर्मसे पापोंमें रत हूँ और हे कृपालो ! आप पापियोंको परमगति देनेवाले हैं। मैं अनाथ हूँ और हे प्रभो ! आप अनाथोंका हित करनेवाले हैं। यह बात मेरे मनसे कभी नहीं जाती ॥२॥ मैं दुखी हूँ, आप दुःखोंके दूर करनेवाले हैं। आपका यह यश वेद-पुराण गा रहे हैं। मैं (जन्म-मृत्युरूप) संसारसे डरा हुआ हूँ और आप सब भय नाश करनेवाले हैं। (आपके और मेरे इतने सम्बन्ध होनेपर भी) क्या कारण है, कि आप मुझपर कृपा नहीं करते ? ॥३॥ हे श्रीरामजी ! आप आनन्दके धाम तथा श्रमके नाश करनेवाले हैं और मैं संसारके तीनों (दैहिक, दैविक और भौतिक) श्रमोंसे अत्यन्त ही दुखी हो रहा हूँ। इन बातोंको अपने मनमें बिचारकर तथा अपनी प्रभुताको समझकर तुलसीदासको अपनी शरणमें रख ही लीजिये ॥४॥

[२४३]

यहै जानि चरनन्हि चित लायो ।
नाहिन नाथ ! अकारनको हितु तुम समान पुरान-श्रुति गायो ॥१॥

जननि-जनक, सुत-दार, बंधुजन भये बहुत जहँ-जहँ हौं जायो ।
सब स्वारथहित प्रीति, कपट चित, काहू नहिं हरिभजन सिखायो ॥२॥
सुर-मुनि, मनुज-दनुज, अहि-किन्नर, मैं तनु धरि सिर काहि न नायो ।
जरत फिरत त्रयताप पापबस, काहु न हरि! करि कृपा जुड़ायो ॥३॥
जतन अनेक किये सुख-कारन, हरिपद-बिमुख सदा दुख पायो ।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपति-जाल जग छायो ॥४॥
मो कहँ नाथ! बूझिये,यह गति सुख-निधान निज पति बिसरायो ।
अब तजि रोष करहु करुना हरि! तुलसिदास सरनागत आयो ॥५॥

भावार्थ—यही जानकर मैंने (सब ओरसे हटाकर) आपके चरणोंमें चित्त लगाया है कि हे नाथ! आपके समान, बिना ही कारण, हित करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं ॥१॥ जहाँ-जहाँ (जिस-जिस योनिमें) मैंने जन्म लिया, वहाँ-वहाँ मेरे बहुत-से पिता-माता, पुत्र-स्त्री और भाई-बन्धु हुए। परन्तु वे सभी स्वार्थ-साधनके लिये मुझसे प्रेम करते रहे, उनके मनमें छल-कपट रहा। इसीलिये किसीने भी मुझे श्रीहरिका भजन नहीं सिखाया (सभी संसारमें फँसे रहनेकी शिक्षा देते रहे,भगवद्भजनका उपदेश नहीं दिया)॥२॥ शरीर धारणकर मैंने(अपनी भलाई करनेके लिये) देवता-मुनि,मनुष्य-राक्षस, सर्प-किन्नर आदि किसको सिर नहीं नवाया? (सभीके चरणोंमें सिर रख-रखकर खुशामदें कीं) किन्तु, हे हरे! पापके फलस्वरूप तीनों तापोंसे जलते फिरते हुए मुझको किसीने दयाकर शीतल नहीं किया। (मोक्ष-प्रदान कर संसारका ताप कोई नहीं मिटा सके) ॥३॥ मैंने सुखके लिये बहुत-से साधन किये, पर भगवच्चरणोंसे

विमुख होनेके कारण सदा दुःख ही पाया। संसारमें विपत्तियोंका जाल बिछा हुआ देखकर अब मैं (समस्त साधनोंसे) ऐसा थक गया हूँ, जैसे बिना पानीके नौका थक जाती है ॥४॥ हे नाथ! समझ लीजिये, मेरी यह दशा इसीलिये हुई है, कि मैंने अपने सुख-निधान स्वामीको भुला दिया। हे हरे! अब मेरे दोषोंका खयाल छोड़कर इस शरणागत तुलसीदासपर दया कीजिये ॥५॥

[२४४]

याहि ते मैं हरि ग्यान गँवायो।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि, बाहर फिरत बिकल भयो धायो ॥१॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ तें आयो ॥२॥
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन, ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो ॥३॥
ब्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहि धाम नाम-सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो ॥४॥
तुम-सम ग्यान-निधान, मोहि सम मूढ़ न आन पुराननि गायो।
तुलसिदास प्रभु! यह बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥५॥

भावार्थ—हे हरे! मैंने इसी कारण ज्ञानको खो दिया कि जो मैं अपने हृदयकमलमें विराजित आपको छोड़कर (सुखके लिये) व्याकुल होकर बाहर इधर-उधरके अनेक साधनोंमें भटकता फिरा ॥१॥ जैसे अत्यन्त बुद्धिहीन हरिण अपने ही शरीरमें सुन्दर कस्तूरी होनेपर भी

उसका भेद नहीं जानता, और पहाड़, पेड़, लता, पृथ्वी और बिलोंमें ढूँढ़ता फिरता है कि यह श्रेष्ठ सुगन्ध कहाँसे आ रही है (वही हालत मेरी है। सुखस्वरूप स्वामीके हृदयमें रहनेपर भी मैं बाहर ढूँढ़ रहा हूँ) ॥२॥ तालाब निर्मल पानीसे लबालब भरा है, किन्तु ऊपरसे कुछ काई और घास छाया है। इसीसे (भ्रमवश) उस (तालाबके स्वच्छ) जलको छोड़कर मैं दुष्ट अपना हृदय जला रहा हूँ, और इस प्रकार अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ। (हृदय-सरोवरमें सच्चिदानन्द-घन परमात्मारूपी अनन्त शीतल जल भरा है, परन्तु अज्ञानकी काई आ जानेसे मैं मृगजलरूपी सांसारिक भोगोंको प्राप्त करके उनसे परम-सुखकी तृष्णा मिटाना चाहता हूँ और फलस्वरूप त्रितापसे जल रहा हूँ) ॥३॥ एक तो वैसे ही शरीरमें दारुण त्रिविध ताप व्याप रहे हैं, तिसपर यह (साधन-धनके अभावकी) असहनीय दरिद्रता सता रही है। (मैं कैसा महान् मूर्ख हूँ कि) अपने ही (हृदयरूपी) घरमें भगवन्नामरूपी (मनचाहा फल देनेवाला) जो कल्पवृक्ष है उसे छोड़कर मैंने विषयरूपी बबूलके बाग़में अपना मन लगा रक्खा है । (बबूलके बाग़में दुःखरूप काँटोंके सिवा और क्या मिल सकता है ?) ॥४॥ आपके समान तो कोई ज्ञान-निधान नहीं है और मेरे समान और कोई मूर्ख नहीं है, यह बात पुराणोंने कही है। इस बातको बिचारकर हे नाथ! आपको जो उचित प्रतीत हो इस तुलसीदासके लिये वही कीजिये ॥५॥

[२४५]

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।

याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो ॥१॥

सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥२॥
करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो ॥३॥
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो ।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ॥४॥

भावार्थ—इस मूर्ख मनने मुझको खूब ही छकाया । हे करुणामय ! सुनिये, इसीके कारण मैं बारम्बार जगत्‌में जनम-जनमकर दुःखसे रोता फिरा ॥१॥ शीतल और मधुर अमृतरूप सहजसुख (ब्रह्मानन्द) जो अत्यन्त निकट ही रहता है, (आत्माका स्वरूप ही सत्, चित्, आनन्दघन है) मैंने इस मनके फेरमें पड़कर उसे यों भुला दिया, मानो वह बहुत ही दूर हो । मोहवश अनेक प्रकारसे परिश्रम कर मुझ मूर्खनें व्यर्थ ही पानीको विलोया (विषयरूपी जलको मथकर उससे परमानन्दरूपी घी निकालना चाहा) ॥२॥ यद्यपि मनमें यह जानता था कि कर्म कीचड़ है, (उसमें पड़ते ही सब ओरसे मलिनता छा जायगी) फिर भी चित्तको उसीमें सानकर (प्यास बुझानेके लिये) मैं कुटिल, मलसे ही मलको धोया चाहता हूँ । प्यास लग रही है, पर मैं ऐसा दुष्ट हूँ कि श्रीगंगाजीको छोड़कर बार-बार व्याकुल हो आकाश निचोड़ता फिरता हूँ (सच्चे सुखकी प्राप्तिके लिये दुःखरूप विषयोंमें भटकता हूँ) ॥३॥ हे नाथ ! मैंने अपना एक भी दोष आपसे नहीं छिपाया है, अतः अब इस तुलसीदासपर कृपा कीजिये। मुझे बिछौना बिछाते-बिछाते ही सारी रात बीत गयी, पर हे नाथ ! कभी

नींदभर नहीं सोया। (सुख-प्राप्तिके उपाय करते-करते ही जीवन बीत गया, आपको प्राप्तकर पूर्णकाम हो बोधरूप सुखकी नींदमें कभी नहीं सो पाया। अब तो कृपा कीजिये) ॥४॥

[२४६]

लोक-बेद हूँ बिदित बात सुनि-समुझि
मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति।
छोटे-बड़े, खोटे-खरे, मोटेऊ दूबरे,
राम ! रावरे निबाहे सबहीकी निबहति ॥१॥
होती जो आपने बस, रहती एक ही रस,
दुनी न हरष-सोक-साँसति सहति।
चहतो जो जोई जोई, लहतो सो सोई सोई,
केहू भाँति काहूकी न लालसा रहति ॥२॥
करम,काल,सुभाउ गुन-दोष जीव जग मायाते,
सो सभै भौंह चकित चहति।
ईसनि-दिगीसनि,जोगीसनि-मुनीसनि हू,
छोड़ति छोड़ाये तें, गहाये तें गहति ॥३॥
सतरंजको सो राज, काठको सबै समाज,
महाराज बाजी रची, प्रथम न हति।
तुलसी प्रभुके हाथ हारिबो-जीतिबो नाथ !
बहु बेष, बहु मुख सारदा कहति ॥४॥

भावार्थ—छोटे-बड़े, बुरे-भले, मोटे और दुबले, इन सबकी, हे श्रीरामजी ! आपके ही निभानेसे निभती है—यह बात संसार और वेदोंमें प्रकट है। किन्तु इसे सुनकर और बिचारकर भी मेरी मोहके वश हुई बुद्धि ऐसी व्याकुल हो रही है कि वह कभी स्थिर (निश्चयात्मिका) नहीं होती ॥१॥ जो यह मेरे वशमें होती तो सदा एकरस (निश्चयात्मिका) ही रहती (क्योंकि जीवात्मा नित्य परमात्म-सुख ही चाहता है), फिर यह संसारके हर्ष, शोक और सङ्कटोंको क्यों सहती ? (बुद्धि ईश्वर-मुखी निश्चयात्मिका होनेपर) जो जिस वस्तुकी इच्छा करता, वही उसे मिल जाती। किसीकी कोई भी लालसा बाकी न रहती (परमात्माको प्राप्त-कर जीव पूर्णकाम हो जाता) ॥२॥ किन्तु ऐसा है नहीं। जगत्में जीवके कर्म, काल, स्वभाव, गुण, दोष—ये सब आपकी मायासे हैं और वह माया मारे डरके भौंचक्की-सी होकर आपकी भृकुटिकी ओर ताकती रहती है (आपके नचाये नाचती है)। यह माया शिव, ब्रह्मा और दिक्पालोंको, योगीश्वरों और मुनीश्वरोंको आपके ही छुड़ानेसे छोड़ती है और आपके ही पकड़ानेसे पकड़ लेती है ॥३॥ इस मायाका सारा समाज शतरंजका-सा राज्य है (असत् है), सब काठका बना है (असलमें न कोई राजा है, न वज़ीर)। हे महाराज ! शतरंजकी यह बाजी आपहीकी रची हुई है, यह पहले नहीं थी। तुलसीदास कहते हैं कि हे प्रभो ! इस बाजीकी हार-जीत आपहीके हाथमें है। यह बात सरस्वतीने अनेक वेष धारणकर बहुत-से मुखोंसे कही है (सभी विद्वानोंकी वाणीसे यही निकला है कि बन्धन-मोक्ष सब श्रीभगवान्के ही हाथ है) ॥४॥

[२४७]

राम जपु जीह ! जानि,प्रीति सों प्रतीत मानि,
रामनाम जपे जैहै जियकी जरनि ।
रामनामसों रहनि, रामनामकी कहनि,
कुटिल कलि-मल-सोक-संकट-हरनि ॥ १ ॥
रामनामको प्रभाउ पूजियत गनराउ,
कियो न दुराउ, कही आपनी करनि ।
भव-सागरको सेतु, कासीहू सुगति हेतु,
जपत सादर संभु सहित घरनि ॥ २ ॥
बालमीकि ब्याध हे अगाध-अपराध-निधि,
'मरा' 'मरा' जपे पूजे मुनि अमरनि ।
रोक्यो बिंध्य,सोख्यो सिंधु घटजहुँ नाम-बल,
हार्‌यो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि ॥ ३ ॥
नाम-महिमा अपार, सेष-सुक बार-बार
मति-अनुसार बुध बेदहू बरनि ।
नामरति-कामधेनु तुलसीको कामतरु,
रामनाम है बिमोह-तिमिर-तरनि ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे जीभ ! राम-नामका जप कर, राम-नामके (तत्त्वको) जान और प्रेमपूर्वक उसमें विश्वास कर । एक राम-नामके जपसे तेरे हृदयके (तीनों) ताप शान्त हो जायँगे । राम-नामके परायण हो और राम-नाम ही-

का कथन किया कर। (इस प्रकार नामकी शरणागति) कुटिल कलियुगके पापों, दुःखों और संकटोंको हरनेवाली है ॥१॥ राम-नामके प्रभावसे गणेश (सर्वप्रथम) पूजे जाते हैं। गणेशजीने अपनी करनीको स्वयं कहा है, कुछ छिपाकर नहीं रक्खा। यह राम-नाम संसाररूपी समुद्रका पुल है (इसपर चढ़कर भक्तजन सहज ही भवसागरसे तर जाते हैं)। काशीमें भगवान् शंकर भी पार्वतीके सहित जीवोंको मोक्ष देनेके लिये राम-नामको जपा करते हैं ॥२॥ वाल्मीकि व्याधके अनन्त पाप थे, किन्तु उलटा नाम 'मरा-मरा' जपकर वे ऐसे हो गये कि मुनियों और देवताओंने भी उनकी पूजा की। अगस्त्य ऋषिने भी इसी राम-नामके बलपर विन्ध्याचल-पर्वतको रोक लिया एवं समुद्रको सुखा दिया था। पीछे वह समुद्र उन्हीं ब्राह्मण (अगस्त्य) के भयसे हृदयमें हार मानकर खारा हो गया ॥३॥ राम-नामकी अपार महिमा है। शेष, शुकदेव, वेद और पण्डितोंने बार-बार अपनी बुद्धिके अनुसार इसका वर्णन किया है। राम-नामसे प्रीति होना तुलसीदासके लिये कामधेनु और कल्पवृक्ष ही है (उसे तो इसी राम-नामसे मनचाहा दुर्लभ पद मिला है)। अधिक क्या, यह राम-नाम अज्ञानके अन्धकारको दूर करनेके लिये साक्षात् सूर्य है ॥४॥

[२४८]

पाहि, पाहि राम! पाहि, रामभद्र, रामचंद्र!
सुजस श्रवन सुनि आयो हौं सरन।
दीनबन्धु! दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख
दारुन दुसह दर-दुरित-हरन ॥ १ ॥

जब जब जग-जाल ब्याकुल करम काल,

सब खल भूप भये भूतल-भरन ।

तब तब तनु धरि, भूमि-भार दूरि करि

थापे मुनि, सुर, साधु, आश्रम, बरन ॥ २ ॥

बेद, लोक, सब साखी, काहूकी रती न राखी,

रावनकी बंदि लागे अमर मरन ।

ओक दै बिसोक किये लोकपति लोकनाथ

रामराज भयो धरम चारिहु चरन ॥ ३ ॥

सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भालु, रातिचर,

ख्याल ही कृपालु कीन्हे तारन-तरन ।

पील-उद्धरन ! सीलसिंधु ! ढील देखियतु

तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! हे कल्याणस्वरूप रघुनाथजी ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । आपका सुयश सुनकर शरण आया हूँ । हे दीनबन्धो ! आप दीनता, दरिद्रता, सन्ताप, दोष, दारुण दुःख और असहनीय भय तथा पापोंको नाश करनेवाले हैं ॥१॥ जब-जब साधु (सन्त और गौ-ब्राह्मण) काल और कर्मके वश हो जगज्जालमें फँसकर व्याकुल हुए और सब दुष्ट राजा पृथ्वीपर भारस्वरूप हुए, तब-तब आपने अवतार-शरीर धारण-कर (दुष्टोंका संहार कर) पृथ्वीका भार दूर कर दिया और मुनि, देवता, सन्त एवं वर्णाश्रम-धर्मकी पुनः स्थापना की ॥२॥ वेद और संसार दोनों ही इसके साक्षी हैं कि जब रावणने किसीकी भी प्रतिष्ठा नहीं

रहने दी और देवतागण उसके कैदखानेमें पड़े-पड़े मरने लगे, तव हे भगवन्! आपहीने उन लोक-पतियोंको—इन्द्र, कुबेर आदिको आश्रय देकर शोकरहित किया और उन्हें फिरसे अपने-अपने लोकोंका स्वामी बनाया, और हे रामजी! आपके राज्यमें धर्म चारों चरणोंसे युक्त (धर्मराज्य) हो गया (सत्य, तप, दया और दान विकसित हो उठे) ॥३॥ हे कृपालो! आपने लीलापूर्वक ही अहल्या, निषाद, जटायु, बन्दर, भील, भालु और राक्षसोंको तरण-तारण कर दिया, (उन्हें तो तार ही दिया, परन्तु दूसरोंको तारनेकी शक्ति भी उनको दे दी। जिस किसीने उनका संग या अनुकरण किया, वह भी तर गया।) हे गजराजके उद्धारक! हे शीलके सागर! इस तुलसीपर जो आपकी ओरसे कुछ ढील-सी दिखायी देती है, इससे वह मारे ग्लानिके गला चाहता है। अतएव कृपाकर इसका भी शीघ्र ही उद्धार कीजिये ॥४॥

[२४९]

भली भाँति पहिचाने-जाने साहिब जहाँ लौं जग,
जूड़े होत थोरे, थोरे ही गरम।
प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीतिके मलीन,
मायाधीन सब किये कालहू करम ॥१॥
दानव-दनुज बड़े महामूढ़ मूँड़ चढ़े,
जीते लोकनाथ नाथ! बलनि भरम।
रीझि-रीझि दिये बर, खीझि-खीझि घाले घर,
आपने निवाजेकी न काहूको सरम ॥२॥

सेवा-सावधान तू सुजान समरथ साँचो,
सदगुन-धाम राम! पावन परम।
सुरुख, सुमुख, एकरस, एकरूप, तोहि
बिदित बिसेषि घटघटके मरम ॥३॥
तोसो नतपाल न कृपाल, न कँगाल मो-सो
दयामें बसत देव सकल धरम।
राम कामतरु-छाँह चाहै रुचि मन माँह,
तुलसी बिकल, बलि, कलि-कुधरम ॥४॥

भावार्थ—जगत्‌में जहाँतक मालिक हैं, उनको मैंने भलीभाँति समझ और पहचान लिया है। वे थोड़ेमें ही प्रसन्न हो जाते हैं और थोड़ेमें ही गरम हो उठते हैं। न तो वे प्रेमके निभानेमें ही चतुर हैं और न नीति ही जानते हैं। उनकी चालें सब बुरी हैं, क्योंकि काल, कर्म और मायाने उन्हें अपने अधीन कर रक्खा है ॥१॥ हे नाथ ! (अपने) बलके भ्रमसे बड़े-बड़े दैत्य-दानव आदि महामूर्ख बनकर (सबके) सिरपर चढ़ गये थे और उन्होंने लोकपालोंको भी जीत लिया था। इन लोगोंको इनके मालिकोंने (देवताओंने) पहले तो (इनके तप) पर रीझ-रीझकर (मनमाने) वर दिये, पर पीछेसे नाराज हो-होकर इनके घरोंको स्वाहा करा दिया ! (आपकी प्रार्थना करके) अपने सेवकोंको बिगाड़ते समय किसीको भी शर्म न आयी ॥२॥ हे रामजी ! सावधान सेवकोंको तो आप ही भलीभाँति पहचानते हैं, क्योंकि आप ही सच्चे समर्थ, सद्‌गुणोंके स्थान और परमपवित्र हैं। आप सबपर कृपा करने-

वाले, प्रसन्न-मुख, सदा एकरस और एकरूप हैं। आपको घट-घटका भेद विशेषरूपसे मालूम है ॥३॥ हे कृपालो ! आपके समान शरणागत कंगालोंको पालनेवाला दूसरा कोई नहीं है और मुझ-सरीखा कोई कंगाल नहीं है। हे देव ! सारे धर्मोंका निवास दयामें ही है (अतः मुझ दीनपर दया कर दीजिये)। फिर हे नाथ ! आप तो कल्पवृक्ष हैं। इसी कल्पवृक्ष-की छायामें मैं रहना चाहता हूँ। बलिहारी ! यह तुलसी कलियुगके कुटिल धर्मोंसे बड़ा ही व्याकुल हो रहा है। (कृपाकर इसे शीघ्र ही बचाइये) ॥४॥

[२५०]

तौ हौं बार बार प्रभुहि पुकारिकै खिझावतो न,
जो पै मोको होतो कहूँ ठाकुर-ठहरु।
आलसी-अभागे मोसे तैं कृपालु पाले-पोसे,
राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु ॥१॥
सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस, गौरी,
हित कै न माने बिधि हरिउ न हरु।
रामनाम ही सों जोग-छेम, नेम, प्रेम-पन,
सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरु ॥२॥
समाचार साथके अनाथ-नाथ ! कासों कहौं,
नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु।
निज काज, सुरकाज, आरतके काज, राज !
बूझिये बिलंब कहा कहूँ न गहरु ॥३॥

रीति सुनि रावरी प्रतीति-प्रीति रावरे सों,
डरत हौं देखि कलिकालको कहरु।
कहेही बनैगी कै कहाये, बलि जाउँ, राम,
'तुलसी! तू मेरो, हारि हिये न हहरु' ॥४॥

भावार्थ—हे नाथ! यदि मुझे कहीं कोई दूसरा स्वामी या (आश्रय-के लिये) स्थान मिल जाता, तो मैं बार-बार आपको पुकारकर अप्रसन्न न करता। हे महाराज रामचन्द्रजी! मुझ-सरीखे आलसियों और अभागोंको तो आपने ही पाला-पोसा है। अतएव हे कृपालो! आप ही मेरे राजा हैं और अयोध्या ही मेरे (रहनेके) लिये शहर है ॥१॥ न तो मैंने दिक्पाल, सूर्य, गणेश और पार्वतीहीकी प्रेमपूर्वक सेवा की है और न (श्रद्धासहित) ब्रह्मा, शिव और विष्णुकी ही उपासना की है। मेरा तो योग-क्षेम एक राम-नामसे ही है। (राम-नामसे ही मुझे तो अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्त साधनकी रक्षा हुई है) उसीसे मेरा नेम है, उसीसे प्रेम है और उसीमें अनन्यता है। उसका भरोसा मेरे लिये अमृतके समान है और दूसरे सब साधन विषके समान हैं ॥२॥ हे अनाथोंके नाथ! मेरे साथी चोर और चौकीदार सब आपहीके हाथमें हैं, इससे उनकी बात और किससे कहूँ। (आप काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि चोरोंको भगा-कर विवेक-वैराग्यरूपी चौकीदारोंको सचेत कर देंगे तो मेरा राम-नाम-प्रेमरूपी धन बच जायगा।) हे महाराज! जरा विचारिये, आपने अपने कामोंमें, देवताओंके कामोंमें और दीन-दुखियोंके कामोंमें क्या कभी देर की है? फिर मेरे ही लिये क्यों इतना विलम्ब हो रहा है? ॥३॥ आपकी

रीति (पतित-पावनता, शरणागत-वत्सलता आदि) सुनकर मुझे आपपर विश्वास और प्रेम हो गया है, किन्तु कलियुगकी अनीति देखकर मैं डरता हूँ (कि कहीं वह मुझे आपसे विमुख कर विषयोंमें न फँसा दे)। हे रघुनाथजी ! मैं आपकी बलैया लेता हूँ; मेरी तो आपके इतना कहनेसे या किसीके द्वारा कहलानेसे ही बनेगी कि 'हे तुलसी ! तू मेरा है, निराश होकर हृदयमें मत घबरा' ॥४॥

[२५१]

राम ! रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर, हनुमान, लखन, भरत ।
जिन्हके हिये-सुथरु राम-प्रेम-सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत ॥ १ ॥
आप माने स्वामी कै सखा सुभाइ भाइ, पति,
ते सनेह-सावधान रहत डरत ।
साहिब-सेवक-रीति, प्रीति-परिमिति, नीति,
नेमको निबाह एक टेक न टरत ॥ २ ॥
सुक-सनकादि, प्रहलाद-नारदादि कहैं,
रामकी भगति बड़ी बिरति-निरत ।
जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ ! पगनि परत ॥ ३ ॥
छ-मत बिमत, न पुरान मत, एक मत,
नेति-नेति-नेति नित निगम करत ।

औरनिकी कहा चली ? एकै बात भलै भली,
राम-नाम लिये तुलसी हू से तरत ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे रामजी ! आपके स्वभाव, गुण, शीलकी महिमा और प्रभावको श्रीशिवजी, हनूमान्जी, लक्ष्मणजी और भरतजीने ही (तत्त्वसे) जाना है, (इसीसे) उनके हृदयरूपी सुन्दर थामलेमें आपके प्रेमका कल्पवृक्ष सुशोभित हो रहा है, जिसमें परमसुखरूपी सरस फूल-फल फूलते और फलते हैं। (जो भगवान्के गुण-शीलकी महिमा जान लेता है, उसका हृदय भगवत्-प्रेमसे ही भर जाता है; और जिस हृदयमें भगवत्प्रेम भरा है, उसीमें परमानन्द निवास करता है) ॥१॥ आप अपने स्वभावके वश होकर शिवजीको स्वामी, हनूमान्जीको मित्र और लक्ष्मण तथा भरतको अपना भाई मानते हैं और वे सब आपको अपना मालिक मानते हैं, प्रेममें सदा सावधान रहते हैं और डरा करते हैं (कि कहीं प्रेमकी अनन्यता और विशुद्धतामें कमी न आ जाय।) यदि स्वामी और सेवक दोनों इस रीतिसे प्रेम करते रहें, और (प्रेमके) नीति-नियमोंको सदा निबाहते रहें तो उनके (प्रेमकी) टेक कभी टल नहीं सकती और वह सीमाको पहुँच जाती है ॥२॥ शुकदेव, सनकादि, प्रह्लाद और नारद आदि भक्तगण कहते हैं कि परमविरक्त होनेसे ही श्रीरघुनाथ-जीकी महान् (अनन्य विशुद्ध) भक्ति मिलती है (भोगोंसे परम वैराग्य उसीको प्राप्त होता है जो भगवान्को तत्त्वसे जान लेता है, अतएव परमात्माके) ज्ञान बिना भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती; किन्तु वह ज्ञान, हे नाथ ! आपके हाथमें है (ज्ञान किसी साधनसे नहीं होता, यह तो

भगवत्कृपासे प्राप्त होता है), इसी बातको समझकर चतुरलोग आपके चरणोंपर आकर गिरते हैं (सारे साधनोंको छोड़कर आपकी शरणमें आते हैं) ॥३॥ छः शास्त्रोंके मत भिन्न-भिन्न हैं, पुराणोंका भी मत एक-सा नहीं है और वेद भी नित्य 'नेति-नेति' करते रहते हैं। फिर औरोंके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ? (इस अवस्थामें आपकी शरणागतिको छोड़कर आपको तत्त्वसे जाननेके लिये और उपाय ही क्या है ?)। (इसलिये) मुझे तो बस, एक श्रीराम-नामका आश्रय लेना, यही बात अच्छी जान पड़ती है और इसीसे कल्याण हो सकता है, क्योंकि इससे तुलसीदास-सरीखे भी (संसार-सागरसे) तर गये हैं ॥४॥

[२५२]

बाप ! आपने करत मेरी घनी घटि गई ।

लालची लबारकी सुधारिये बारक, बलि,
रावरी भलाई सबहीकी भली भई ॥ १ ॥

रोगबस तनु, कुमनोरथ मलिन मनु,
पर-अपबाद मिथ्या-बाद बानी हई ।

साधनकी ऐसी बिधि, साधन बिना न सिधि
बिगरी बनावै कृपानिधिकी कृपा नई ॥ २ ॥

पतित-पावन, हित आरत-अनाथनिको,
निराधारको अधार, दीनबंधु, दई ।

इन्हमें न एकौ भयो, बूझि न जूझयो न जयो,
ताहिते त्रिताप-तयो, लुनियत बई ॥ ३ ॥

स्वाँग सूधो साधुको, कुचालि कलितें अधिक,
परलोक फीकी मति, लोक-रंग-रई ।
बड़े कुसमाज राज ! आजुलौं जो पाये दिन,
महाराज ! केहू भाँति नाम-ओट लई ॥ ४ ॥
राम ! नामको प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न बिधि निरमई ।
खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसीकी निलजई ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मेरे बापजी ! मैंने अपने ही हाथों अपनी करनी बहुत ही बिगाड़ डाली है, आपकी बलैया लेता हूँ, इस लोभी और झूठेकी बात एक बार तो सुधार दीजिये। क्योंकि जिस-जिसके साथ आपने भलाई की, उसीकी बात बन गयी (दया करके आज मेरी भी बिगड़ी बना दीजिये) ॥१॥ शरीर रोगी है, मन बुरी-बुरी कामनाओंसे मलिन हो रहा है और वाणी दूसरोंकी निन्दा करते और झूठ बोलते-बोलते नष्ट हो गयी है; (जिस तन-मन-वचनसे साधन होते हैं, वे तीनों ही साधनके योग्य नहीं रहे, परन्तु) साधनोंका यह नियम है कि बिना साधे वे सिद्ध नहीं होते । इससे (अब तो) हे कृपानिधे ! आपकी एक कृपा ही ऐसी अनूठी है, जो मेरी बिगड़ी बातको बना देगी । (आपकी कृपासे ही मुझ साधनहीनका सुधार हो सकता है) ॥२॥ आप पापियोंको पवित्र करने-वाले, दुखियों और अनाथोंके हितू, निराधारोंके आधार, दीनोंके बन्धु, और (स्वाभाविक ही) दयालु हैं । किन्तु, मैं तो इनमेंसे एक भी नहीं हूँ

(अहंकारके मारे मैंने अपनेको कभी पतित, दुखी, दीन, अनाथ और निराधार माना ही नहीं। तब फिर आप इनके नाते मुझपर क्यों कृपा करेंगे ?)। न तो मैंने विवेकसे अपने शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह) के ही साथ युद्ध किया और न उनपर विजय ही प्राप्त की। इसीसे मैं दैहिक, भौतिक और दैविक इन तीनों तापोंसे जल रहा हूँ; जैसा बोया वैसा ही काट रहा हूँ (किसे दोष दूँ ?) ॥३॥ मेरा स्वाँग तो सीधे-सादे साधुका-सा है, पर पाप करनेमें मैं कलियुगसे भी बढ़ा हुआ हूँ। मेरी बुद्धिको परलोककी (भगवत्सम्बन्धी) बातें फीकी लगती हैं और वह संसारके रंगमें रँगी हुई है (वह केवल विषय-भोगोंके पाने-न-पानेकी उलझनमें फँसी रहती है)। हे महाराज ! इस बड़े भारी दुष्ट-समाजके साथ आजतक जितने दिन बीते सो तो व्यर्थ चले ही गये, अब किसी-न-किसी तरह आपके नामका सहारा लिया है ॥ ४ ॥ हे श्रीरामजी ! आप भलीभाँति जानते हैं कि आपके नामका कैसा प्रताप है ! (न मालूम मुझ-सरीखे कितने नामके प्रतापसे तर चुके हैं।) मेरे लिये तो सिवा आपके नामके विधाताने दूसरी गति ही नहीं रची है। आपको असन्तुष्ट करनेके लायक मेरे करोड़ों कुकर्म हैं, किन्तु सन्तुष्ट करनेके लायक तो मेरी एक निर्लज्जता ही है। (मेरी निर्लज्जतापर ही प्रसन्न होकर कृपा कीजिये) ॥५॥

[२५३]

राम ! राखिये सरन, राखि आये सब दिन।

बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयालु दूजो,

आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु बिन ? ॥१॥

लाले पाले, पोषे तोषे आलसी-अभागी-अघी,
नाथ ! पै अनाथनिसों भये न उरिन ।
स्वामी समरथ ऐसो, हौं तिहारो जैसो-तैसो
काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥२॥
खीझि-रीझि, बिहँसि-अनख, क्यों हूँ एक बार
'तुलसी तू मेरो', बलि, कहियत किन ?
जाहिं सूल निरमूल, होहिं सुख अनुकूल,
महाराज राम ! रावरी सौं, तेहि छिन ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! मुझे अपनी ही शरणमें रखिये, क्योंकि (मुझ-सरीखोंको) सदासे आप ही अपनाते आये हैं। यह सभी जानते हैं कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें आपके समान दयालु दूसरा कोई नहीं है। हे नाथ ! आर्त शरणागतोंकी रक्षा करनेवाला आपके सिवा दूसरा कौन है ? ॥१॥ आपने ही आलसी, अभागे और पापी लोगोंका लालन-पालन किया, उन्हें पाला-पोसा और प्रसन्न रक्खा; तिसपर भी हे नाथ ! आप उनसे कभी उऋण नहीं हुए। हे स्वामी ! आप तो समर्थ हैं; पर मैं (भला-बुरा) जैसा कुछ हूँ, आपहीका हूँ। कलिकालकी चालें देखकर मेरे हृदयमें बड़ी घिन हो रही है (यह शंका है कि कहीं यह दुष्ट आपके चरणोंकी ओरसे मेरे मनको फेर न दे।) ॥२॥ बलिहारी ! एक बार नाराजीसे अथवा राज़ीसे, मुसकराकर या अनखाकर किसी भी तरह इतना क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसी ! तू मेरा है' ? इतना कह देनेमात्रसे ही, हे महाराज रामचन्द्रजी ! मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ, उसी क्षण मेरा सारा दुःख जड़से नाश हो जायगा और समस्त सुख मेरे अनुकूल हो जायँगे ॥३॥

[२५४]

राम ! रावरो नाम मेरो मातु-पितु है ।
सुजन-सनेही, गुरु-साहिब, सखा-सुहृद,
राम-नाम प्रेम-पन अबिचल बितु है ॥१॥
सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है ।
नामको भरोसो-बल चारिहू फलको फल,
सुमिरिये छाड़ि छल, भलो कृतु है ॥२॥
स्वारथ-साधक, परमारथ-दायक नाम,
राम-नाम सारिखो न और हितु है ।
तुलसी सुभाव कही, साँचिये परैगी सही,
सीतानाथ-नाम नित चितहू को चितु है ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आपका नाम ही मेरा माता-पिता, स्वजन-सम्बन्धी, प्रेमी, गुरु, स्वामी, मित्र और अहैतुक हितकारी है। और आपके नामसे जो मेरा अनन्य प्रेम है, वही मेरा अटल धन है ॥१॥ शिवजीने सौ करोड़ चरित्ररूपी अगाध दधि-सागरको मथकर उससे राम-नामरूपी घी निकाला है। आपके नामका बल-भरोसा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों फलोंका (चरम) फल है। कपटभाव छोड़कर इसीका स्मरण करना चाहिये। यही सर्वोत्तम यज्ञ* है ॥२॥ आपका नाम

---

* गीतामें तो श्रीभगवान्‌ने जप-यज्ञको अपना स्वरूप ही बतलाया है—यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ।

सभी सांसारिक स्वार्थोंका साधनेवाला एवं परमार्थ (मोक्ष) का प्रदान करनेवाला है। श्रीराम-नामके समान हित करनेवाला और कोई भी नहीं है। यह बात तुलसीने स्वभावसे ही कही है, अतएव सचमुच ही इसपर सही पड़ेगी। जानकीरमण श्रीरामका नाम चित्तका भी चित्त है ॥३॥

[२५५]

राम ! रावरो नाम साधु-सुरतरु है ।
सुमिरे त्रिबिध घाम* हरत, पूरत काम,
सकल सुकृत सरसिजको सरु है ॥१॥
लाभहूको लाभ, सुखहूको सुख, सरबस,
पतित-पावन, डरहूको डरु है ।
नीचेहूको ऊँचेहूको, रंकहूको रावहूको
सुलभ, सुखद आपनो-सो घरु है ॥२॥
बेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो,
नाम-प्रेम चारिफलहूको फरु है ।
ऐसे राम-नाम सों न प्रीति, न प्रतीति मन,
मेरे जान, जानिबो सोई नर खरु है ॥३॥
नाम-सो न मातु-पितु, मीत-हित, बंधु-गुरु,
साहिब, सुधी, सुसील, सुधाकरु है ।
नामसों निबाह नेहु, दीनको दयालु ! देहु,
दासतुलसीको, बलि, बड़ो बरु है ॥४॥

---

* घाम=घर्म=ताप। अनेक प्रतियोंमें 'धाम' पाठ है। परन्तु धामका अर्थ 'ज्योति' तक है। परन्तु 'ताप' कदापि नहीं। पाठान्तरकी तरह भी 'धाम' स्वीकार्य नहीं है।

भावार्थ–हे श्रीरामजी ! साधुओंके लिये तो आपका नाम कल्पवृक्ष है। क्योंकि स्मरण करते ही वह तीनों (दैहिक, भौतिक और दैविक) तापों-को हर लेता है और सारी कामनाएँ पूर्ण कर देता है, मनुष्यको पूर्णकाम बना देता है। (वह आपका नाम) समस्त पुण्यरूपी कमलोंका सरोवर है (राम-नामका आश्रय लेनेवालेको सभी पुण्योंका फल मिल जाता है ॥१॥ वह लाभका भी लाभ, सुखका भी सुख है और (भक्तोंका) सर्वस्व है। (उससे बढ़कर सन्तोंका कोई लाभ, सुख या धन नहीं है) वह पतितोंको पावन करनेवाला और (सबको डरानेवाले यमदूतरूपी महा) भयको भी भयभीत करनेवाला है। वह नीच-ऊँच और राव-रंक, सभीके लिये सुलभ है (सभी उसका जप कर सकते हैं)। सभीको सुख देनेवाला है और अपने निजी घरके समान आराम देनेवाला है ॥२॥ वेदोंने, पुराणोंने और शिवजीने भी पुकार-पुकारकर कहा है कि राम-नाममें प्रेम होना ही चारों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) फलोंका फल है। ऐसे श्रीराम-नामपर जिसके मनमें प्रेम और विश्वास नहीं है, मेरी समझमें उस मनुष्यको गधा समझना चाहिये (वह गधेके समान जीवनमें मनुष्यत्वके अहंकारका भार ही ढोता है) ॥३॥ पिता-माता, मित्र-हितू, भाई, गुरु और मालिक इनमेंसे कोई भी श्रीराम-नामके समान नहीं है। वह परम सुशील; सुधाकर (चन्द्रमा) के समान बुद्धिमान् स्वामी है। (शरण लेते ही समस्त ताप हर लेता है और मोक्षरूप अमृत पान कराकर सदाके लिये सुखी कर देता है)। हे दयालु ! मैं बलैया लेता हूँ, इस तुलसीदासको वही महान् बल दीजिये, जिससे आपके नामके साथ इस दीनका प्रेम सदा निभ जाय ॥४॥

[२५६]

कहे बिनु रह्यो न परत, कहे राम ! रस न रहत ।

तुमसे सुसाहिबकी ओट जन खोटो-खरो

कालकी, करमकी कुसाँसति सहत ॥१॥
करत बिचार सार पैयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ ते लहत ?
नाथकी महिमा सुनि, समुझि आपनी ओर,
हेरि हारि कै हहरि हृदय दहत ॥२॥
सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु आप,
माय-बाप तुही साँचो तुलसी कहत ।
मेरी तौ थोरी है, सुधरैगी बिगरियौ, बलि,
राम ! रावरी सौं, रही रावरी चहत ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! कहे बिना तो रहा नहीं जाता और कह देनेपर कुछ रस (मज़ा) नहीं रह जाता। (बात यह है कि) आप-सरीखे श्रेष्ठ स्वामीका आश्रय पाकर भी मैं आपका बुरा या भला सेवक काल और कर्मके कारण असह्य दुःख भोग रहा हूँ ॥१॥ (व्याध-निषाद आदिके बड़प्पनपर) विचार करता हूँ, पर कहीं कुछ भी रहस्य नहीं मिलता कि इन सब लोगोंने कहाँसे बड़प्पन प्राप्त किया ? (सुना जाता है, आपने ही इनको दीन जानकर अपना लिया, जिससे ये सब महान् पूज्य हो गये) आपकी (ऐसी) महिमा सुन-समझकर जब अपनी दशाकी ओर देखता हूँ तो निराश हो जाता हूँ और घबराहटसे हृदय जलने लगता है (दीन और पतितोंको तारनेवाले होकर भी मुझ शरणागत दीनको अब-तक क्यों नहीं अपनाया ? यही सोचकर हृदयमें जलन होने लगती है और इसीसे मनमानी बातें कह बैठता हूँ) ॥२॥ (और कहूँ भी किससे,

क्योंकि) न तो मेरा कोई मित्र है, न सच्चा सेवक है, न सुलक्षणा स्त्री है और न कोई नाथ है। मेरे तो माँ-बाप आप ही हैं, तुलसी यह सच्ची बात कह रहा है। मेरी तो थोड़ी-सी बात है, बिगड़ी होनेपर भी सुधर जायगी: किन्तु, बलिहारी ! मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ, मैं तो आपकी बात ही रखना चाहता हूँ (कहीं आपका पतितपावन और शरणागत-वत्सल बाना न लज जाय) ॥३॥

[२५७]

दीनबन्धु ! दूरि किये दीनको न दूसरी सरन ।
आपको भले हैं सब, आपनेको कोऊ कहूँ,
सबको भलो है राम ! रावरो चरन ॥१॥
पाहन, पसु, पतंग, कोल, भील, निसिचर
काँच ते कृपानिधान किये सुबरन ।
दंडक-पुहुमि पाय परसि पुनीत भई,
उकठे बिटप लागे फूलन-फरन ॥२॥
पतित-पावन नाम बाम हू दाहिनो, देव !
दुनी न दुसह-दुख-दूषन-दरन ।
सीलसिंधु ! तोसों ऊँची-नीचियौ कहत सोभा,
तोसो तुही तुलसीको आरति-हरन ॥३॥

भावार्थ—हे दीनबन्धो ! यदि आपने इस दीनको (अपनी शरणसे) हटा दिया, तो फिर इसे और कहीं शरण न मिलेगी। क्योंकि अपनी

भलाई चाहनेवाले तो प्रायः सभी हैं, किन्तु अपने दासोंका भला करनेवाला कोई बिरला ही है। हे श्रीरामजी! सबका भला करनेवाले तो आपके चरण ही हैं, (आपके चरणोंके आश्रयसे भले-बुरे सभीका कल्याण होता है) ॥१॥ पत्थरकी शिला (अहल्या), पशु (बन्दर, रीछ), पक्षी (जटायु), कोल-भील, राक्षस (विभीषण) आदिको हे कृपानिधान! आपने काँचसे सोना बना दिया (विषयी थे जिनको मुक्त कर दिया)। दण्डक-वनकी भूमि आपके चरणोंका स्पर्श होते ही पवित्र हो गयी और उखड़े हुए सूखे पेड़ फिर फूलने-फलने लगे ॥२॥ आपका पतित-पावन नाम, जो आपसे विमुख हैं उनका भी कल्याण करता है (शत्रुभावसे भजनेवाले भी तर जाते हैं) हे देव! संसारमें असह्य दुःखों और पापोंका नाश करनेवाला आपको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। आप शीलके समुद्र हैं, अतएव आपसे नीची-ऊँची बात कहनेमें भी शोभा ही है (अधिक क्या कहूँ)। तुलसीके दुःख दूर करनेवाले तो बस आप-सरीखे एक आप ही हैं (इसीसे शरण पड़ा हूँ) ॥३॥

[२५८]

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान!
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं।
करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन,
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं ॥१॥
मोसे दोस-कोसको भुवन-कोस दूसरो न,
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं।

गाड़ीके स्वानकी नाईं, माया मोहकी बड़ाई
छिनहिं तजत, छिन भजत बहोरि हौं ॥२॥
बड़ो साईं-द्रोही न बराबरी मेरीको कोऊ,
नाथकी सपथ किये कहत करोरि हौं ।
दूरि कीजै द्वारतें लबार लालची प्रपंची,
सुधा-सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं ॥३॥
राखिये नीके सुधारि, नीचको डारिये मारि,
दुहूँ ओरकी बिचारि, अब न निहोरिहौं ।
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची,
ढील किये नाम-महिमाकी नाव बोरिहौं ॥४॥

भावार्थ—हे कृपानिधान! मैंने जान-पहचानकर भी आपको भुला दिया है और घमण्डके मारे इतना ढीठ हो गया हूँ कि उलटा आपहीपर दोष मढ़ता हूँ (कि आप शीलसिन्धु होकर भी मुझे अपनाते नहीं हैं)। जिससे प्रीति जोड़नेके लिये बड़े-बड़े योगी यत्न किया करते हैं, उससे ज्यों-त्यों करके कुछ प्रीति जुड़ गयी थी, पर मैं अभागा उसे भी तोड़ बैठा ॥१॥ मुझ-सरीखा पापोंका खजाना चौदहों लोकोंमें दूसरा नहीं है,अपनी समझमें मैं खूब ढूँढ़ चुका हूँ। जैसे गाड़ीके पीछे लगा हुआ कुत्ता कभी तो गाड़ीको छोड़कर इधर-उधर भाग जाता है और कभी फिर उसके साथ हो लेता है, वैसे ही मैं क्षणभरमें तो माया-मोहके बड़प्पनको छोड़ बैठता हूँ और दूसरे ही क्षण फिर उसीमें रम जाता हूँ ॥२॥ मैं आपकी करोड़ों शपथ खाकर कह रहा हूँ कि स्वामीके साथ द्रोह करनेवाला मेरी बराबरीका

दूसरा कोई भी नहीं है। इसलिये मुझ झूठे, लालची और ठगको दरवाजेसे हटा दीजिये, नहीं तो मैं अमृत-सरीखा जल शूकरीकी तरह गदला कर डालूँगा (आपका भक्त कहाकर बुरे कर्म करूँगा तो आपके निर्मल यशमें कलङ्क लग जायगा) ॥३॥ (अतएव) या तो मुझे अच्छी तरह सुधारकर (अपनी शरणमें)रख लीजिये,नहीं तो मुझ नीचको मार ही डालिये।बस,अब आप ही इन दोनों बातोंपर विचार कर लीजिये, अब मैं आपका निहोरा न करूँगा। तुलसीने बार-बार लकीर खींचकर सच्ची बात कह दी है। यदि आप भी देरी करेंगे, तो मैं आपके नामकी महिमारूपी नौकाको डुबा दूँगा। (मेरी दुर्दशा देखकर लोग आपके नामका विश्वास छोड़ देंगे) ॥४॥

[२५९]

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहौं, बलि, बेदकी न, लोक कहा कहैगो ?
प्रभुको उदास-भाउ, जनको पाप-प्रभाउ,
दुहूँ भाँति दीनबन्धु ! दीन दुख दहैगो ॥१॥
मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि,
साँसति सहत, परबस को न सहैगो ?
बाँकी बिरुदावली बनैगी पाले ही कृपालु !
अंत मेरो हाल हेरि यौं न मन रहैगो ॥२॥
करमी-धरमी साधु-सेवक, बिरत-रत,
आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो ?
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर-कपूत-कूर,
लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ? ॥३॥

काल पाय फिरत दसा दयालु ! सबहीकी,
तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो ।
बचन-करम-हिये कहौं राम ! सौंह किये,
तुलसी पै नाथके निबाहेई निबहैगो ॥४॥

भावार्थ—यदि आपकी सुधारी हुई मेरी बात मेरे बिगाड़नेसे बिगड़ जायगी तो, मैं तुम्हारी बलैया लेता हूँ, फिर वेदकी तो जाने दीजिये, संसार क्या कहेगा ? (वेदमें कुछ भी लिखा हो, संसार तो यही कहेगा कि तुलसी ही ईश्वर है, क्योंकि उसने रामजीकी बनायी बातको बिगाड़ दिया।) प्रभुकी उदासीनता और मुझ दासके पापोंका प्रभाव, यदि ये दोनों मिल गये तो हे दीनबन्धो ! यह दीन दुःखके मारे जल मरेगा। (मैं तो महापापी हूँ ही, पर आप भी उदासीन हो जायँगे तो फिर मेरी बड़ी ही बुरी गति होगी) ॥१॥ मैंने तो अपनी छातीपर वज्र रख लिया है (दुःख सहनेके लिये तैयार हूँ, परन्तु पाप नहीं छोड़ता) क्योंकि कलियुगने मुझे दबा रक्खा है। इसीसे कष्ट सह रहा हूँ। (मैं ही क्यों) जो भी परतन्त्र होगा, उसे कष्ट सहने ही पड़ेंगे। किन्तु हे कृपालु ! आपको तो अपनी बाँकी विरदावलीके वश होकर मेरी रक्षा करनी ही पड़ेगी। (अभी न सही,) अन्त समय तो मेरा (बुरा) हाल देखकर आपका यह उदासीन भाव रह नहीं सकता (दयालु स्वभावसे मेरा दुःख देखा ही नहीं जायगा, तब दौड़कर बचाना होगा) ॥२॥ कर्मकाण्डी, धर्मात्मा, साधु, सेवक, विरक्त और विषयी जीव ये सब तो अपने-अपने भले कर्मोंके अनुसार कहीं कोई-सा स्थान पा ही जायँगे, परन्तु आपके मुँह फेर लेनेसे (उदासीन हो जानेसे) मुझ-सरीखे कायर, कुपूत, क्रूर, साधनहीन और पतित जीवोंको कौन

आश्रय देगा ? (कोई भी नहीं) ॥३॥ हे दयालो ! काल पाकर सभीकी दशा पलटती है, सभीके दिन फिरते हैं, परन्तु आपको छोड़कर मुझे तो कभी कोई नहीं चाहेगा (आपके आश्रयको छोड़कर मुझे कहीं कोई स्थान नहीं मिलनेका)। हे श्रीरामजी ! आपकी शपथ खाकर वचन, कर्म और मनसे कहता हूँ कि यह तुलसी तो नाथके ही निबाहे निभेगा ॥४॥

[२६०]

साहिब उदास भये दास खास खीस होत
मेरी कहा चली ? हौं बजाय जाय रह्यो हौं ।
लोकमें न ठाउँ, परलोकको भरोसो कौन ?
हौं तो, बलि जाउँ, रामनाम ही ते लह्यो हौं ॥१॥
करम, सुभाउ, काल, काम, कोह, लोभ, मोह
ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं ।
छोरिबेको महाराज, बाँधिबेको कोटि भट,
पाहि प्रभु ! पाहि, तिहुँ ताप-पाप दह्यो हौं ॥२॥
रीझि-बूझि सबकी प्रतीति-प्रीति एही द्वार,
दूधको जर्‍यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं ।
रटत-रटत लर्‍यो, जाति-पाँति-भाँति घर्‍यो,
जूठनिको लालची चहौं न दूध-नह्यो हौं ॥३॥
अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो
नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं ।
तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार,
अपनो सो नाथ हू सों कहि निरबह्यो हौं ॥४॥

भावार्थ—जब मालिक उदासीन हो जाता है तब खास नौकर भी बरबाद हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है? मैं तो डंकेकी चोट दुःखोंमें बहा चला जा रहा हूँ। जब मेरे लिये इस लोकमें ही कहीं ठौर नहीं है, तब परलोकका क्या भरोसा करूँ? हे श्रीरामजी! मैं आपकी बलैया लेता हूँ, मैं तो एक आपके नामहीके हाथ बिक चुका हूँ (मेरा लोक-परलोक तो उसीसे बनेगा) ॥१॥ कर्म, स्वभाव, काल, काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी बड़े-बड़े ग्राहोंने और (साधनहीनतारूपी) घोर दरिद्रताने मुझको बड़े ज़ोरसे पकड़ रक्खा है। हे महाराज! बाँधनेके लिये करोड़ों योद्धा हैं, परन्तु बन्धनसे छुड़ानेके लिये तो केवल एक आप ही हैं। अतएव हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मैं पापरूपी तीनों तापोंसे जल रहा हूँ (अपनी कृपादृष्टिकी सुधा-वृष्टिसे इन तापोंको शान्त कीजिये) ॥२॥ हे प्रभो! (दूसरे किसके पास जाऊँ?) सबकी रीझ-बूझ और प्रीति-विश्वास एक आपके ही द्वारपर है। (आपके ही दिये हुए अधिकारसे देवतागण आपके ही खजानेसे अपने सेवकोंको कुछ दिया करते हैं, परन्तु वे मुक्ति नहीं दे सकते। उन सबकी पूजा भी आपकी ही पूजा होती है, क्योंकि सबके मूल आप ही हैं)। मैं तो दूधका जला मट्ठा भी फूँक-फूँककर पीता हूँ। भाव यह कि आपको छोड़कर दूसरोंको भजनेसे कभी परमसुख और दिव्य-शान्ति नहीं मिली, इसलिये बहुत सावधान होकर चलता हूँ। सुखके लिये देवताओंको पुकारते-पुकारते हार गया, और जाति-पाँति तथा चाल-चलन सभीसे हाथ धो बैठा। इसलिये अब मैं केवल आपके जूठनका ही लालची हूँ। मैं दूधसे नहीं नहाना चाहता। भाव, मुझे स्वर्गके ऐश्वर्यकी इच्छा नहीं है, मैं तो केवल आपके

चरणोंमें पड़े रहना चाहता हूँ ॥३॥ मैं और कहीं (दूसरोंकी शरण लेकर) सुखमार्गपर अच्छी चाल चलकर अपना कल्याण नहीं चाहता हूँ। और यहाँ (आपके शरणमें) मैं आदर न पाकर भी अच्छी तरह हूँ (आपके अनोखे विरदके भरोसे निर्भय और निश्चिन्त पड़ा हूँ)। तुलसीने समझकर अपने मनको बार-बार समझा दिया है और वह अपने नाथसे भी कहकर निश्चिन्त हो गया है कि उसका निर्वाह आपके ही हाथमें है ॥४॥

[२६१]

मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कलप लौं
राम! रावरे बनाये बनै पल पाउ मैं।
निपट सयाने हौ कृपानिधान! कहा कहौं?
लिये बेर बदलि अमोल मनि आउ मैं ॥१॥
मानस मलीन, करतब कलिमल पीन
जीह हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ-बाउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलिहू भलो,
बाल-दसा हू न खेल्यो खेलत सुदाउ मैं ॥२॥
देखा-देखी दंभ तें कि संग तें भई भलाई,
प्रकटि जनाई, कियो दुरित-दुराउ मैं।
राग रोष -दोष/द्वेष पोपे, गोगन समेत मन,
इनकी भगति कीन्ही इनही को भाउ मैं ॥३॥
आगिली-पाछिली, अबहूँ की अनुमान ही तें
बूझियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ मैं।

जग कहै रामकी प्रतीति-प्रीति तुलसी हू,
झूठे-साँचे आसरो साहब रघुराउ मैं ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! मेरी सद्गति मेरे बनाये (साधनोंके द्वारा) तो करोड़ों कल्पतक भी न होगी; परन्तु आप करना चाहें तो पाव पलमें ही हो सकती है। हे कृपानिधान! मैं क्या कहूँ, आप तो स्वयं परम चतुर हैं; मैंने अनमोल मणिके समान आयुके बदलेमें (विषयरूप) बेर ले लिये। (जिस मनुष्य-जीवनको आपकी प्राप्तिमें लगाना चाहिये था उसे विषयोंमें लगाकर व्यर्थ खो दिया) ॥१॥ (जिससे मेरा) मन मलिन हो गया तथा कलियुगके कारण (कु) कर्म और भी पुष्ट हो गये, नित्य नये पाप बढ़ते गये। जीभसे भी आपका नाम नहीं जपा, सदा आयँ-बायँ ही बकता रहा। बुरे-बुरे मार्गोंपर कुचालें ही चलता रहा। भूलकर भी मुझसे कभी किसीका भला नहीं हुआ। अरे! बचपनमें खेलते समय भी कभी अच्छा दाव हाथ नहीं लगा (भगवत्-सम्बन्धी खेल नहीं खेला) ॥२॥ हाँ, किसीकी देखा-देखी (भक्तिका स्वाँग दिखलानेके लिये) दम्भसे या सत्सङ्गके प्रभावसे कभी कोई अच्छा काम बन गया तो उसे ढिंढोरा पीटता हुआ कहता फिरा, और (मनसे चाह-चाहकर) जो पाप किये उन्हें छिपाता रहा। राग, द्वेष और क्रोधको तथा इन्द्रियोंसमेत मनको सदा पालता-पोषता रहा। सदा राग, द्वेष और क्रोधके तथा मन-इन्द्रियोंके ही वशमें रहा। इन्हींकी भक्ति की और इन्हींसे प्रेम किया ॥३॥ मैंने अपनी बीती हुई, वर्तमान तथा भविष्यकी दशाका अनुमान करके यह समझ लिया है कि मैंने कभी कोई भला काम नहीं किया। किन्तु संसार कह रहा है कि—'तुलसी रामजीका है' और मुझे भी आपपर विश्वास और

प्रेम है। अब चाहे झूठ हो या सच, हे स्वामी श्रीरघुनाथजी ! मैं तो आपके ही आसरे पड़ा हूँ ॥४॥

[२६२]

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता ।
प्रभुकी बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभुकी पुनीतता, आपनी पाप-पीनता ॥१॥
दुहू ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामी-समीचीनता ।
नाथ-गुनगाथ गाये, हाथ जोरि माथ नाये,
नीचऊ निवाजे प्रीति-रीतिकी प्रबीनता ॥२॥
एही दरबार है गरब तें सरब-हानि,
लाभ जोग-छेमको गरीबी-मिसकीनता ।
मोटो दसकंध सो न दूबरो बिभीषन सो,
बूझि परी रावरेकी प्रेम-पराधीनता ॥३॥
यहाँको सयानप अयानप सहस सम,
सूधौ सतभाय कहे मिटति मलीनता ।
गीध-सिला-सबरीकी सुधि सब दिन किये
होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता ॥४॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता ।

करुनानिधान ! बरदान तुलसी चहत,
सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता ॥५॥

भावार्थ—हे नाथ ! कुछ कहा भी नहीं जाता और कहे बिना रहा भी नहीं जाता। आपकी बलैया लेता हूँ (यद्यपि) बड़ोंके सामने अपनी गरीबी सुनानेमें बहुत सुख मिलता है। (तथापि कहाँ तो) प्रभुका महान् बड़प्पन और कहाँ मेरी छोटी-सी क्षुद्रता; कहाँ तो प्रभुकी पवित्रता और कहाँ मेरे पापोंकी अधिकता ॥१॥ इन दोनों ओरकी बातोंपर विचार करके मन संकोचके मारे सहम जाता है (कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं होती, पैर पीछे पड़ने लगते हैं), परन्तु स्वामीकी सुन्दर साधुता (शरणागत कैसा भी दीन-हीन-मलिन हो, आप उसको आदरके साथ अपना ही लेते हैं) को सुनकर यह मन फिर सम्मुख जाता है। हे नाथ ! आपके गुणोंकी गाथाओंको गानेसे और हाथ जोड़कर मस्तक नवानेसे आपने नीचोंको भी निहाल कर दिया है (यह आपके प्रेमकी रीतिकी चतुरता है) ॥२॥ इस दरबारमें गर्वसे सर्वनाश हो जाता है और ग़रीबी एवं नम्रतासे ही योग-क्षेमकी प्राप्ति होती है। रावण-सरीखा तो कोई प्रतापी नहीं था, और विभीषणके समान कोई दीन-दुर्बल नहीं था। परन्तु इस प्रसंगमें आपकी प्रेमकी पराधीनता ही (स्पष्ट) समझमें आती है। (शरणागत दीन विभीषणको लङ्काका राज्य और अपनी अनन्य भक्तिका दान कर दिया तथा रावणका सर्वनाश कर डाला) ॥३॥ यहाँ, अर्थात् आपके दरबारमें की हुई चतुरता हज़ारों मूर्खताके समान है। यहाँ तो सीधे-सादे सच्चे भावसे अपना दोष स्वीकार कर लेनेसे ही सारी मलिनता मिट जाती है। यदि तू

प्रतिदिन जटायु, अहल्या और शबरीकी (स्थितिको) याद किये रहेगा तो स्वामीके प्रति तेरा प्रेम कभी कम नहीं होगा। (वे बेचारे सरल, अहंकारहीन शरणागत थे, इससे नाथने उन्हें सहज ही अपनाकर कृतार्थ कर दिया) ॥४॥ आपका नाम कल्पवृक्षकी भाँति समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देता है। नामका स्मरण करते ही कलियुगके पाप और कपट क्षीण हो जाते हैं। हे करुणानिधान! तुलसी यही वरदान चाहता है कि वह सीतापति श्रीरामजीकी भक्ति-रूपी गंगाजीके जलमें सदा मछलीकी तरह डूबा रहे ॥५॥

[२६३]

नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन-जीयकी।
रावरो भरोसो नाह कै सु-प्रेम-नेम लियो
रुचिर रहनि रुचि मति गति तीयकी ॥१॥
कुकृत-सुकृत बस सब ही सों संग परयो,
परखी पराई गति, आपने हूँ कीयकी।
मेरे भलेको गोसाईं! पोचको, न सोच-संक
हौंहूँ किये कहौं सौंह साँची सीय-पीयकी ॥२॥
ग्यानहू-गिराके स्वामी, बाहर-अंतरजामी,
यहाँ क्यों दुरैगी बात मुखकी औ हीयकी?
तुलसी तिहारो, तुमहीं पै तुलसीके हित,
राखि कहौं हौं तो जो पै ह्वैहौं माखी घीयकी ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ! इस अपने दासके मनकी बात आप ठीक-ठीक समझ लीजिये। मेरी बुद्धि-रूपी सुन्दर (पतिव्रता) स्त्रीने आपके भरोसेको

अपना स्वामी मानकर उसीके साथ विशुद्ध प्रेम करनेका नियम लिया है और सुन्दर आचरणोंमें उसकी रुचि है ॥ १ ॥ पाप और पुण्यके वश होनेके कारण मुझे सभीके साथ रहना पड़ा, इसमें मैं अपनी और परायी दोनोंहीकी चालोंको परख चुका हूँ। हे नाथ! मुझे अपनी भलाई या बुराईकी न तो कोई चिन्ता है, न डर है। (आपके शरण होनेपर भी यदि भले-बुरेकी चिन्ता लगी रही या भय बना रहा तो वह शरणागति ही कैसी? स्वामीके शरण होते ही मैं निश्चिन्त और निर्भय हो गया हूँ।) यह मैं श्रीसीतानाथजीकी शपथ खाकर सच-सच कह रहा हूँ ॥२॥ (बनावटी बात कहूँगा तो वह चलेगी ही नहीं, क्योंकि) आप ज्ञान और वाणीके स्वामी हैं। बाहर और भीतर दोनोंकी बात जाननेवाले हैं। आपके सामने मुँहकी और हृदयकी बात कैसे छिप सकती है? तुलसी आपका है और आप तुलसीका हित करनेवाले हैं। इसमें मैं यदि (कुछ भी कपट) रखकर कहता होऊँ तो मैं घीकी मक्खी हो जाऊँ। भाव, जैसे मक्खी घीमें गिरकर तुरन्त मर जाती है, उसी प्रकार मेरा भी सर्वनाश हो जाय ॥३॥

[२६४]

मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहि करि सो।
चारिहू बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ
तेरो तिहु काल कहु को है हितू हरि-सो ॥१॥
नये-नये नेह अनुभये देह-गेह बसि,
परखे प्रपंची प्रेम, परत उघरि सो।
सुहृद-समाज दगाबाजिहीको सौदा-सूत,
जब जाको काज तब मिलै पाँय परि सो ॥२॥

बिबुध सयाने, पहिचाने कैधौं नाहीं नीके,
देत एक गुन, लेत कोटि गुन भरि सो।
करम-धरम श्रम-फल रघुबर बिनु,
राखको सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो ॥३॥
आदि-अंत-बीच भलो, भलो करै सबहीको
जाको जस लोक-बेद रह्यो है बगरि-सो।
सीतापति सारिखो न साहिब सील-निधान,
कैसे कल परै सठ! बैठो सो बिसरि-सो ॥४॥
जीवको जीवन-प्रान, प्रानको परम हित
प्रीतम, पुनीतकृत नीचन, निदरि सो।
तुलसी! तोको कृपालु जो कियो कोसलपालु,
चित्रकूटको चरित्र चेतु चित करि सो ॥५॥

भावार्थ—अरे मन! एक बार तू मेरी बात सुन ले। फिर तुझे जो अच्छा लगे सो करना। तू अपने चारों नेत्रों (दो बाहरके और मन-बुद्धिरूप दो भीतरके) से देखकर बता कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें भगवान्‌के समान तेरा हित करनेवाला कहीं कोई है?॥१॥ शरीर-रूपी घरमें रहकर तूने (अनेक योनियोंमें) नये-नये (सम्बन्धियोंके) प्रेमका अनुभव किया और उनके कपट-भरे प्रेमको भी परख लिया। अन्तमें सबके प्रेमका भेद खुल गया। (जगत्‌के इन विषय-जनित सम्बन्धी) मित्रोंका समाज क्या है! यह दगाबाजीका सौदासूत (लेन-देनका व्यवहार) है। जब जिसका काम (स्वार्थ) होता है तब वह पैरोंपर गिरने लगता है (परन्तु काम निकल

जानेपर कोई बात भी नहीं पूछता।) ॥२॥ देवता भी बड़े चतुर हैं, तूने उनको भलीभाँति पहचाना है या नहीं? वे पहले करोड़गुणा लेते हैं तब कहीं एकगुणा देते हैं। अब रहे कर्म-धर्म, सो वे भी श्रीरामके (आधार) बिना केवल परिश्रममात्र हैं। (जो भगवान्‌को छोड़कर, ईश्वरकी परवा न कर केवल अपने सत्कर्मोंपर विश्वास करते हैं, उनके वे सत्कर्म ठहर ही नहीं सकते) उनका करना तो राखमें हवन करने या ऊसर जमीनपर पानी बरसनेके समान (निष्फल) है ॥३॥ जो आदिमें, मध्यमें और अन्तमें भले हैं और सभीका सदा कल्याण करते हैं, तथा जिनका यश लोक और वेदमें सर्वत्र फैल रहा है ऐसे श्रीसीतानाथ रामचन्द्रजीके समान शीलनिधान स्वामी दूसरा और कोई नहीं है। अरे दुष्ट! तू उसे भूला-सा बैठा है, फिर तुझे कैसे कल पड़ रहा है ॥४॥ अरे! जो जीवका जीवन, प्राणोंका परम हितू, अत्यन्त प्रिय और नीचोंको पवित्र करनेवाला है, तू उसका निरादर कर रहा है। तुलसी! कोशलपति कृपालु श्रीराम-जीने तेरे लिये चित्रकूटमें जो लीला रची थी, (घोड़ोंपर सवार दो सुन्दर राजपूत वीरोंके वेशमें साक्षात् दर्शन दिये थे) उसे चित्तमें स्मरण कर ॥५॥

[२६५]

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं 'जन हौं सिय-पीको'।
केहि अभाग जान्यो नहीं, जो न होइ नाथ सों नातो-नेह न नीको ॥१॥
जल चाहत पावक लहौं, बिष होत अमीको।
कलि-कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहि कछु फहम न तरनि तमीको॥२॥
जानि अंध अंजन कहै बन-बाघिनी-घीको।
सुनि उपचार बिकारको सुबिचार करौं जब, तब बुधि बल हरै हीको ॥३॥

प्रभु सों कहत सकुचात हौं, परौं जनि फिरि फीको ।
निकट बोलि, बलि, बरजिये, परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़ जीको॥४॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मैं शरीरको पवित्र रखता हूँ, मनमें भी (आपके प्रेमके लिये) रुचि है और मुँहसे भी कहता हूँ कि मैं श्रीसीतानाथजीका सेवक हूँ; किन्तु समझमें नहीं आता कि किस दुर्भाग्यके कारण नाथके साथ मेरा सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध और प्रेम नहीं होता ॥१॥ मैं पानी चाहता हूँ तो आग मिलती है और इसी प्रकार अमृतका जहर बन जाता है (शान्तिके बदले अशान्तिकी जलन मिलती है और अमृतरूपी सत्कर्म, अभिमानरूपी विष पैदा कर देते हैं।) सन्तोंने कलियुगकी जो कुटिल चालें कही हैं वे सब ठीक हैं। मुझे सूर्य और रात्रिका कुछ भी ज्ञान नहीं है। (अर्थात् मैं ज्ञान और अज्ञानको यथार्थरूपसे नहीं पहचान सकता) ॥२॥ कलियुग मुझे अन्धा समझकर वनकी सिंहनीके घीका अञ्जन लगानेको कहता है, जब मैं यह विकार-भरा उपचार सुनकर उसपर विचार करता हूँ कि मुझे उसका घी कैसे मिले ? (अज्ञानरूपी वनमें वासनारूपी सिंहनी रहती है। विषय उसका घी है। वह तो समीप जाते ही खा जायगी। विषयोंमें फँसे हुए जीवको ज्ञानरूपी नेत्र कैसे मिल सकते हैं ?) तब वह मेरे हृदयके बुद्धि-बलको हर लेता है॥३॥ (बुद्धि-बलके नष्ट हो जानेसे मुझे कलियुगका बताया हुआ उपचार यानी विषय-भोग अच्छा लगता है और मैं उसीमें लग जाता हूँ। इसी विघ्नके कारण मैं आपके साथ सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध और प्रेम नहीं कर पाता) आपसे कुछ कहना है, पर उसे कहते संकोच हो रहा है कि कहीं मेरी बात फिर फीकी न पड़ जाय (खाली न चली जाय) इससे मैं आपकी बलैया लेता हूँ, (बात यह है

कि जरा अपने) पास बुलाकर इसे (कलियुगको) रोक दीजिये, जिससे यह तुलसी-सरीखे जड़ जीवोंका खयाल छोड़ दे ॥४॥

[२६६]

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु ! त्यों त्यों दूरि पर्यो हौं ।
तुम चहुँ जुग रस एक राम ! हौं हूँ रावरो, जदपि अघ अवगुननि भर्यो हौं ॥१॥
बीच पाइ एहि नीच बीच ही छरनि छर्यो हौं ।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृपतें भिखारि करि, सुमतितें कुमति कर्यो हौं ॥२॥
अगनित गिरि-कानन फिर्यो, बिनु आगि जर्यो हौं ।
चित्रकूट गये हौं लखि कलिकी कुचालि सब, अब अपडरनि डर्यो हौं ॥३॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं, हाथ जोरि खर्यो हौं ।
चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि प्रभु सों गुदरि निबर्यो हौं ॥४॥

भावार्थ—हे कृपानिधान ! ज्यों-ज्यों मैं आपके निकट होना चाहता हूँ त्यों-ही-त्यों दूर होता चला जाता हूँ। हे रामजी ! आप चारों युगोंमें सदा एकरस हैं और मैं भी आपका रहा आया हूँ, यद्यपि मैं पापों और अवगुणोंसे भरा हूँ ॥१॥ आपसे अलग रहनेका मौका पाकर इस नीच कलियुगने मुझे बीचहीमें छलोंसे छल लिया (अज्ञानसे ही इसको जीवत्व प्राप्त हो गया।) मैं सुवर्ण था, पर इसने कुवर्ण कर दिया। (नित्य आनन्दघनरूपसे दुःखग्रस्त जीवरूपमें परिणत कर दिया।) राजासे रंक बना डाला और ज्ञानीसे अज्ञानी कर डाला ॥२॥ तबसे मैं (अनेक योनियोंमें) अगणित पहाड़ों और जंगलोंमें भटकता रहा और बिना ही आगके (अज्ञानजनित दुःख-दावानलसे) जलता रहा । परन्तु जब मैं चित्रकूट गया, (और वहाँ आपका प्रेमपूर्वक भजन करने

लगा) तब (आपकी कृपासे) मैं इस कलिकी सारी कुचालें तो समझ गया (तथापि) अब मैं अपने ही डरसे डर रहा हूँ ॥३॥ मैं हाथ जोड़कर प्रभुके सामने खड़ा हुआ मस्तक नवाकर कह रहा हूँ कि पहचाना हुआ चोर फिर जीवको (प्रायः) मार ही डालता है; (कलियुग पहचाना हुआ चोर है, वह दाँव देख रहा है) इस बातको सुनकर तुलसी अपने स्वामीसे विनय करके निश्चिन्त हो चुका (अब आप स्वयं ही उचित समझकर उपाय कीजिये) ॥४॥

[२६७]

पन करि हौं हठि आजुतें रामद्वार पर्‌यो हौं ।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनमभरि, प्रभुकी सौं करि निबर्‌यो हौं ।१।
दै दै धक्का जमभट थके, टारे न टर्‌यो हौं ।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि जग, नरकनिदरि निकर्‌यो हौं ।२।
हौं मचला लै छाड़िहौं, जेहि लागि अर्‌यो हौं ।
तुम दयालु, बनिहै दिये, बलि, बिलँब न कीजिये, जात गलानि गर्‌यो हौं ।३।
प्रगट कहत जो सकुचिये, अपराध-भर्‌यो हौं ।
तौ मनमें अपनाइये, तुलसीहि कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्‌यो हौं ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आजसे मैं सत्याग्रह करनेकी प्रतिज्ञा करके आपके द्वारपर पड़ गया हूँ; जबतक आप यह न कहेंगे कि 'तू मेरा है' तबतक मैं यहाँसे जीवनभर नहीं उठूँगा, यह मैं आपकी शपथ खाकर कह चुका हूँ ॥१॥ (यह न समझियेगा कि पुलिसके धक्के खाकर मैं उठ जाऊँगा) यमदूत मुझे धक्के मार-मारकर थक गये, मुझे ज़बरदस्ती

नरकके द्वारसे हटाना चाहा, पर मैं वहाँसे उनके हटाये हटा ही नहीं (इतने अधिक पाप किये कि अनेक जीवन नरकमें ही बीते!)। संसारमें बार-बार जन्म लेकर (माताके) पेटकी असह्य पीड़ाको सहा, तब कहीं नरकका निरादरकर वहाँसे निकला हूँ ॥२॥ जिस चीजके लिये मचल गया हूँ और अड़ बैठा हूँ उसे लेकर ही छोड़ूँगा, क्योंकि आप दयालु हैं, (मेरा अड़ना देखकर अन्तमें) आपको वह चीज देनी ही पड़ेगी। मैं आपकी बलैया लेता हूँ (जब देनी ही है, तब तुरन्त दे डालिये) देर न कीजिये। क्योंकि मैं ग्लानिके मारे गला जाता हूँ। (लोग कहेंगे कि ऐसे दयालु स्वामीके द्वारपर धरना दिये इतने दिन बीत गये, इसलिये तुरन्त इतना कह दीजिये कि 'तुलसी मेरा है।' बस, इतना सुनते ही मैं धरना त्याग दूँगा) ॥३॥ मैं अपराधोंसे भरा हूँ, इस कारणसे यदि आपको सबके सामने प्रकटमें कहते संकोच होता है तो कृपाकर मनमें ही तुलसीको अपना लीजिये, क्योंकि मैं कलिको देखकर बहुत घबरा गया हूँ ॥४॥

[२६८]

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै ।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो, तेहि सहज नाथ सों नेह छाड़ि छल करिहै १
सुतकी प्रीति, प्रतीति मीतकी, नृप ज्यों डर डरिहै ।
अपनो सो स्वारथ स्वामिसों, चहुँ बिधि चातक ज्यों एकटेकते नहिं टरिहै २
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै ।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित, कलि-कुचालि परिहरिहै ३

प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै ।
तुलसीदास भयो रामको, बिस्वास, प्रेम लखि आनँद उमगि उर भरिहै ४

भावार्थ–जब मेरा मन (आपकी ओरको) फिर जायगा, तभी मैं समझूँगा कि आपने मुझे अपनालिया। जब यह मन, जिस सहज स्वभावसे ही विषयोंमें लग रहा है, उसी प्रकार कपट छोड़कर आपके साथ प्रेम करेगा (जबतक ऐसा नहीं होता तबतक मैं कैसे समझूँ कि मुझको आपने अपना दास मान लिया) ॥१॥ जैसे मेरा वह मन पुत्रसे प्रेम करता है, मित्रपर विश्वास करता है और राज-भयसे डरता है, वैसे ही जब वह अपना सब स्वार्थ केवल स्वामीसे ही रक्खेगा और चारों ओरसे चातककी तरह अपनी अनन्य टेकसे नहीं टलेगा (एक प्रभुपर ही निर्भर करेगा) ॥२॥ अत्यन्त आदर पानेपर जब उसे हर्ष न होगा, निरादर होनेपर वह जलकर न मरेगा और हानि-लाभ, सुख-दुःख,भलाई-बुराई सबमें चित्तको सम रक्खेगा और कलिकालकी कुचालोंको(सर्वथा) छोड़ देगा (तभी मानूँगा कि नाथ मुझे अपना रहे हैं) ॥३॥ और जब मेरा मन प्रभुका गुणानुवाद सुनते ही हर्षमें विह्वल हो जायगा, मेरे नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा बहने लगेगी तभी तुलसीदासको यह विश्वास होगा कि वह श्रीरामजीका हो गया। तब उस (अनन्य) प्रेमको देखकर हृदयमें आनन्द उमड़कर भर जायगा। (हे प्रभो ! शीघ्र ही अपनाकर मेरी ऐसी दशा कर दीजिये) ॥४॥

[२६९]

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीनको ?
सुख जीवन ज्यों जीवको, मनि ज्यों फनिको हित,ज्यों धन लोभ-लीनको

ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीनको ।
त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर ! पावन प्रेम पीनको ॥२॥
मनसाको दाता कहैं श्रुति प्रभु प्रबीनको ।
तुलसिदासको भावतो, बलि जाउँ दयानिधि ! दीजै दान दीनको ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! मुझे क्या कभी आप ऐसे प्यारे लगेंगे, जैसा मछलीको जल प्यारा लगता है, जीवको सुखमय जीवन प्यारा लगता है, साँपको मणि प्रिय लगती है और अत्यन्त लोभीको धन प्यारा लगता है ? ॥१॥ अथवा जैसे नवयुवक नायकको स्वभावसे ही नवयुवती चतुरा नायिका प्यारी लगती है,वैसे ही हे करुणाकी खानि ! मेरे मनमें केवल आपके प्रति पवित्र और अनन्य प्रेमकी ही एक लालसा उत्पन्न कर दीजिये ॥२॥ वेद कहते हैं कि प्रभु मनमानी वस्तु देनेवाले हैं और बड़े ही चतुर हैं (बिना ही कहे मनकी बात जानकर उसे पूरी कर देते हैं) । हे दयानिधे ! मैं आपकी बलैया लेता हूँ, इस दीन तुलसीदासको भी उसकी मनचाही वस्तुका दान दे दीजिये ॥३॥

[२७०]

कबहुँ कृपा करि रघुबीर ! मोहू चितैहो ।
भलो-बुरो जनआपनो,जिय जानिदयानिधि!,अवगुनअमित बितैहो॥१॥
जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो ।
हौं सनाथ ह्वैहौ सही, तुमहू अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहो ॥२॥
बिनय करौं अपभयहु तें, तुम्ह परम हितै हो ।
तुलसिदास कासों कहै, तुमही सब मेरे, प्रभु-गुरु, मातु-पितै हो ॥३॥

भावार्थ—हे रघुवीर ! कभी कृपाकर मेरी ओर भी देखेंगे ? हे दयानिधान ! 'भला-बुरा जो कुछ भी हूँ, आपका दास हूँ', अपने मनमें इस बातको समझकर क्या मेरे अपार अवगुणोंका अन्त कर देंगे ? (अपनी दयासे मेरे सब पापोंका नाशकर मुझे अपनालेंगे ?) ॥१॥ (अबसे पूर्व) प्रत्येक जन्ममें यह मन मुझे जीतता चला आया है (मैं इससे हारकर विषयोंमें फँसता रहा हूँ), इस बार क्या आप मुझे इससे जिता देंगे ? (क्या यह मेरे वश होकर केवल आपके चरणोंमें लग जायगा ?) (तब) मैं तो सनाथ हो ही जाऊँगा किन्तु आप भी यदि मेरी क्षुद्रतासे नहीं डरेंगे, तो 'अनाथ-पति' पुकारे जाने लगेंगे (मेरी नीचतापर ध्यान न देकर मुझे अपनालेंगे तो आपका अनाथ-नाथ विरद भी सार्थक हो जायगा) ॥२॥ मैं अपने ही डरके मारे आपसे यों विनय कर रहा हूँ । आप तो मेरे परम हितू हैं । (परन्तु नाथ !) यह तुलसीदास अपना दुःख और किसे सुनाने जाय ? क्योंकि मेरे तो मालिक, गुरु, माता, पिता आदि सब कुछ केवल आप ही हैं ॥३॥

[२७१]

जैसो हौं तैसो राम रावरो जन, जनि परिहरिये ।
कृपासिंधु, कोसलधनी ! सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिये ॥१॥
हौं तौ बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिये ।
तुम सुधारि आये सदा सबकी सबही बिधि, अब मेरियो सुधरिये ॥२॥
जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत इहि डर डरिये ।
कपि-केवट कीन्हे सखा जेहि सील, सरल चित, तेहि सुभाउ अनुसरिये ॥३॥

अपराधी तउ आपनो, तुलसी न बिसरिये।
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहु बिलोचन पीर होत हित करिये ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! मैं (भला-बुरा) कैसा भी हूँ, पर हूँ तो आपका दास ही,इससे मुझे त्यागिये नहीं। हे कोसलनाथ! आप कृपाके समुद्र और शरणागतोंका पालन करनेवाले हैं। अपनी इस शरणागत-वत्सलताकी रीतिपर ही चलिये ॥१॥ मैं तो (काम, क्रोध आदि) दूसरोंके द्वारा पहले ही बिगाड़ा हुआ हूँ, इस बिगड़े हुएको (शरणमें न रखकर और) न बिगाड़िये। आप तो सदा ही सबकी सब तरहसे सुधारते आये हैं, अब मेरी भी सुधार दीजिये ॥२॥ मुझे अपनानेमें जगत् आपकी हँसी करेगा, आप इस डरसे क्यों डर रहे हैं ? (आपका तो सदासे यह बाना ही है।) आपने अपने जिस शील और सरल चित्तसे बन्दरों और केवटको अपना मित्र बनाया था, मेरे साथ भी उसी स्वभावके अनुसार बर्ताव कीजिये ॥३॥ यद्यपि मैं अपराधी हूँ, पर हूँ तो आपका ही। इसलिये तुलसीको आप न भुलाइये। (अपना) टूटा हुआ भी हाथ गले बँध जाता है और फूटी हुई आँखमें भी जब दर्द होता है, तब उसके अच्छे करानेकी चेष्टा की ही जाती है। (इसी प्रकार मैं भी यद्यपि टूटी बाँह और फूटी आँखके समान किसी कामका नहीं हूँ तथापि आपका ही हूँ, इसलिये आप मुझे कैसे छोड़ सकते हैं ?) ॥४॥

[२७२]

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम! बिनु रावरे लोकहु परलोकहु कोउ न कहूँ हितु मेरो ।१।

अगुन-अलायक-आलसी जानि अधम/अधनु अनेरो ।
स्वारथके साथिन्ह तज्यो तिजराको-सो टोटक, औचट उलटि न हेरो ।२।
भगतिहीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।
देवनिहू देव ! परिहर्‌यो, अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो ।३।
नामकी ओट पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो ।
जगत-बिदित बात ह्वै परी, समुझिये धौं अपने, लोक कि बेद बड़ेरो ।४।
ह्वैहै जब-तब तुम्हहिं तें तुलसीको भलेरो ।
दिन-हू-दिन देव!/दीन बिगरि है, बलि जाउँ, बिलंब किये, अपनाइये सबेरो ।५।

भावार्थ–हे श्रीरामजी ! आप मुझपर मन मैला न कीजिये, मेरी ओरसे अपनी (कृपाकी) नजर न फिराइये । (मुझको दोषी समझकर न तो क्रोध कीजिये और न अपनी कृपादृष्टि ही हटाइये) हे नाथ ! सुनिये, इस लोक और परलोकमें आपको छोड़कर मेरा कल्याण करनेवाला कोई दूसरा नहीं है ॥१॥ मुझे गुणहीन, नालायक, आलसी, नीच अथवा दरिद्र और निकम्मा समझकर (जगत्‌के) स्वार्थके संगियोंने तिजारीके टोटकेकी तरह छोड़ दिया और फिर भूलकर भी पलटकर मुझे नहीं देखा । (स्वार्थ छूटते ही ऐसा छोड़ दिया कि फिर कभी यादतक नहीं किया) ॥२॥ मुझे भक्तिहीन, वेदोक्त मार्गसे बाहर एवं कलियुगके पापोंसे घिरा हुआ देखकर, हे नाथ ! देवताओंने भी छोड़ दिया । इसमें उनका कोई अन्याय भी नहीं है, क्योंकि मैं सभीका अपराधी हूँ ॥३॥ मैं तो बस, आपके नामकी ओट लेकर पेट भर रहा हूँ, इतनेपर भी आपका दास कहलाता हूँ और यह बात सारा संसार जान गया है । अब आप ही

विचार कीजिये कि संसार बड़ा है या वेद ? (वेदोंकी विधिको देखते तो मैं आपका दास नहीं हूँ, परन्तु जब संसार मुझको आपका दास मानता और कहता है, तब आपको भी यही स्वीकार कर लेना चाहिये ।) ॥४॥ तुलसीका भला तो जब कभी होगा तब आपके ही द्वारा होगा । (आखिर जब आपको मेरा कल्याण करना ही पड़ेगा तो शीघ्र ही कर देना उत्तम है) मैं आपकी बलैया लेता हूँ, यदि आप देर करेंगे, तो यह गरीब दिन-पर-दिन बिगड़ता ही जायगा । (तब सुधारनेमें भी अधिक कष्ट होगा) इसलिये मुझे शीघ्र ही अपना लीजिये ॥५॥

[२७३]

तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे ?
दीनबंधु ! सेवक-सखा, आरत अनाथपर सहज छोह केहि केरे ॥१॥
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि, बिनु बेरे ।
कृपा-कोप-सतिभायहू, धोखेहु-तिरछेहू, राम ! तिहारेहि हेरे ॥२॥
जो चितवनि सौंधी लगै, चितइये सबेरे ।
तुलसिदास अपनाइये, कीजै न ढील, अब जिवन-अवधि अति नेरे ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ ! आपको छोड़कर मैं और किससे कहूँ ? मेरा हितू और कौन है ? हे दीनबन्धो ! (आपके सिवा) सेवकपर, मित्रपर, दुखियापर और अनाथपर स्वभावसे ही (और) किसकी कृपा है? ॥१॥ (आपकी नजरसे ही) बहुत-से पापी इस संसार-सागरसे बिना ही नाव और बेड़ेके तर गये । हे रामजी ! आपने कृपासे या क्रोधसे, सच्चे भावसे या धोखेसे अथवा तिरछी दृष्टिसे ही एक बार उनकी ओर देखभर लिया था ॥२॥ इन

दृष्टियोंमें जो आपको अच्छी लगे, उसी दृष्टिसे जल्दी (मेरी ओर) देख लीजिये (बस, मेरा काम तो आपके देखते ही बन जायगा)। (बात यह है कि) तुलसीदासको अब अपना लीजिये, इसमें देर न कीजिये, क्योंकि अब जीवनका अन्त बहुत ही समीप आ गया है ॥३॥

[२७४]

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव ! दुखित-दीनको ?

को कृपालु स्वामी-सारिखो, राखै सरनागत सब अँग बल-बिहीनको ।१।

गनिहि, गुनिहि साहिब लहै, सेवा समीचीनको ।

अधम/अधन अगुन आलसिनको पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीनको ।२।

मुखकै कहा कहौं, बिदित है जीकी प्रभु प्रबीनको ।

तिहू काल, तिहु लोकमें एक टेक रावरी तुलसीसे मन मलीनको ।३।

भावार्थ—हे देव ! कहाँ जाऊँ? मुझ दुखी-दीनको कहाँ ठौर-ठिकाना है? आपके समान कृपालु स्वामी और कौन है, जो सब प्रकारके साधनोंमें बलसे विहीन शरणागतको आश्रय दे ? ॥१॥ (आपको छोड़कर संसारमें) जो दूसरे मालिक हैं, वे तो धनी, गुणवान् यानी सद्‌गुणसम्पन्न और भली-भाँति सेवा करनेवाले सेवकको ही अपनाते हैं। (मैं न तो धनवान् हूँ, न मुझमें कोई सद्‌गुण है और न मैं भलीभाँति सेवा करनेवाला हूँ) मुझ-सरीखे नीच अथवा निर्धन (साधनहीन), सद्‌गुणोंसे हीन आलसियोंका पालन-पोषण करना तो नित्य उत्साही श्रीरघुनाथजीको ही शोभा देता है ॥२॥ मुँहसे क्या कहूँ प्रभो ! आप तो स्वयं चतुर हैं, मेरे जीकी आप सब जानते हैं ।

तुलसी-सरीखे मलिन मनवालेके लिये तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) और तीनों कालोंमें एक आपका ही सहारा है ॥३॥

[२७५]

द्वार द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाहू ।
हैं दयालु दुनी दस दिसा, दुख-दोष-दलन-छम, कियो न सँभाषन काहू।१।
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिता हू ।
जनतेउ
काहेको रोष, दोष काहिधौं, मेरेही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाँहू।२।
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माँहू ।
तोसे पसु-पाँवर-पातकी परिहरे न सरन गये, रघुबर ओर निबाहूँ ।।३।।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति बिनाहू ।
नामकी महिमा, सील नाथको, मेरो भलो बिलोकि अब तें सकुचाहुँ, सिहाहूँ

भावार्थ—हे नाथ ! मैं द्वार-द्वारपर दाँत निकालकर और पैरों पड़-पड़कर अपनी दीनता सुनाता फिरा। दुनियाँमें ऐसे-ऐसे दयालु हैं, जो दशों दिशाओंके दुःखों और दोषोंके दमन करनेमें समर्थ हैं, किन्तु मुझसे तो किसीने बात भी नहीं की ॥१॥ माता-पिताने मुझे ऐसा त्याग दिया, जैसे कुटिल कीड़ा अर्थात् सर्पिणी अपने ही शरीरसे जने हुए (बच्चे) को त्याग देती है। मैं किसलिये तो क्रोध करूँ और किसको दोष दूँ? यह सब मेरे ही दुर्भाग्यसे हुआ। (मैं ऐसा नीच हूँ कि) मेरी छायातक छूनेमें भी लोग संकोच करते हैं ॥२॥ मुझे दुखी देखकर सन्तोंने कहा कि तू मनमें चिन्ता न कर। तुझ-सरीखे पामर और पापी पशु-पक्षियोंतकको, शरणमें जानेपर, श्रीरघुनाथजीने नहीं त्यागा और अपनी शरणमें रखकर उनका

अन्ततक निर्वाह किया (तू भी उन्हींकी शरणमें जा) ॥३॥ यह तुलसी तभीसे आपका हो गया और आपपर इसकी प्रीति-प्रतीति न होनेपर भी तभीसे यह बड़े सुखमें भी है। (प्रीति-प्रतीति होती, तो आनन्दकी कोई सीमा ही न रहती)। हे नाथ! आपके नामकी महिमा तथा शीलने (मेरी नालायकी होनेपर भी) मेरा कल्याण किया, यह देखकर अब मैं मन-ही-मन सकुचाता हूँ (इसलिये कि मैंने कृपा-पात्र होनेयोग्य तो एक भी कार्य नहीं किया, फिर भी मुझ कृतघ्नपर प्रभुकी ऐसी कृपा है) और आपकी शरणागत-वत्सलताकी प्रशंसा करता हूँ ॥४॥

[२७६]

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो?
राम रावरे बिन भये जन जनमि-जनमि जग दुख दसहू दिसि पायो॥१॥
आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो।
हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार, परी न छार, मुह बायो ॥२॥
असन-बसन बिनु बावरो जहँ-तहँ उठि धायो।
महिमा-मान प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि आगे, खिनु-खिनु पेट खलायो
असु
नाथ! हाथ कछु नाहि लग्यो, लालच ललचायो।
साँच कहौं, नाच कौनसो, जो न मोहिं लोभ लघु हौं निरलज्ज नचायो॥४॥
श्रवन-नयन-मन मग लगे, सब थल पतितायो।
अग
मूड़ मारि, हिय हारिकै, हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो॥५॥
दसरथके! समरथ तुही, त्रिभुवन जसु गायो।
तुलसी नमत अवलोकिये, बलि, बाँह-बोल दै बिरुदावली बुलायो॥६॥

भावार्थ— मैंनेक्या नहीं किया ? मैं कहाँ नहीं गया ? कौन-सी जगह जानेको बची ? और किसके आगे सिर नहीं झुकाया ? किन्तु, हे श्रीरामजी ! जबतक आपका दास नहीं हुआ, तबतक जगत्‌में बार-बार जन्म ले-लेकर मैंने दशों दिशाओंमें केवल दुःख ही पाया (कहीं स्वप्नमें भी सुख नहीं मिला) ॥१॥ (आपका) खास दास होनेपर भी मैं (भ्रम-वश विषयोंसे सुख मिलनेकी) आशाके वशमें हो अशुद्ध हृदयके मालिकोंके सामने अपनेको जताता (समर्पण करता) फिरा और बार-बार द्वार-द्वारपर अपनी ग़रीबी सुनाकर मुँह बाया, पर उसमें खाक भी न पड़ी। (सुख-शान्तिका कहीं आभास भी नहीं मिला) ॥२॥ भोजन और वस्त्रके बिना पागलकी तरह जहाँ-तहाँ दौड़ता फिरा। प्राणोंसे प्यारी मान-प्रतिष्ठाको त्यागकर दुष्टोंके सामने क्षण-क्षणमें अपना यह (खाली) पेट खोलकर दिखाया ॥३॥ हे नाथ ! (विषयोंके) लोभके मारे बहुत ही लालच किया पर कहीं कुछ भी हाथ नहीं लगा। मैं सच कहता हूँ, ऐसा कौन-सा नाच है, जो नीच लोभने मुझ निर्लज्जको न नचाया हो ? ॥४॥ कान, आँखें और मनको भी अपने-अपने मार्गमें लगाया, परन्तु सभी जगह उलटा पतित ही होता गया। (सब राजे-महाराजे भी जाँच लिये। कहीं किसी विषयमें किसीके द्वारा भी सुख-शान्ति नहीं मिली, तब) सिर पीटकर हृदयमें हार मान गया—निराश हो गया। इसीसे अब घबराकर आपके चरणोंकी शरण तककर आया हूँ, क्योंकि इसीमें मुझे अपना हित दिखायी देता है ॥५॥ हे दशरथकुमार ! आप ही समर्थ हैं। तीनों लोकमें आपका ही यश गाया जाता है। तुलसी आपके चरणोंमें प्रणाम कर रहा है, इसकी ओर देखिये, मैं आपकी बलैया

लेता हूँ। आपकी विरदावलीने ही मुझे बाँह और वचन देकर बुलाया है (आपके पतितपावन और शरणागतवत्सल विरदकी देख-रेखमें मेरा कल्याण क्यों न होगा?) ॥६॥

[२७७]

राम राय ! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो ?
स्वामी-सहित सबसों कहौं,सुनि-गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो।१।
देह-जीव-जोगके सखा मृषा टाँचन टाँचो ।
किये बिचार सार कदलि ज्यों,मनि कनकसंग लघु लसत बीच बिच काँचो
'बिनय-पत्रिका' दीनकी,बापु! आपु ही बाँचो ।
हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिये पाँचो ॥३॥

भावार्थ—हे महाराज श्रीरामचन्द्रजी ! आपको छोड़कर मेरा सच्चा हितू और कौन है ? मैं अपने स्वामीसहित सभीसे कहता हूँ, उसे सुन-समझकर यदि कोई और बड़ा हो, तो दूसरी लकीर खींच दीजिये ॥१॥ शरीर और जीवात्माके सम्बन्धके जितने सखा या हितू मिलते हैं, वे सब (असत्) मिथ्या टाँकोंसे सिले हुए हैं। (संसारके सभी सम्बन्ध मायिक हैं) विचार करनेपर ये 'सखा' केलेके पेड़के सारके समान हैं। (जैसे केलेके पेड़को छीलनेपर छिलके ही निकलते हैं, वैसे ही संसारके सारे सम्बन्ध भी सारहीन केवल अज्ञानजनित ही हैं) ये वैसे ही सुन्दर जान पड़ते हैं, जैसे मणि-सुवर्णके संयोगसे बीच-बीच क्षुद्र काँच भी शोभा देता है ॥२॥ हे बापजी ! इस दीनकी लिखी 'विनय-पत्रिका' को तो आप स्वयं ही पढ़िये। (किसी दूसरेसे न पढ़वाइये)। तुलसीने इसमें अपने हृदयकी

सच्ची बातें ही लिखी हैं, इसपर पहले आप अपने (दयालु) स्वभावसे 'सही' बना दीजिये। फिर पीछे पञ्चोंसे पूछिये ॥३॥

[२७८]

पवन-सुवन! रिपु-दवन! भरतलाल! लखन! दीनकी।
निज निज अवसर सुधि किये, बलि जाउँ, दास-आस पूजि है खासखीनकी १
राज-द्वार भली सब कहैं साधु-समीचीनकी।
सुकृत-सुजस, साहिब-कृपा, स्वारथ-परमारथ, गति भये गति-बिहीनकी।२।
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीनकी।
प्रीति-रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परमिति पराधीनकी ॥३॥

भावार्थ—हे पवनकुमार! हे शत्रुघ्नजी! हे भरतलालजी! हे लखनलालजी! अपने-अपने अवसरसे (मौका लगते ही) इस दीन तुलसीको याद करना। मैं आपलोगोंकी बलैया लेता हूँ। आपके (कृपापूर्वक) ऐसा करनेसे इस सर्वथा दुर्बल दासकी आशा पूरी हो जायगी (श्रीरघुनाथजी मेरी पत्रिकापर 'सही' कर देंगे) ॥१॥ राज-दरबारमें सच्चे साधुओंकी तो सभी अच्छी कहते हैं, इसमें क्या विशेषता है? किन्तु यदि आपलोग इस शरणरहित दीनकी सिफारिश कर देंगे, तो इसको भगवान्‌की शरण मिल जायगी, आपको पुण्य होगा और सुन्दर यश फैलेगा, आपके स्वामी आपपर कृपा करेंगे (क्योंकि वह दीनोंपर दया करनेवालोंपर स्वाभाविक ही प्रसन्न हुआ करते हैं) आपके स्वार्थ और परमार्थ दोनों बन जायँगे ॥२॥ इसलिये अवसर देखकर (मौका पाते ही) इस पतित तुलसीकी बात सुधार देना। शरणागत-

वत्सल कृपालु रघुनाथजीसे मुझ पराधीनके प्रेमकी रीतिकी हदको समझाकर कह देना ॥३॥

[२७९]

मारुति-मन, रुचि भरतकी लखि लषन कही है ।
कलिकालहु नाथ! नाम सों परतीति-प्रीति एक किंकरकी निबही है ॥१॥
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है ।
कृपा गरीबनिवाजकी, देखत गरीबको साहब बाँह गही है ॥२॥
बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैंहूँ लही है' ।
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथकी, परी रघुनाथ / रघुनाथ हाथ सही है ॥३॥

प्रसंग—भगवान् श्रीरामका दिव्य दरबार लगा है, प्रभु जगज्जननी श्रीजानकीजीके सहित अलौकिक रत्नजटित राज्यसिंहासनपर विराजमान हैं। हनुमान्‌जी प्रेममग्न हुए नाथकी ओर अनन्य दृष्टिसे निहारते हुए चरण दबा रहे हैं। भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी अपने-अपने अधिकारानुसार सेवामें संलग्न हैं। उसी समय तुलसीदासजीकी 'विनय-पत्रिका' पहुँची। तुलसीदासजीकी प्रार्थना सबको याद थी। भक्त-प्रिय मारुति श्रीहनुमान् और भरतने धीरेसे लक्ष्मणसे कहा कि बड़ा अच्छा मौका है, इस समय तुलसीदासकी बात छेड़ देनी चाहिये। लक्ष्मणजीने उनकी रुख देखकर प्रभुकी सेवामें 'विनय-पत्रिका' पेश कर दी।

भावार्थ—हनुमान्‌जी और भरतजीका मन और उनकी रुचिको देखकर लक्ष्मणजीने भगवान्‌से कहा कि हे नाथ! कलियुगमें भी आपके एक दासकी आपके नामसे प्रीति और प्रतीति निभ गयी (देखिये, उसकी यह

सच्ची विनय-पत्रिका भी आयी है) ॥१॥ इस बातको सुनकर सारी सभा एकमतसे कह उठी कि हाँ, यह बात सर्वथा सत्य है, हमलोग भी उसकी रीति जानते हैं। गरीब-निवाज भगवान् श्रीरामजीकी उसपर (बड़ी) कृपा है। स्वामीने सबके देखते-देखते उस गरीबकी बाँह पकड़कर उसे अपनालिया है ॥२॥ सबकी बात सुनकर श्रीरामजीने मुसकराकर कहा कि हाँ, यह सत्य है, मुझे भी उसकी खबर मिल गयी है। (श्रीजनकनन्दिनीजी कई बार कह चुकी होंगी, क्योंकि गोसाइंजी पहले उनसे प्रार्थना कर चुके हैं)। बस, फिर क्या था—अनाथ तुलसीकी रची हुई विनय-पत्रिकापर रघुनाथजीने अपने हाथसे 'सही' कर दी। अपनी बात बननेपर मैंने भी परम प्रसन्न होकर भगवान्के चरणोंमें सिर टेक दिया (सदाके लिये शरण हो गया) ॥३॥

श्रीसीतारामार्पणमस्तु

परिशिष्ट

पदोंमें आये हुए कथाप्रसंग

पद-संख्या ३–कालकूट-विष—

देवता और असुरोंने एक बार मेरु-पर्वतकी मथानी और शेषनागका दण्ड बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उसमें सबसे पहले हलाहल विष निकला और उसने दशों दिशाओंको अपनी ज्वालासे व्याप्त कर दिया। फिर तो देवता और असुर सभी त्राहि-त्राहि करने लगे। सबोंने मिलकर विचारा कि बिना भक्तवत्सल भगवान् शङ्करके इस महाघातक विषसे त्राण पाना कठिन है। इसलिये उन्होंने एक साथ आर्त्त-स्वरसे भगवान् शङ्करको पुकारा। भक्त-आर्ति-हर करुणामय भगवान् शङ्कर शीघ्र ही प्रकट हुए और उनको भयभीत देखकर हलाहल विषको उठाकर पान कर गये। परन्तु शीघ्र ही उन्हें स्मरण हुआ कि हृदयमें तो ईश्वर अपनी अखिल सृष्टिके साथ विराजमान हैं, इसलिये उन्होंने उस विषको कण्ठसे नीचे नहीं उतरने दिया। उस विषके प्रभावसे उनका कण्ठ नीला हो गया और दोषपूर्ण वह विष भगवान्का भूषण बन गया तभीसे शिव 'नीलकण्ठ' कहलाने लगे।

त्रिपुर-वध—

तारक नामका एक असुर था। उसके तीन पुत्र हुए—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमललोचन। उन तीनोंने महाघोर तप करके ब्रह्माजी

और शिवजीको प्रसन्न किया तथा उनसे अन्तरिक्षके तीन पुरोंका अधिकार प्राप्त किया। अधिकारमदसे उन्मत्त वे असुर फिर नाना प्रकारके अत्याचार करने लगे। उनके उपद्रवसे सारा विश्व काँप उठा और देवतालोग पीड़ित हो उठे। अन्तमें सबोंने मिलकर विष्णुभगवान्‌की अध्यक्षतामें भगवान् शङ्करका स्तवन किया। शिवजी शीघ्र प्रकट हुए और एक ही बाणमें तीनों पुरोंका विध्वंसकर तीनों राक्षसोंका नाश किया। तबसे इनका नाम 'त्रिपुरारि' पड़ा।

काशी-मुक्ति—

काशीमें मृत्यु-समय जीवमात्रको श्रीशङ्कर 'राम-नाम' का मन्त्र देते हैं, जिससे उनकी मुक्ति हो जाती है।

काम-रिपु (मदन-दहन)—

सती-दाहके पश्चात् भगवान् शङ्कर हिमालय-पर्वतके प्रान्तरमें एक निर्जन स्थानमें समाधिमग्न हो गये। उसी समय सतीने पार्वतीके रूपमें हिमाचल नामक पर्वतराजके घर जन्म लिया। उधर तारकासुरके अत्याचार-के मारे समस्त देवताओंके साथ इन्द्रके नाकोंदम आ गया। तारकासुरके बधके विषयमें यह निश्चय था कि यह महादेवके पुत्रके द्वारा मारा जायगा। परन्तु भगवान् शङ्कर समाधिमग्न थे इसलिये उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। क्योंकि तारकासुरका अत्याचार असह्य हो रहा था। अतः उन्होंने कामदेवको महादेवका ध्यान तोड़नेके लिये भेजा।

इधर पार्वती, किशोराबस्थाको प्राप्त हो तथा नारदमुनिके मुखसे यह भविष्यद्वाणी सुनकर कि भूतभावन महादेव ही उसके पति होंगे,

नित्य उसी हिमालय-पर्वतपर ध्यानावस्थित शङ्करकी पूजा करने जाती थी। एक दिन जैसे ही पार्वती श्रीशङ्करके चरणोंमें सुमन-अर्घ्य दे रही थी कि कामदेव अपने सहचर वसन्तको लेकर पहुँचा। उसने पुष्प-बाणको चढ़ाकर चाहा कि भगवान् शङ्करको निशाना बनावें कि इतनेमें महादेवकी समाधि टूटी और उन्होंने सामने कामदेवको पुष्प-बाण चढ़ाते हुए देखा। यह देखना ही था और उधर देवता अन्तरिक्षमें यह कहनेहीको थे कि 'प्रभो ! क्रोधको शान्त कीजिये, शान्त कीजिये' कि इतनेमें शङ्करका तीसरा नेत्र खुला और कामदेव जलकर भस्म हो गया। तभीसे शिवका 'कामारि', 'मदनरिपु' आदि नाम पड़ा।

७—गुणनिधि-उद्धार—

गुणनिधि नामका एक ब्राह्मण बड़ा चोर था। वह एक दिन किसी शिव-मन्दिरमें सोनेके घण्टेको चुरानेके लिये गया। घण्टा कुछ ऊँचे था और वह आसानीसे वहाँतक पहुँच न पाता था इसलिये वह शिवलिङ्गपर चढ़ गया। इतनेमें भोलेबाबा वहाँ प्रकट हो गये और बोले—'वर माँग, हम तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। तूने आज मुझपर अपना सब कुछ चढ़ा दिया है।' भगवान् शङ्करकी कृपासे गुणनिधि शिवलोकका अधिकारी हुआ।

१०—हरिचरण-पूत—गंगा—

एक बार विष्णुभगवान् वामनरूप धारणकर राजा बलिके द्वार गये और उससे उन्होंने तीन पग पृथ्वी दानमें माँगी। तथा दानमें प्राप्त तीन पग पृथ्वी मापनेके लिये अपना विशाल ब्रह्माण्डव्यापी शरीर बनाया। उस समय ब्रह्माजीने भगवान्के उन चरणोंको धोकर अपने कमण्डलुमें रख

लिया था, वही जल गंगाके प्रवाहके रूपमें अवतरित हुआ। इसी कारण गंगाको 'हरिचरण-पूत' कहा गया है।

१२—पाथोधि-घटसंभव—

समुद्रके किनारे एक जोड़ा टिटहरीका रहता था। उनके अण्डे समुद्र बराबर बहा ले जाता था। सन्तान-वियोगसे एक बार उनको समुद्र-के ऊपर क्रोध हो आया और अपने चोंचमें बालू भर-भरकर वे लगे समुद्रको भरनेकी चेष्टा करने। उसी अवसरपर अगस्त्य ऋषि कहींसे वहाँ आ निकले और पक्षियोंकी आर्त्तदशाको देखकर उनका हृदय दयासे द्रवित हो उठा। उन्होंने तत्काल ही उन्हें सान्त्वना देते हुए समुद्रको उठाकर 'ॐ राम' मन्त्रका उच्चारण तीन बार करते हुए आचमन कर लिया। फिर एक बूँद भी जल न बचा जिससे समस्त जलके जीव व्याकुल हो उठे। देवताओंके विनय करनेपर महर्षिने मूत्रद्वारा समुद्रको बाहर निकाल दिया। तभीसे समुद्र अपेय (खारा) हो गया।

१५—असुर-नाशिनी—

मार्कण्डेयपुराणमें महिषासुर, चण्ड-मुण्ड और शुम्भ-निशुम्भ नामक प्रबल पराक्रमी तथा घोर कर्म करनेवाले दैत्योंकी कथा मिलती है। इनसे एक बार जब त्रिलोकी त्रस्त होकर त्राण पानेके लिये अति व्याकुल हो उठी तब सब देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु और महेशके साथ भगवती महा-माया आदि शक्तिकी स्तुतिकर आह्वान किया। महामायाने प्रकट होकर इन असुरोंका संहारकर त्रिलोकीकी प्रजाके दुःखको दूरकर देवताओंको निर्भय किया।

१७–भगीरथ-नंदिनी—

सूर्यवंशमें सगर नामके महा ऐश्वर्यशाली राजा हो गये हैं, उन्होंने ही समुद्रको खनवाया था जिससे उसका नाम सागर पड़ा है। महाराज सगरकी दो रानियाँ थीं। एकसे अंशुमान् पैदा हुए और दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज सगरके प्रतापसे देवराज इन्द्र बहुत ही भयभीत रहता था और उनसे ईर्ष्या किया करता था। महाराज सगरके अश्वमेध-यज्ञके स्वच्छन्द विचरनेवाले घोड़ेको उसने चुराकर योगेश्वर कपिल-मुनिके आश्रमपर बाँध दिया। उसे खोजनेके लिये सगरके साठ हजार पुत्र निकले और मुनिके आश्रमपर घोड़ेको बँधा देख उन्हें कुवाच्य कहा। इससे क्रोधित हो मुनिने योगबलसे उन्हें भस्म कर दिया। महाराज अंशुमान्‌के पुत्र भगीरथ हुए, उन्होंने महातप करके पतितपावनी श्रीगङ्गाजीको भूतलपर लाकर उन लोगोंका उद्धार किया। इसीसे श्रीगङ्गाजीको 'भागीरथी' या 'भगीरथ-नन्दिनी' आदि नामोंसे पुकारते हैं।

१७–जह्नु-बालिका—

जब महाराज भगीरथ गङ्गाजीको अपने रथके पीछे-पीछे भूलोकमें ला रहे थे, उस समय गङ्गाका प्रवाह जह्नु मुनिके आश्रमसे होकर निकला। मुनि ध्यानावस्थित थे, प्रवाहको आते देख उन्होंने उसे उठाकर पी लिया। पीछे महाराज भगीरथने उनकी स्तुतिकर उनको प्रसन्न किया। तब मुनिने जगत्‌के हितार्थ गङ्गाजीको अपने जंघेसे निकाल दिया। तभीसे गङ्गाजीका नाम जह्नु-सुता, 'जाह्नवी' पड़ा।

१८–त्रिपुरारिसिरधामिनी—

जब महाराज भगीरथने ब्रह्मलोकसे गङ्गाजीको प्राप्त कर लिया, तब

यह कठिनाई सामने आयी कि यदि गङ्गाकी धारा वहाँसे सीधे भूलोकपर गिरेगी तो उससे भूलोक जलमग्न हो जायगा। इसलिये उन्होंने भव-भय-हारी भगवान् शङ्करकी स्तुति की और शङ्करजीने ब्रह्मलोकसे अवतरित होती हुई गङ्गाकी धाराको अपने जटाजालमें रोक लिया। इसीसे श्रीगङ्गाजीको त्रिपुरारि (शिव)के मस्तकमें निवास करनेवाली कहा जाता है।

२२–करनघंट—

काशीमें एक ब्राह्मण शिवका बड़ा ही अनन्य भक्त था। वह शिवके सिवा और किसी देवताका नाम भी नहीं सुनना चाहता था। इसलिये उसने अपने दोनों कानोंमें दो घण्टे लटका रक्खे थे जिससे किसी दूसरे देवताका नाम कानोंमें न आने पावे। कोई मनुष्य यदि उसके सामने किसी अन्य देवताका नाम लेता तो वह घण्टा बजाते हुए दूर भाग जाता। इसी कारण उसका नाम 'करनघंट' पड़ गया था। वह जिस स्थानपर रहता था वह स्थान आज भी कर्णघण्टाके नामसे पुकारा जाता है।

२४–बिधिहरिहर–जनमे—

चित्रकूटमें महर्षि अत्रि और उनकी परम साध्वी पतिव्रता स्त्री अनसूया रहती थी। दोनों पुरुष-स्त्रीने पुत्रकी कामनासे अति कठोर तप किया। और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों नामोंसे पुकार-पुकारकर भगवान्‌की स्तुति की, तब भगवान् तीनों रूपसे प्रकट हो गये और वर माँगनेके लिये कहा। अनसूयाने यह वर माँगा कि मेरे गर्भसे तुम्हारे समान पुत्र हों। त्रिदेव 'तथास्तु' कहकर अन्तर्द्धान हो गये। पीछे ब्रह्माने चन्द्रमाके रूपमें, विष्णुने दत्तात्रेयके रूपमें और शिवने दुर्वासाके रूपमें जन्म लिया।

२५–उदित चंड-कर-मंडल-ग्रासकर्त्ता––

वाल्मीकि-रामायणमें कथा आती है कि एक दिन प्रातःकाल अमावस्याके दिन हनूमान्‌जीको बहुत भूख लगी थी। उन्होंने उगते हुए लाल रंगके बाल-सूर्यको देखा और फल समझकर उनके ऊपर वे लपके, और एक ही झटकेमें पकड़कर निगल गये। दैवात् उस दिन ग्रहण भी था। बेचारा राहु जब सूर्यको ग्रहण करनेके लिये आया तो देखा चारों ओर अन्धकार है और सूर्यका कहीं पता नहीं। इससे निराश होकर वह इन्द्रके पास पहुँचा और गिड़गिड़ाने लगा कि आज मैं क्या खाऊँगा? सूर्यको तो किसी दूसरेने खा डाला। यह सुनकर इन्द्र राहुको साथ लिये दौड़े। हनूमान्‌जीने जब उन दोनोंको आते देखा तो वे उनको भी खानेके लिये लपके। इसपर इन्द्रने उनकी ठुड्डीपर ऐसा वज्र मारा कि हनूमान् मूर्च्छित हो गये और वज्र भी टूट गया। तभीसे महावीरजीका हनूमान् नाम पड़ा।

रुद्र-अवतार––

एक बार शिवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति की और यह वर माँगा कि 'हे प्रभो! मैं दास्यभावसे आपकी सेवा करना चाहता हूँ। इसलिये कृपया मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये।' श्रीरामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा। वही शिवजी श्रीरामावतारमें हनूमान्‌के रूपमें अवतीर्ण होकर श्रीरामचन्द्रजी-के सेवकोंमें प्रमुख पदको प्राप्त हुए।

सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुन––

श्रीहनूमान्‌जीने सूर्यनारायणसे शस्त्रास्त्र-विद्याकी शिक्षा पायी थी।

इसकी दक्षिणाके स्थानमें श्रीसूर्यनारायणने हनूमान्‌जीसे कहा था कि 'देखो, हमारे पुत्र सुग्रीवकी तुम सदा रक्षा करना।' हनूमान्‌जीने आजन्म सुग्रीवकी रक्षा की।

बालि बलसालि बध मुख्य हेतु—

सीता-हरणके बाद जब भगवान् श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ऋष्यमूक-पर्वतके समीप पहुँचे तो पहले हनूमान्‌जीने ही उनसे भेंट की तथा उनको ले जाकर सुग्रीवसे मिलाया और उनमें पारस्परिक मैत्री स्थापन की। यही मैत्री बालिबधका कारण हुई। इसीसे बालिके बधमें मुख्य हेतु श्रीहनूमान्‌जी माने जाते हैं।

सिंहिका-मद-मथन—

सिंहिका नामकी एक राक्षसी समुद्रमें रहती थी। उस मार्गसे जो जीव आकाशमें जाते थे, उनकी परछाँईं जलमें देखकर वह उनको पकड़ लेती थी और खा जाती थी। जब हनूमान्‌जी सीताजीकी खोजमें आकाश-मार्गसे लङ्का जाने लगे तो उस राक्षसीने उनके साथ भी वही व्यवहार करना चाहा। परन्तु हनूमान्‌जी उसकी चालको समझ गये और उसको एक ही मुष्टि-प्रहारके द्वारा परलोक भेज दिया।

दसकंठ-घटकरन, बारिद-नाद-कदन-कारन—

राम-रावण-युद्धके समय जब रावण युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये अजेय यज्ञका अनुष्ठान करने लगा तो इसकी सूचना विभीषणने श्रीरामकी सेनामें दी और कहा कि यदि रावण इस अनुष्ठानमें सफल हो गया तो

उसको मारना फिर अत्यन्त कठिन हो जायगा। इसलिये उसके यज्ञको विध्वंस करना चाहिये। श्रीहनूमान्‌जीने इस कार्यका भार अपने ऊपर लिया और वे वानरोंकी एक सेना लेकर वहाँ पहुँच गये तथा उस यज्ञको विध्वंस कर दिया। इसके पश्चात् रावण युद्ध-भूमिमें लड़नेके लिये आया और मारा गया। इस प्रकार श्रीहनूमान्‌जी उसकी मृत्युके कारण बने। कुम्भकर्णको रणमें बलरहित करनेमें भी श्रीहनूमान्‌जी ही कारण थे।

मेघनादने जब लक्ष्मणजीको शक्तिबाण मारा था तो वे मूर्च्छित हो गये। उनकी मूर्च्छाको दूर करनेके लिये हनूमान्‌जी ही धौलागिरिके साथ सञ्जीवनी-बूटी लाये थे। और उस बूटीके द्वारा मूर्च्छासे उठनेपर दूसरे ही दिन लक्ष्मणजीने मेघनादको मारा था, इसी कारण श्रीहनूमान्‌जी मेघनादके बधके कारण माने जाते हैं।

कालनेमि-हंता—

यह रावणके पक्षका महाधूर्त राक्षस था। जब हनूमान्‌जी लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा हटानेके लिये सञ्जीवनी-बूटी लाने गये थे तो रास्तेमें इसने साधुका वेष धारणकर उनको छलना चाहा। हनूमान्‌जीको उसकी माया मालूम हो गयी और तुरन्त ही उन्होंने उसको परलोक भेज दिया। इसीसे हनूमान्‌जी कालनेमि-हन्ता कहलाते हैं।

२८—भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्वहर—

महाभारतमें कथा आती है कि पाण्डवोंके वनवासकालमें एक दिन भीम अपने पराक्रमके मदमें मस्त हुए कहीं जा रहे थे। उनके मार्गमें एक बड़ा भारी बन्दर सोया हुआ मिला। भीमके गर्जनसे उसकी आँखें खुल

गयीं। भीमने उसे मार्गसे हट जानेके लिये कहा। बन्दरने उत्तर दिया—'भाई! मैं बूढ़ा हो गया हूँ। तुम्हीं जरा मेरी पूँछको हटाकर चले जाओ।' भीमके सारी शक्ति लगानेपर भी वह पूँछ टस-से-मस नहीं हुई। पीछे जब उन्हें यह मालूम हुआ कि यह कोई सामान्य बन्दर नहीं है, बल्कि यह महापराक्रमशाली हनूमान्जी हैं तो उन्होंने नतशिर हो उन्हें प्रणाम किया। इस विषयकी एक दूसरी कथा और आती है कि एक बार भीमने हनूमान्जीसे निवेदन किया कि आप मुझे उस रूपका दर्शन दें जिस रूपसे आपने राम-रावण-युद्धमें भाग लिया था। हनूमान्जीने कहा कि मेरा वह रूप अत्यन्त ही विकराल है, उसे देखकर तुम डर जाओगे। परन्तु जब गर्वके साथ भीमने बहुत आग्रह किया तो हनूमान्जी तत्काल ही उस रूपमें प्रकट हो गये। भीमकी आँखें भयके मारे बन्द हो गयीं और वे थर-थर काँपने लगे। हनूमान्जीकी महिमा देखकर उनका गर्व दूर हो गया और वे उनके चरणोंमें गिर पड़े।

महाभारतके युद्धमें अर्जुनके रथकी ध्वजापर हनूमान्जी बैठे रहते थे। परन्तु यह बात अर्जुनको मालूम न थी। जब अर्जुन और कर्णका सामना हुआ तो अर्जुनके बाणसे कर्णका रथ बहुत दूर चला जाता था परन्तु कर्णके बाणसे अर्जुनका रथ बहुत ही थोड़ा हटता था। तथापि भगवान् अर्जुनके बाणकी प्रशंसा नहीं करते और कर्णके बाणकी प्रशंसा करते थे। इससे अर्जुनके दिलमें यह गर्व होता था कि भगवान् ऐसा क्यों कहते हैं। अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण यह सब जानते थे। एक बार उन्होंने हनूमान्जीसे रथकी ध्वजासे अलग हो जानेका इशारा किया। उनके हटते ही जैसे कर्णका बाण छूटा, अर्जुनका रथ कोसों दूर जा गिरा।

इससे अर्जुनको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने भगवान्‌से इसका कारण पूछा । भगवान्‌ने बतलाया कि 'हनूमान्‌के पराक्रमसे ही तुम्हारा रथ स्थिर रहता है, वे रथकी ध्वजापरसे हट गये हैं । यदि मैं भी यहाँ न रहता तो न जाने तुम्हारा रथ कहाँ चला जाता ।' भगवान्‌की इस बातसे अर्जुनका गर्व दूर हो गया ।

गरुड़जीको अपने तेज चलनेपर बड़ा ही गर्व था । एक बार भगवान् श्रीकृष्णने श्रीहनूमान्‌जीको बहुत शीघ्र बुला लानेके लिये गरुड़को भेजा । गरुड़जी वहाँ गये और उन्होंने हनूमान्‌जीको साथ चलनेके लिये कहा । हनूमान्‌जी बोले, आप चलिये, मैं अभी आता हूँ, गरुड़ने समझा देरसे आवेंगे, इसलिये कहा, साथ ही चलिये, हनूमान्‌जी बोले, मैं राम-कृपासे आपसे आगे पहुँच जाऊँगा । इसपर गरुड़को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे खूब तेजीसे चले । भगवान्‌के सामने पहुँचनेपर वे क्या देखते हैं कि हनूमान्‌जी पहलेहीसे वहाँ विराजमान हैं । यह देखकर गरुड़जीका गर्व जाता रहा ।

सम्पाति–

सम्पाति गीधराज जटायुके छोटे भाई थे । एक दिन दोनों भाई होड़ा-होड़ी सूर्यको छूनेके लिये आकाशमें उड़े । जटायु तो बुद्धिमान् थे, वे सूर्यके उत्तापके भयसे सूर्यमण्डलके समीप न जाकर लौट आये, परन्तु सम्पातिको अपने पराक्रमका घमण्ड था, वे आगे बढ़ते ही गये और सूर्यके समीप पहुँचते ही उत्तप्त किरणोंसे उनके पङ्ख झुलस गये और वे माल्यवान्-पर्वतपर धड़ामसे आ गिरे । फिर जब सुग्रीवकी आज्ञासे सीता-जीकी खोजमें वानर और रीछ निकले और उस पर्वतपर पहुँचे तो

सम्पातिने ही उन्हें सीताजीका पता बताया। हनूमान्‌जीकी कृपासे सम्पातिके पङ्ख जम गये और उनके नेत्रोंमें ज्योति आ गयी तथा उन्हें दिव्य शरीर प्राप्त हो गया।

२९—महानाटक—निपुन

श्रीहनूमान्‌जी बड़े भारी विद्वान् और गायनाचार्य थे, सूर्यभगवान्‌से उन्होंने सब विद्याएँ पढ़ी थीं। कहा जाता है कि श्रीहनूमान्‌जीने एक महानाटक लिखकर श्रीराम-चरित्रका विस्तृत वर्णन किया था। परन्तु उसके सुननेका कोई अधिकारी न पाकर उसे उन्होंने समुद्रमें फेंक दिया। उसीके यत्र-तत्र बिखरे कुछ अंशोंको दामोदर मिश्रने सङ्कलन करके वर्तमान 'हनुमन्नाटक'की रचना की है।

३९—संजीवनी-समय—

जब हनूमान्‌जी हिमालय-पर्वतसे सञ्जीवनी-बूटी लेकर आकाश-मार्गसे अत्यन्त तीव्र गतिसे लौटे आ रहे थे उस समय भरतने उन्हें देखकर समझा कि कोई मायावी राक्षस जा रहा है। इसलिये उन्होंने एक बाण चलाया जो हनूमान्‌जीको लगा और वह हा राम! हा राम! कहते हुए जमीनपर गिर पड़े। 'राम' शब्द सुनकर भरतको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने दौड़कर हनूमान्‌जीको उठा हृदयसे लगा लिया। इसी समय उनकी बाण चलानेकी महिमा जाननेमें आयी।

४०—लवणासुर—

लवणासुर मथुराका अनाचारी प्रतापी असुर राजा था। इसके अत्याचारोंसे गौ, ब्राह्मण और तपस्वीजन त्राहि-त्राहि करने लगे। जब

महाराजा श्रीरामचन्द्रजीके यहाँ उनकी फरियाद आयी तो शत्रुघ्नने महाराजसे लवणासुरको दण्ड देनेके लिये स्वयं जानेकी आज्ञा माँगी। और आज्ञा प्राप्त होनेपर मथुरा जाकर उन्होंने अपने प्रबल पराक्रमसे लवणासुरका नाशकर प्रजाको सुखी किया।

४३–रिषि-मख-पाल–

विश्वामित्र-मुनिके आश्रमके समीप राक्षसोंने बहुत उत्पात मचा रक्खा था। वे तपस्यामें अनेकों प्रकारसे विघ्न डालते थे। उनके उपद्रवसे व्याकुल होकर विश्वामित्र-मुनि अयोध्यामें महाराज दशरथके दरबारमें आये और महाराजसे अपने यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीराम-लक्ष्मणको माँगा। महाराज अपने प्राणप्रिय पुत्रोंको पहले तो अलग करना नहीं चाहते थे, परन्तु महामुनि महर्षि वशिष्ठकी अनुमतिसे उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको विश्वामित्र-मुनिके सुपुर्द किया। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको साथ लेकर मुनिके यज्ञकी रक्षा की और ताड़का, सुबाहु प्रभृति राक्षसोंको, जो यज्ञ-ध्वंस किया करते थे, मार डाला।

मुनिबधू-पापहारी–

गौतम-ऋषिकी पत्नी अहल्या परम रूपवती थी। उसके सौन्दर्यको देखकर इन्द्रका मन मोहित हो गया और एक दिन सायंकाल जब गौतम-ऋषि सन्ध्या-वन्दनके निमित्त बाहर गये थे उसी समय इन्द्र गौतमका रूप धारणकर अहल्याके पास गया और उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की। कुसमय समझकर पहले तो उसने अस्वीकार किया पर पीछे पति-आज्ञा समझकर उसने स्वीकार कर लिया। इतनेहीमें गौतम-ऋषि आ गये। उन्होंने

योगदृष्टिसे सारा रहस्य जान लिया और क्रोधित होकर इन्द्रको शाप दिया कि 'जा तेरे सहस्र भग हो जायँ।' तथा अहल्याको शाप दिया कि 'तू पत्थरकी हो जा।' पीछे जब उनका क्रोध शान्त हुआ तो उन्होंने दोनोंके शापका इस प्रकार प्रतिकार बतलाया कि श्रीरामचन्द्रजीके चरण-स्पर्शसे अहल्याका उद्धार होगा और जब श्रीरामचन्द्रजी शिवके धनुषको तोड़ेंगे, उस समय इन्द्रके सहस्र भग सहस्र नेत्रोंके रूपमें परिणत हो जायँगे।

काक-करतूति-फलदानि—

एक दिन चित्रकूटमें सीताजीके अपूर्व सौन्दर्यपर इन्द्रका पुत्र जयन्त मोहित हो गया। और कौएका रूप धारणकर सीताजीके पैरोंमें चोंच मारकर भागा। श्रीरामचन्द्रजीने पैरोंसे रक्त प्रवाहित होते देख सींकके बाणसे उसे मारा। जयन्त भागने लगा और बाण उसके पीछे लगा। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें भागता फिरा परन्तु कहीं भी उसे शरण नहीं मिली। लाचार होकर वह श्रीरामचन्द्रजीके शरणमें आ गिरा। भगवान्ने उसके प्राण तो नहीं लिये पर उसकी एक आँख ले ली।

४९—कालिय—

यमुनाजीमें एक बड़ा ही भयङ्कर सर्प रहता था। उसका नाम कालिय था। उसके विषके मारे वहाँका जल सदा खौलता रहता था। श्रीकृष्ण-भगवान्ने उसको नाथकर अपने वशमें कर लिया। पीछे वह यमुनाजीको छोड़कर समुद्रमें चला गया। यह कथा श्रीमद्भागवतमें मिलती है।

अंधक—

अन्धक बड़ा उपद्रवी और बलवान् दैत्य था। यह हिरण्याक्षका पुत्र था। ब्रह्माजीकी आराधना करके इसने यह वरदान प्राप्त किया था कि

'जब मुझे ज्ञानकी प्राप्ति हो जाय तब ही मेरा शरीरान्त हो, नहीं तो मैं सदा जीता रहूँ।' यह वरदान प्राप्तकर उसने त्रिलोकीको जीत लिया। उसके भयसे देवता मन्दराचल-पर्वतपर चले गये। यह वहाँ भी पहुँचकर उनको त्रसित करने लगा। इसपर देवता त्राहि-त्राहि करने लगे और आर्तस्वरसे उन्होंने महादेवजीको पुकारा। महादेवजीके साथ अन्धकासुरका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ, अन्तमें महादेवजीने उसे एक त्रिशूल मारा। जिससे वह असुर वहीं बैठकर महादेवजीके ध्यानमें मग्न हो गया। महादेवजीने कहा कि 'वर माँग।' उसने यह वर माँगा कि 'हे प्रभो! मुझे आपकी अनन्य भक्ति प्राप्त हो।' यह कथा 'शिवपुराण'में है।

दच्छ-मख—

दक्ष प्रजापतिकी एक कन्याका नाम सती था, उसका विवाह शिवजीके साथ हुआ था। एक बार ब्रह्माकी सभामें सब देवता विराजमान थे, वहाँ दक्ष प्रजापति पहुँचे। उनकी अभ्यर्थनाके लिये ब्रह्माके साथ समस्त देवता उठ खड़े हुए, परन्तु शिवजी बैठे ही रह गये। इससे दक्ष प्रजापतिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने इसका बदला लेनेके उद्देश्यसे एक यज्ञ किया। उस यज्ञमें शिवजीके अतिरिक्त सब देवता बुलाये गये। जब यह समाचार सतीको मिला तो वह शिवजीकी अनुमतिके बिना ही अपने पिताके घर चली गयी और वहाँ पहुँचकर जब यज्ञमें शिवजीका भाग उसने न देखा तो क्रोधके मारे योगाग्निमें जलकर भस्म हो गयी। यह समाचार सुनकर शिवजीने वीरभद्रको यज्ञ-विध्वंस करनेके लिये भेजा। वीरभद्रने वहाँ जाकर यज्ञ-विध्वंस किया।

५४–वेदगर्भ···कर्त्ता–

ब्रह्माजीके पुत्र सनकादिने एक बार अपने पितासे पराविद्यासम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे। जब ब्रह्माजी उन प्रश्नोंका यथेष्ट उत्तर न दे सके तो उन्हें अपने ज्ञानपर बड़ा गर्व हुआ। ब्रह्माजीने उनके हृदयकी बात जानकर श्रीविष्णुभगवान्‌का स्मरण किया और विष्णुभगवान् वहाँ शीघ्र ही हंसके रूपमें प्रकट हो गये। फिर सनकादिने उस हंससे पूछा कि 'तू कौन है ?' इसी प्रश्नपर हंसभगवान्‌ने सारी पराविद्याका सारांश कह सुनाया। उसे सुनकर सनकादिका अभिमान जाता रहा। निम्बार्क-सम्प्रदायवाले इसी हंसभगवान्‌को अपने सम्प्रदायका आदि आचार्य मानते हैं।

५६–भूमि-उद्धरन–

सत्ययुगमें हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो महाप्रतापी असुर हो गये हैं। यह दोनों भाई थे। हिरण्याक्ष भूमिको चुराकर पातालमें ले गया। भगवान्‌ने शूकर-रूप धारणकर हिरण्याक्षको मारा और भूमिका उद्धार किया। इससे भगवान् भूमिके उद्धारक माने जाते हैं। इसके सिवा जब-जब इस पृथ्वीपर पापियोंका अत्याचार बढ़ता है और पृथ्वी घबड़ा उठती है तब-तब भगवान् अवतार लेकर पापियोंका नाशकर भूमिका उद्धार करते हैं।

भूधरनधारी–

यह कथा तो प्रसिद्ध ही है कि जब भगवान् श्रीकृष्णके कहनेसे व्रज-वासियोंने इन्द्रकी पूजा रोक दी तो इन्द्र व्याकुल होकर प्रलयमेघको लेकर

व्रजपर चढ़ आये। सात दिनतक लगातार मूसलाधार वृष्टि होती रही। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने गौओं और गोपियोंकी रक्षाके लिये गोवर्द्धन-पर्वतको कनिष्ठिका-अँगुलीपर उठाकर उसको छाता बनाकर व्रजकी रक्षा की थी। तभीसे भगवान् 'भूधरनधारी' (गिरिधारी) नामसे पुकारे जाते हैं।

५७—वृत्रासुर—

वृत्रासुर बड़ा प्रतापी असुर था। यह असुर होते हुए भी परम भक्त था। इसने इन्द्रके साथ युद्ध करते समय भक्तिका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। भागवतमें यह प्रसंग देखने लायक है। इसीके मारनेके लिये देवगण दधीचि-ऋषिके पास उनकी हड्डियाँ माँगने गये थे और उस परम दानी ऋषिने देवोंके उपकारमें अपने शरीरका त्याग किया था। उन्हीं हड्डियोंमें-से एकसे वज्र बना था जो इन्द्रका प्रमुख अस्त्र है। उसी वज्रसे इन्द्रने वृत्रको मारा था।

बान—

वाणासुर राजा बलिका पुत्र था। इसके सहस्र बाहु थे। यह शिवजी-का परम भक्त था। इसकी पुत्री ऊषा परम सुन्दरी थी। वह स्वप्नमें श्रीकृष्ण-भगवान्‌के पौत्र अनिरुद्धका रूप देखकर मोहित हो गयी और अपनी सखी चित्रलेखाके चित्रोंद्वारा उसका पता जानकर उसे चुपकेसे अपने अन्तःपुरमें मँगा लिया। जब यह बात वाणासुरको मालूम हुई तो उसने अनिरुद्धको कैद कर लिया। इसपर वाणासुर और भगवान् श्रीकृष्णमें बड़ा घोर युद्ध हुआ। शिवजी वाणासुरकी ओरसे इस युद्धमें लड़ रहे थे। जब वाणासुरके सब बाहु कट गये, केवल चार ही बच रहे तब वह भगवद्भक्त हो गया।

शिवजीके स्तवनसे भगवान्‌ने उसे अभय कर दिया। तत्पश्चात् अनिरुद्ध और ऊषाका विवाह हुआ। यह कथा भी श्रीमद्भागवतमें आती है।

मय—

मय नामका दानव बड़ा ही कला-कुशल था। इसके कलाकी प्रशंसा महाभारत, रामायण आदि धर्म-ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र मिलती है। स्वर्णपुरी लंका-का निर्माण इसीने किया था। महाभारतमें इन्द्रप्रस्थके अपूर्व नगरका निर्माता भी यही मय दानव था। यह भगवद्भक्त था।

द्विजबंधु—

द्विजबन्धुका अभिप्राय अजामिलसे है। यह बड़ा ही दुराचारी और महापातकी ब्राह्मण था। इसके छोटे लड़केका नाम नारायण था। जब मरते समय यमदूत इसे मुश्कें बाँधने लगे तो यह भयभीत होकर आर्तस्वरसे 'नारायण-नारायण' पुकारने लगा। इस पुकारसे उसका पुत्र तो नहीं आया, पर भगवान् नारायणके दूत वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने हठपूर्वक यमदूतोंसे यह कहकर उसका पिण्ड छुड़ाया कि 'यह परम वैष्णव है, इसने बड़े ही आर्त्तस्वरसे भगवान्‌का नामोच्चारण किया है।'

६०—मारकंडेय''प्रलयकारी—

मार्कण्डेय-ऋषि बचपनसे ही बड़े वीर्यवान् और तपोनिष्ठ थे। उनकी उग्र तपस्याको देखकर इन्द्र भी भयभीत हो गये थे और उसमें विघ्न उपस्थित करनेके विचारसें कामदेवको अपनी सारी सेनाके साथ भेजा था। परन्तु कामदेव कोटि कला करके भी अपने प्रयत्नमें सफल नहीं हुए। इसके बाद भगवान् नर-नारायणरूपसे उनके सम्मुख उपस्थित हुए और उनसे वर

माँगनेके लिये कहा। मार्कण्डेय-मुनिने भगवान्‌की माया देखनेकी इच्छा प्रकट की। फल-स्वरूप उन्हें सारा ब्रह्माण्ड जलमग्न होते हुए दिखलायी दिया।

७८–विटप–

एक बार कुबेरके पुत्र नलकूबर और मणिग्रीवने प्रमादवश नारदजीकी हँसी उड़ायी। इसपर नारदजीने उन्हें शाप दिया कि 'तुम लोग बड़े ही जड़बुद्धि हो, जाओ वृक्ष हो जाओ।' पीछे जब उन लोगोंने प्रार्थना की तब दयालु नारद मुनिने शापोद्धारनिमित्त कह दिया कि 'गोकुलमें जब भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होगा तो उनके चरणोंके स्पर्शसे तुम्हारा उद्धार हो जायगा।' यह दोनों भाई नारदके शापसे गोकुलमें अर्जुन-वृक्ष बन गये। एक दिन यशोदाजीने किसी अपराधके कारण बालक श्रीकृष्णको ऊखलसे बाँध दिया। भगवान् रेंगते हुए, जुड़े हुए वृक्षोंके पास जा पहुँचे और वृक्षोंको, बीचमें ऊखलको अड़ाकर ऐसा झटका दिया कि तुरन्त दोनों वृक्ष गिर पड़े और वृक्षरूप त्यागकर दिव्य यक्षरूपसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। भगवान्‌ने उन्हें मुक्ति प्रदान कर दी।

८३–तरयो गयंद जाके एक नाँय–

एक बार एक तालाबमें एक बड़ा भारी मतवाला हाथी हथिनियोंके साथ जल-विहार कर रहा था। इतनेमें एक ग्राहने आकर उसका पैर पकड़ लिया। हाथीने अपने पैरको छुड़ानेके लिये सारी शक्ति लगा दी पर ग्राहने पैर न छोड़ा, न छोड़ा। वह उसे गहरे जलमें खींचने लगा। जब वह हाथी निराश हो गया तो उसने आर्त्तभावसे भगवान्‌को पुकारा।

उसके मुँहसे 'हरि' नाम निकलना था कि भक्त-भय-हारी प्रभु अपने वाहन गरुड़को छोड़कर शीघ्र वहाँ उपस्थित हो गये और उन्होंने ग्राहको मारकर उस हाथीके दुःखको दूर किया। श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धमें यह कथा 'गजेन्द्रमोक्ष' नामसे विस्तारपूर्वक लिखी गयी है।

८६–सुरुचि–

राजा उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। राजा सुरुचिको ही अधिक मानते थे। दोनों रानियोंके दो पुत्र थे। एक दिन सुनीतिका पुत्र ध्रुव सुरुचिके लड़केके सामने राजाकी गोदमें जा बैठा। सुरुचिसे यह देखा न गया। वह दौड़ी आयी और उसको डाँट-फटकार बताते, राजाकी गोदसे उतार दिया। वह रोता हुआ अपनी माँके पास गया। उसकी माँने दीनबन्धु अशरणशरण भगवान्‌के गुणोंका वर्णनकर ध्रुवके मनको भगवान्‌की ओर लगा दिया। पीछे बालक ध्रुवने बाल्य-जीवन-में ही घोर तपस्याकर प्रभुको प्रसन्नकर राज्य और परमपद प्राप्त किया।

८७–रिपु राहु–

जब समुद्र-मन्थनके समय समुद्रसे अमृत निकला तो दैत्य और देवता उसके लिये आपसमें लड़ने लगे। विष्णुभगवान्‌ने मोहिनी-रूप धारणकर अमृतके घड़ेको अपने हाथमें ले लिया। दैत्य उनके रूपपर मोहित हो गये, उन्हें अमृतका ध्यान ही नहीं रहा। एक ओर देवता और दूसरी ओर दैत्य बैठ गये। अमृतका बाँटा जाना देवताओंकी पंक्तिसे प्रारम्भ हुआ। राहु नामका दैत्य विष्णुभगवान्‌की इस लीलाको समझ गया। वह वेष बदलकर सूर्य-चन्द्रमाके बीच देवताओंमें आकर बैठ गया।

मोहिनीने उसे भी अमृत पिला दिया, वह अमर हो गया। परन्तु सूर्य और चन्द्रमाके संकेतसे भगवान्‌को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने अपने चक्रसे राहुके सिरको धड़से अलग कर दिया। फिर सिर राहु हो गया और धड़ केतु। उसी पुराने वैरसे राहु ग्रहणके द्वारा चन्द्र और सूर्यको कष्ट देता है।

९३–मृगराज-मनुज–

प्रह्लादकी कथा प्रसिद्ध ही है। हिरण्यकशिपु नामका एक महाप्रतापी दैत्य हो गया है। उसने घोर तप करके ब्रह्मासे यह वरदान माँगा था कि मैं न नरसे मरूँ न पशुसे, न दिनमें मरूँ न रातमें, न अस्त्रसे मरूँ न शस्त्रसे, न घरमें मरूँ न बाहर। यह वर प्राप्तकर वह अत्यन्त निरङ्कुश होकर राज्य करने लगा। उसके अत्याचारसे त्रिलोकी काँप उठी। कोई भी मनुष्य जप-यज्ञ, पूजा-पाठ उसके राज्यमें नहीं करने पाता था और जो कोई भगवद्भजन करता उसे वह तरह-तरहकी यन्त्रणा देता। उसका पुत्र प्रह्लाद बड़ा ही भगवद्भक्त था। उसने पिताके कितना ही कहनेपर भी, अपनी टेकको नहीं छोड़ा। इसके लिये उसे भाँति-भाँतिकी पीड़ा पहुँचानेका प्रयत्न किया गया। परन्तु सब निष्फल हुआ। एक दिन राजसभामें प्रह्लादको खम्भेमें बाँधकर हिरण्यकशिपु कहने लगा कि 'अपने भगवान्‌को दिखला, नहीं तो आज तू मेरे तलवारकी घाट उतरेगा।' प्रह्लादने कहा कि 'भगवान् सर्वत्र है, वह खम्भेमें है, तुममें है, मुझमें है, तुम्हारी तलवारमें और इस खम्भेमें भी है।' इसपर हिरण्यकशिपुने अत्यन्त क्रोधित होकर उसे मारनेके लिये तलवार उठायी ही थी कि भक्त प्रह्लादके वचन-

को सत्य करने और उसे सङ्कटसे छुड़ानेके लिये भगवान् नरसिंह (आधा मनुष्य और आधा सिंह) रूपसे खम्भेको फाड़कर निकल आये और हिरण्यकशिपु-को दरवाजेपर घसीटकर अपने जङ्घेपर रखकर अपने नखोंसे उसके कलेजे-को फाड़कर मार डाला ।

नर-नारी–

जब दुर्योधनने जुएमें पाण्डवोंका सर्वस्व जीत लिया और अन्तमें द्रौपदीको भी दाँवपर रखकर जब पाण्डव हार गये, तब उसने दुःशासनके द्वारा द्रौपदीको भरी हुई राजसभामें बुलवाकर नङ्गा करनेकी आज्ञा दी । उस सभामें भीष्म, द्रोण आदि महामहिम योद्धा तथा पाँचों भाई पाण्डव भी बैठे थे, परन्तु दुर्योधनकी इस आज्ञापर किसीके मुँहसे एक भी शब्द न निकला । दुःशासन द्रौपदीके सिरके केशोंको पकड़कर घसीटता हुआ सभा-मण्डपके बीचमें लाया और उसकी साड़ीको पकड़कर खींचने लगा । द्रौपदीने करुणापूर्ण नेत्रोंसे सभाकी ओर देखा परन्तु जब कोई भी उसकी सहायताके लिये आगे बढ़ता न दिखायी दिया तो उसने अपनी लाज बचानेके लिये आर्त्तस्वरसे करुणासिन्धु भगवान्‌को पुकारा । भगवान् श्रीकृष्णने उसकी पुकार सुन ली । (कुरुराज-बन्धु) दुःशासन साड़ीको खींचते-खींचते थक गया परन्तु उसका छोर न लगा । प्रभुकी कृपाके आगे उसकी एक न चली । द्रौपदीकी लाज रह गयी । अर्जुन 'नर' ऋषिके अवतार माने जाते थे, इससे द्रौपदीको 'नर-नारी' कहा गया है ।

९४–गनिका–

पिङ्गला नामकी एक वेश्या थी । एक दिन जब वह शृङ्गार किये हुए अपने किसी प्रेमीकी प्रतीक्षामें बैठी और आधी राततक वह न आया

तो उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचने लगी कि जितना समय मैंने इस पापपूर्ण प्रतीक्षामें लगाया उतना यदि भगवान्‌के भजनमें लगाती तो मेरा उद्धार हो जाता। उसी दिनसे उसने वेश्या-वृत्ति छोड़कर भगवद्भजनमें मन लगाया और भगवान्‌की कृपासे उसका उद्धार हो गया।

व्याध—

प्राचीन कालमें रत्नाकर नामका एक व्याधा था। वह ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर भी व्याधाका काम करता था। वह जङ्गलमें पशुओंका शिकार करनेके सिवा वनके मार्गसे होकर जानेवालोंका सर्वस्व भी छीन लेता था। एक दिन, दैववश, देवर्षि नारद उसी मार्गसे होकर निकले। रत्नाकरने उनको घेर लिया। नारदजीने उससे कहा कि तुम यह घोर कर्म जिनके लिये कर रहे हो, वह तुम्हारे इस पाप-कर्मके भागी न होंगे। रत्नाकर इसपर अपने कुटुम्बके लोगोंसे इस विषयमें पूछनेके लिये गया। जब उसके परिवारके लोगोंने साफ-साफ कह दिया कि हम तुम्हारे पापके भागी नहीं हैं तो वह नारदजीके पास आकर उनके पैरोंमें गिर पड़ा और क्षमा-याचना करते हुए पूछा कि 'मेरा अब कैसे उद्धार होगा?' नारदजीने उसे 'राम' मन्त्रका उपदेश दिया। उसने कहा कि मैं राम-मन्त्र नहीं जप सकता, तब देवर्षिने उससे रामका उलटा 'मरा-मरा' जपनेको कहा। इसीके प्रतापसे पीछे वही व्याध 'वाल्मीकि' मुनिके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

९७—सुरपति कुरुराज, बालिसों······बैर बिसहते—

सुरपति—

एक बार देवर्षि नारदजी स्वर्गसे पारिजात-पुष्प लाकर रुक्मिणीको दे गये। सत्यभामाको उसके लेनेकी इच्छा हुई। परन्तु सौत होनेके कारण

—

रुक्मिणीसे वह माँग नहीं सकती थी और रुक्मिणीके पास वैसे पुष्पका होना भी उससे देखा नहीं जाता था। इसलिये उसने पारिजात-पुष्पके लिये मान किया। यद्यपि उसका यह हठ और मान ईर्ष्यायुक्त होनेके कारण अनुचित था, परन्तु भगवान्‌ने भक्तिवश उसपर कुछ ध्यान न दिया और स्वर्गमें जाकर इन्द्रसे लड़कर पारिजात-वृक्ष ही उखाड़ लाये और सत्यभामाके भवनके सामने बगीचेमें उसे लगा दिया।

कुरुराज—

पाँचों भाई पाण्डवोंका मिलकर द्रौपदीको रख लेना, कौरवोंके साथ जुआ खेलना तथा द्रौपदीको भी दावँपर रख हार जाना आदि पाण्डवोंके प्रत्यक्ष दोष थे, परन्तु उनकी भक्ति देखकर भगवान् कृष्णने उनके दोषोंपर ध्यान नहीं दिया और उनका पक्ष लेकर कुरुराज दुर्योधनसे वैर बाँध लिया।

बालि—

यद्यपि सुग्रीवका भी पक्ष बिल्कुल निर्दोष न था तथापि सुग्रीवकी भक्तिके वशमें होकर भगवान्‌ने इन बातोंका कुछ भी खयाल न करके बालिको मारा और सुग्रीवको राज्य दिलाया।

९८—जसुमति हठि बाँध्यो—

एक बार यशोदाजी दूध मथ रही थीं। उसी समय बालक श्रीकृष्ण भूखे हुए उनके पास आये, माता उन्हें गोदमें उठाकर प्रेमसे दूध पिलाने लगी, इतनेमें चूल्हेपर चढ़े हुए पात्रमें दूधका उफान आ गया। यशोदाजी श्रीकृष्णको गोदसे नीचे उतारकर उस दूधके पात्रको उतारने गयीं। इससे बालक कृष्ण बहुत रूठ गये और उन्होंने दहीके मटकेको उलट दिया और

दूसरे घरमें जाकर ऊखलपर चढ़कर माखन खाने लगे। माताने वापस आकर देखा कि दहीका बर्तन उलटा पड़ा है और श्रीकृष्णका पता नहीं है। वह क्रोधित हो उठी और श्रीकृष्णको सजा देनेके लिये ढूँढ़ने लगी। जब वह उस घरमें पहुँची जहाँ कृष्ण मक्खन खा रहे थे तो कृष्ण माताकी मारके डरसे ऊखलसे उतरकर भागने लगे। माताने उनको पकड़ लिया और लगी रस्सीसे उन्हें ऊखलमें बाँधने। परन्तु जिस रस्सीसे वह बाँधना चाहती थी वही रस्सी छोटी हो जाती, यों तमाम घरभरकी रस्सी लाकर जोड़ दी परन्तु तिसपर भी श्रीकृष्ण न बँध सके। तब थककर उनकी ओर देखकर मुस्कराने लगी। कृपामय भगवान् माताकी कठिनाईको देख-कर स्वयं बँध गये।

अम्बरीष—

महाराज अम्बरीष परम भक्त थे, एकादशी-व्रतके बड़े ही प्रसिद्ध व्रती थे। एक एकादशीको दुर्वासा-ऋषि उनके घर आये। महाराजने उनको द्वादशीके दिन भोजन करनेका निमन्त्रण दिया। क्योंकि वह द्वादशीको ब्राह्मण-भोजन कराये बिना पारण नहीं करते थे। दुर्वासा-ऋषि स्नान-ध्यान करनेके लिये बाहर गये और उनको वहाँ बहुत देर हो गयी। द्वादशी थोड़ी ही थी, उसके बाद त्रयोदशी हो जाती थी और शास्त्रोंकी यह आज्ञा है कि एकादशी-व्रत करके द्वादशीको पारण करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे इस दोषके परिहारके लिये राजाने एक तुलसीका पत्ता ले लिया। इतनेमें दुर्वासा-ऋषि आ गये और बिना आज्ञा लिये हुए राजाके तुलसीदल ले लेनेपर वे आगबबूला हो गये और उन्होंने क्रोधित हो महाराजको शाप दिया कि 'तुझे जो यह घमण्ड है कि मैं इसी जन्ममें

मुक्त हो जाऊँगा वह मिथ्या है, अभी तुम्हें दस बार और जन्म धारण करने पड़ेंगे।' इतना शाप देनेके बाद उन्होंने एक कृत्या नामक राक्षसीको पैदा किया, जो पैदा होते ही अम्बरीषको खानेके लिये दौड़ी। भक्तकी यह दुर्दशा भगवान्से देखी न गयी, उन्होंने शीघ्र सुदर्शन-चक्रको आज्ञा दी। उसने कृत्याको मारकर दुर्वासा-ऋषिका पीछा किया। दुर्वासाजी तीनों लोकोंमें भागते फिरे पर किसीने उन्हें आश्रय नहीं दिया। अन्तमें वे भगवान् विष्णुके पास गये और उनकी आज्ञासे लौटकर महाराज अम्बरीषके चरणों-पर आ गिरे। राजाने चक्रको स्तवन करके शान्त किया। इसके बाद विष्णुभगवान्ने प्रकट होकर दुर्वासा-ऋषिसे कहा कि आपने हमारे भक्तको जो शाप दिया है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ। उनके बदलेमें मैं दस बार शरीर धारण करूँगा।

उग्रसेन–

कंसके बापका नाम उग्रसेन था। कंस अपने बापको कैद करके आप राजगद्दीपर बैठा था। उसके अत्याचारोंसे प्रजा त्राहि-त्राहि करती थी। भगवान् कृष्णने कंसको मारकर उग्रसेनको गद्दीपर बैठाया और आप स्वयं उनके द्वारपाल बने।

९९–सुदामा–

सुदामाकी कथा प्रसिद्ध ही है। यह श्रीकृष्णजीके सहपाठी मित्र थे। विद्याध्ययनके अनन्तर यह अत्यन्त दरिद्र हो गये। अपनी स्त्रीके कहने-सुननेपर यह भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये द्वारका गये। यह इतने दरिद्र थे कि अपने मित्रसे मिलनेके लिये चार मुट्ठी चावल भेंट ले गये थे।

भगवान्‌ने इनका बड़ा ही सम्मान किया और चार मुट्ठी चावलके बदलेमें उन्हें पूर्ण समृद्धिशाली बना दिया।

१०६–केवट–

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ वन जाते समय गंगाके किनारे पहुँचे और पार जानेके लिये केवटसे नाव माँगी तो उसने प्रेमसे गद्गद होकर कहा—'हे स्वामिन्! मैं आपके मरमको जानता हूँ। आपके चरणोंको छू करके पत्थर सुन्दर स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया। मेरी नाव तो काठकी है, कहीं यह भी मुनिकी स्त्री बन जायगी तो मेरी जीविका ही जाती रहेगी। इसलिये यदि आप पार जाना चाहते हैं तो पहले अपना पैर धोने दीजिये। निषादकी भक्ति अपूर्व थी। उसकी भक्तिके ही कारण भगवान्‌ने उससे अपने चरण धुलाकर कृतार्थ किया।

शबरी–

यह जातिकी भीलनी थी। मतङ्ग-ऋषिकी सेवा करते-करते इसे भगवद्भक्तिकी प्राप्ति हो गयी थी। सीताहरणके पश्चात् जब लक्ष्मणजीके साथ भगवान् सीताकी खोजमें वनमें भटक रहे थे तो रास्तेमें भीलनीका आश्रम मिला। उसने भगवान्‌का बड़ा सत्कार किया तथा प्रेममें बेसुध होकर भगवान्‌को पहलेसे चख-चखकर देखे हुए पेड़ोंके सुन्दर बेर दिये और भक्तवत्सल भगवान्‌ने उन्हें सराह-सराहकर खाया। यह कथा प्रसिद्ध ही है।

गोपिका–

गोपियोंकी प्रेमाभक्ति प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमके वशीभूत हो गोपियोंके साथ रास किया था।

विदुर–

विदुर दासी-पुत्र थे। परन्तु श्रीकृष्णभगवान्में इनकी अपूर्व भक्ति थी। इसी कारण भगवान् जब हस्तिनापुर गये तो दुर्योधनके घर न जाकर विदुरके आतिथ्यको ही उन्होंने स्वीकार किया। जब भगवान् विदुरके घर पहुँचे उस समय विदुर घरपर नहीं थे। उनकी पत्नीने भगवान्का सत्कार किया। वह केले लेकर भगवान्को खिलाने बैठी परन्तु प्रेममें इतनी बेसुध थी कि केले छीलकर नीचे गिराती गयी और छिलके भगवान्के हाथमें। प्रेमके भिखारी भक्तहियहारी प्रभु उन्हीं छिलकोंको भोग लगाने लगे। भगवान्ने विदुरके कुल-शीलका विचार न कर उनकी भक्तिको ही प्रधानता दी। विदुरके साथ भगवान्का सख्यप्रेम था।

कुबरी–

यह कंसकी दासी थी। जब श्रीकृष्णभगवान् मथुरामें कंसके दरबार-में जा रहे थे तो वह रास्तेमें कंसके लिये चन्दनका अवलेप लिये जा रही थी। भगवान् श्रीकृष्णकी वह परम भक्त थी। भगवान्ने उसके प्रेमके कारण उसके उस चन्दनके अवलेपको अपने शरीरमें लगाया और उसके कुबड़ेपनको दूर कर दिया। कंसको मारकर लौटनेपर भगवान्ने इसके आतिथ्यको स्वीकार किया था।

१२८–रक्तबीज–

यह एक महाप्रतापी दैत्य था। इसने घोर तपस्या करके श्रीशिवजीसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मेरे शरीरसे जो एक बूँद रक्त गिरे तो उससे सहस्रों रक्तबीज पैदा हों।' इस वरको प्राप्त कर इसने त्रिलोकीको

भयसे कम्पित कर दिया था। सब देवताओंने अन्तमें मिलकर भगवती महाकालीकी स्तुति की। महाकाली प्रकट होकर रक्तबीजसे युद्ध करने लगी। परन्तु जब उसके एक बूँदसे सहस्रों रक्तबीज पैदा होने लगे तो महाकालीने अपनी जीभ इतनी लम्बी बढ़ायी कि जितना रक्त उन रक्तबीज दैत्योंके वदनसे गिरता उसे ऊपर ही चाट जाती। इस प्रकार रक्तबीजका संहार उन्होंने किया। यह कथा दुर्गासप्तशतीमें विस्तारपूर्वक दी गयी है।

१४५–विभीषन–

विभीषणने रावणको समझाया कि 'श्रीरामचन्द्रजी जगत्पिता परमात्मा हैं और श्रीसीताजी जगज्जननी हैं। इसलिये तुम जगज्जननी श्रीसीताजीको उनके पास लौटाकर उनसे क्षमा माँगो। वे प्रभु दयालु हैं, तुम्हें क्षमा कर देंगे।' इस बातको सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ और विभीषणको लात मारकर अपने नगरसे बाहर निकाल दिया। विभीषणने निराश और निराश्रय होकर मनमें कहा—

जिन पायनकी पादुकनि भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहौं इन नयननि अब जाइ॥

इस प्रकार अनन्यभावसे भावित होकर जब विभीषण भगवान्‌के चरणोंमें आ गिरा तो भगवान्‌ने उसे प्रेमसे लंकेश कहकर हृदयसे लगाया। प्रभुकी भक्तवत्सलताका यह कैसा उदाहरण है!

१६२–दस सीस अरपि–

प्रबल-प्रतापी राजा रावण एक बार कैलास-पर्वतपर जाकर तपस्या

करने लगा। उसने घोर तप करके अन्तमें अपने सिरको काट-काटकर अग्निमें हवन करने लगा। जब नव सिर काटकर हवन कर चुका और दसवाँ सिर काटनेके लिये खड्ग उठाया तब शङ्करजी वहाँ प्रकट हो गये और उन्होंने उससे वर माँगनेके लिये कहा, फलस्वरूप उसे लङ्काका राज्य मिला।

१७४—बलि—

जब राजा बलिने वामनभगवान्‌को तीन पग पृथ्वी दान देनेका वचन दे दिया तब शुक्राचार्यने उसको श्रीविष्णुभगवान्‌के छलके विषयमें बहुत कुछ समझाकर दान देनेसे रोका। परन्तु सत्यसङ्कल्प राजा बलि अपनी प्रतिज्ञासे तनिक भी न हटा। उस समय उसने अपने गुरु शुक्राचार्यका सत्यके पीछे परित्याग कर दिया।

२१३—नृग—

सत्ययुगमें राजा नृग बड़े ही दानी राजा हो गये हैं। वह नित्य एक करोड़ गो-दान किया करते थे। एक बार एक ब्राह्मणको दान दी हुई गाय भूलसे आकर उनकी गायोंमें मिल गयी और उन्होंने उसे अपने गायोंके साथ दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया। पहला ब्राह्मण अपनी भूली गायको तलाश करता हुआ जब दूसरे ब्राह्मणकी गायोंमें उसे चरते हुए देखा तो उस ब्राह्मणको चोर बताकर अपनी गाय हाँक ले चला। फिर दोनों ब्राह्मणोंमें झगड़ा होने लगा। दोनों लड़ते-झगड़ते राजाके पास पहुँचे और राजाको इंसाफ करनेके लिये कहा। राजा दोनोंकी बातें सुनकर सिर हिलाता रहा। कुछ उसके समझमें न आया कि क्या किया जाय। इसपर वे दोनों ब्राह्मण क्रोधित हो उठे, उन्होंने राजाको शाप

दिया कि 'हे राजा ! तूने हमें धोखा दिया है, इसलिये जा, गिरगिटकी योनिको प्राप्त हो ।' राजा गिरगिट हो गया और बेचारा सहस्रवर्षपर्यन्त द्वारकाके एक कुएँमें पड़ा रहा । श्रीकृष्णावतारमें भगवान्‌ने उसे कुएँसे निकाला । फिर शापमुक्त होकर वह दिव्य शरीर धारणकर वैकुण्ठ चला गया ।

२१४–पूतना–

यह पूर्वजन्ममें एक अप्सरा थी । वामनभगवान्‌का बालस्वरूप देखकर, वात्सल्य-स्नेह-वश, इसकी इच्छा हुई थी कि मैं इस बालकको पुत्र बनाकर अपने स्तनोंका दूध पिलाती । अन्तर्यामी भगवान् उसकी मनोवाञ्छा जान गये। वह अप्सरा किसी घोर पापके कारण पूतना नाम्नी राक्षसी बनी । श्रीकृष्णावतारमें भगवान्‌ने वत्सवत् उसका स्तन्यपान करते हुए उसे स्वर्ग भेज दिया ।

सिसुपाल–

यह चेदि-देशका राजा था । यह बड़ा ही पराक्रमी था । कहते हैं कि रावणने ही दूसरे जन्ममें शिशुपालके रूपमें जन्म लिया । यह बड़ा दुष्ट था । प्रतिदिन सबेरे उठकर भगवान् श्रीकृष्णको सौ गालियाँ दिया करता था । भगवान् कृष्ण उसकी गालियाँ सुनते और सह लेते थे । क्योंकि उसकी माता श्रीकृष्णके पिताकी बहिन थी । और उसने श्रीकृष्णसे यह वर ले लिया था कि वह शिशुपालके सौ अपराधोंको प्रतिदिन क्षमा कर देंगे। एक दिन पाण्डवोंकी सभामें श्रीकृष्णको वह गालियाँ देने लगा । सौ गालियोंतक तो भगवान्‌ने उसे क्षमा किया । परन्तु जब उसने गाली देना

बन्द नहीं किया तो भगवान्‌ने चक्रसुदर्शनसे उसके सिरको काट डाला। देखते-देखते उसकी आत्मज्योति भगवान्‌के श्रीमुखमें प्रवेश कर गयी।

व्याध–

भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें पद्मके चिह्न देखकर उसे नेत्रका भ्रम हो गया था और उसने हरिण समझकर भगवान्‌के चरणोंमें तीर मारा था। पीछे जब वह समीप आया और चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्णको देखा तो उसे बड़ा ही दुःख और पश्चात्ताप हुआ। परन्तु भगवान्‌ने उसे शान्ति प्रदान करते हुए सदेह स्वर्गको भेज दिया।

२२०–परीछितहि पछिताय–

एक बार महाराज परीक्षित शिकार खेलते-खेलते निर्जन वनमें निकल गये। वहाँ उन्होंने देखा कि एक काला पुरुष मूसल हाथमें लिये एक गाय और एक लँगड़े बैलको खदेड़ रहा है। जब पूछनेपर मालूम हुआ कि वह काला पुरुष कलियुग है और उसके भयसे पृथ्वी गाय और धर्म बैलका रूप धारण कर भाग रहे हैं, तो महाराजने क्रोधित होकर तलवार निकाल ली और कलियुगको मारनेके लिये दौड़े। इसपर वह काला पुरुष भयभीत होकर महाराजके चरणोंपर गिर पड़ा। महाराजने उसे शरणागत जानकर छोड़ दिया और चौदह स्थानोंमें रहनेके लिये उसे अभय कर दिया। उन स्थानोंमें एक स्वर्ण भी था। महाराजके सिरपर सोनेका मुकुट था, इसलिये कलिने उसपर अपना आसन जमाया। महाराज जब उधरसे लौटे तो भूख-प्याससे व्याकुल हो एक ध्यानावस्थित ऋषिके आश्रममें पहुँचे और

ऋषिको पुकारने लगे। जब कुछ उत्तर न मिला तो महाराज ऋषिको पाखण्डी समझकर उनके गलेमें एक मरा हुआ सर्प डालकर वहाँसे चले गये। जब उस ऋषिके पुत्रको यह समाचार मालूम हुआ तो उसने शाप दिया कि ध्यानावस्थित मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प डालकर तिरस्कार करनेकी चेष्टा करनेवाला मदान्ध राजा आजसे सातवें दिन तक्षक सर्पके काटनेसे मर जायगा। महाराजा परीक्षितको जब यह समाचार मालूम हुआ तो उन्हें अपनी भूलपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह सात दिनतक श्रीमद्भागवतका सप्ताह पाठ सुनकर सातवें दिन तक्षक सर्पके काटे जानेपर स्वर्गारोहण कर गये। यह कथा श्रीमद्भागवतमें लिखी है।

२२५—मृग—

मारीच रावणका मामा था। इसीको श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षाके समय एक ही बाणमें सौ योजन दूर समुद्रपार भेज दिया था। जब पञ्चवटीमें लक्ष्मणजीने शूर्पणखाके नाक और कान काट लिये और वह विलखती हुई रावणके पास गयी तो रावणने बदला लेनेकी इच्छासे मारीचके पास जाकर उसे माया-मृग बनने और श्रीरामचन्द्रजीको धोखा देनेके लिये कहा। पहले तो मारीचने उसे बहुतेरा समझाया और श्रीरामचन्द्रजीसे मेल कर लेनेके लिये कहा। परन्तु जब रावण उसे मारनेके लिये तैयार हो गया तो उसने रावणके हाथसे मरनेकी अपेक्षा श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मरनेमें ही अपना श्रेय समझा। वह मायामृग बनकर पञ्चवटीमें भगवान्‌की पर्णकुटीके सामने होकर निकला। श्रीजानकीजीने भगवान्‌से उस मृगको मारकर उसका मृगछाला लानेके लिये कहा।

भगवान् उसके पीछे चले और मृगके मरण-समयके आर्त्तनादको सुनकर श्रीजानकीजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजी भी उधर ही निकल पड़े। एकान्त देखकर रावण आया और पर्णकुटीसे श्रीसीताजीको रथपर बैठाकर लङ्का ले गया। मारीचको मारकर भगवान्‌ने उसे सद्गति प्रदान की।

२२६–नहिं कुंजरो नरो–

महाभारतके युद्धमें कौरवोंकी ओरसे लड़ते हुए द्रोणाचार्य जब पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे तब श्रीकृष्णभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि अब तो द्रोणाचार्यका वध किये बिना नहीं चल सकता। परन्तु अर्जुनको गुरुवध करनेकी हिम्मत नहीं हुई। तब भगवान्‌ने भीमके द्वारा अश्वत्थामा नामके हाथीको मरवा डाला। द्रोणाचार्यके पुत्रका भी अश्वत्थामा नाम था और वह उनको बड़े ही प्यारे थे। जब 'अश्वत्थामा मारा गया' यह आवाज़ द्रोणाचार्यके कानोंमें पहुँची तो उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा कि कौन अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिरने कहा—'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा।' अर्थात् अश्वत्थामा मनुष्य मारा गया या हाथी। द्रोणाचार्य 'या हाथी' (वा कुञ्जरो वा) इस अंशको न सुन सके। राज-नीतिका पालन करते हुए धर्मराजने सत्यकी रक्षा करनी चाही, पर वह न हो सका। असत्य बोलनेका कलंक उनके जीवनपर लग ही गया। अस्तु, पुत्रमरण सुनकर ज्यों ही द्रोणाचार्य मूर्छित-से हुए त्यों ही धृष्टद्युम्नने उनका मस्तक काट लिया। 'नरो वा कुञ्जरो वा' तभीसे कहावतके रूपमें प्रयुक्त होने लगा।

२३९–ब्रह्म-बिसिख–

अश्वत्थामाने पाण्डवोंको निर्वंश करनेके लिये परीक्षितको गर्भमें ही ब्रह्मास्त्रसे मारना चाहा था, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने चक्रसुदर्शनके द्वारा उसे बीचमें ही व्यर्थ करके गर्भस्थ शिशुकी रक्षा की थी।

फेन मरयो–

नमुचि नामका एक महा प्रतापी दैत्य था। उसने घोर तपस्या करके ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, और न किसी शुष्क या आर्द्र पदार्थसे मरूँ।' जब देवासुरसंग्राम छिड़ा तो देवता लोग इसके पराक्रमके आगे त्राहि-त्राहि करने लगे। इन्द्रका वज्र भी इसका बाल बाँका न कर सका। तब आकाशवाणी हुई कि 'यह अस्त्र-शस्त्रसे नहीं मरेगा। इसे समुद्रके फेनसे मारो।' पीछे समुद्रके फेनसे मृत्यु हुई।

२४७–पूजियत गनराउ–

एक बार सब देवताओंमें इस बातके लिये झगड़ा उठा कि सबोंमें प्रथम पूज्य कौन है। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि समस्त ब्रह्माण्डकी परिक्रमा करके जो पहले आ जाय वही सर्वप्रथम पूज्य समझा जायगा। सब देवता अपने-अपने वाहनपर सवार होकर निकले। बेचारे गणेशजीकी सवारी चूहा! क्या करते? बड़े ही असमञ्जसमें पड़े! इतनेमें नारदजी उस रास्तेसे होकर निकले। गणेशजीको मनमारे बैठा देखकर उन्होंने कहा—

किस चिन्तामें आप पड़े हैं, रामनाम लिखकर उसकी ही परिक्रमा करके निश्चिन्त हो जाइये। रामनाममें ही अखिल सृष्टि निहित है। फिर क्या था, गणेशजीने चट रामनाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर डाली और सबसे पहले ब्रह्माण्डकी परिक्रमा कर आनेके फलस्वरूप सर्वप्रथम पूज्य हो गये। यह राम-नामकी महिमा है!

नामप्रभाव जान गनराऊ। प्रथम पूजियत नाम-प्रभाऊ॥

रोक्यो बिन्ध्य–

कथा आती है कि विन्ध्याचल-पर्वत बहुत ही ऊँचा था। सूर्यकी प्रचण्ड किरणें जब उस पर्वतके आश्रय रहनेवाले वृक्ष-लताओंको झुलसने लगीं तब उसे बड़ा रोष उत्पन्न हुआ और सूर्यनारायणको ढक लेनेके उद्देश्यसे वह अपने शरीरको बढ़ाने लगा। इससे सारे देवता भयभीत हो उठे और सबने आकर अगस्त्य-ऋषिसे प्रार्थना की। महर्षि अगस्त्यजीने राम-नामका स्मरणकर विन्ध्याचलके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि 'देख, जबतक मैं यहाँ न लौट आऊँ तबतक तू यहाँ ऐसा ही पड़ा रह।' अगस्त्यजी फिर न लौटे और वह पर्वत ज्यों-का-त्यों आजतक खड़ा है। यह है श्रीराम-नामकी महिमा!

२५७–दंडक पुहमि पुनीत भई–

कथा है कि एक बार बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। सब ऋषिगण अपने-अपने आश्रमोंको छोड़कर गौतम-ऋषिके आश्रमपर जा ठहरे। पीछे

जब दुर्भिक्ष मिट गया तो वे गौतम-ऋषिसे विदा माँगनेके लिये गये। ऋषिने उनको उसी आश्रममें रहनेके लिये कहा तथा अन्यत्र जानेके लिये मना किया। तब उन ऋषियोंने एक मायाकी गौ रचकर गौतम-ऋषिके खेतमें खड़ी कर दी। ऋषि जब उसे हाँकनेके लिये गये तो वह गिर पड़ी और मर गयी। इसपर वे सारे ऋषि उनके ऊपर गोहत्याका दोष मढ़कर जाने लगे। गौतम-ऋषिने योगबलसे जब उनकी इस मायाको जाना तब क्रोधित होकर शाप दे दिया कि तुम जहाँ जाना चाहते हो वह देश अपवित्र-नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। तभीसे वह दण्डकवनके नामसे प्रसिद्ध हुआ और वहाँ कभी कोई लता-वृक्ष नहीं उगते थे, सदा वह प्रदेश वीरान रहता था। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरण धरते ही वह उजाड़ प्रदेश पवित्र और हरा-भरा हो गया।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित मानस-साहित्य

श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, बृहदाकार, भाषाटीकासहित, सचित्र, सजिल्द
श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, भाषाटीकासहित, सचित्र, सजिल्द
श्रीरामचरितमानस—सटीक, मझला साइज
श्रीरामचरितमानस—बड़े अक्षरोंमें केवल मूल पाठ, सचित्र, सजिल्द
श्रीरामचरितमानस—मूल, मझला साइज सचित्र
श्रीरामचरितमानस—मूल, गुटका सचित्र
श्रीरामचरितमानस—बालकाण्ड सटीक
श्रीरामचरितमानस—अयोध्याकाण्ड सटीक, सचित्र
श्रीरामचरितमानस—अरण्यकाण्ड-सटीक
श्रीरामचरितमानस—किष्किन्धाकाण्ड सटीक
श्रीरामचरितमानस—सुन्दरकाण्ड, मूल गुटका
श्रीरामचरितमानस—सुन्दरकाण्ड सटीक, श्रीहनुमानचालीसा-हनुमानाष्टक तथा बजरंगबाणसहित
सुन्दरकाण्ड मूल—मोटा लाल रंगमें
श्रीरामचरितमानस—लंकाकाण्ड सटीक
श्रीरामचरितमानस—उत्तरकाण्ड सटीक
मानस-रहस्य—सचित्र
मानस-शंका-समाधान
विनयपत्रिका—सरल हिंदी भावार्थसहित, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, सचित्र
गीतावली—सरल भावार्थसहित
कवितावली—गोस्वामी श्रीतुलसीदासकृत, सटीक, सचित्र
दोहावली—सानुवाद, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, सचित्र
रामाज्ञा-प्रश्न—सरल भावार्थसहित
जानकी-मङ्गल
हनुमानबाहुक
पार्वती-मङ्गल
वैराग्य-संदीपनी
बरवैरामायण